★ प्रकाशक—

किशोर कल्पना कान्त

प्रकाशकीय सम्पादक

सिद्ध-साहित्य-शोध-संस्थान

रतनगढ़ (राजस्थान)

★ लेखक—

सूर्यशंकर पारीक

★ चित्रकार—

सत्यदेव "सत्यार्थी"

★ मूल्य—

दस रुपये

★ प्रथम संस्करण—

चैत्र शुक्ला सप्तमी, २०१३

★ मुद्रक—

श्रीराम शर्मा

सूर्य प्रेस, रतनगढ़

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की श्रद्धा में—

सूर्यशंकर

भूमिका

विशाल भारत के आँचल में राजस्थान अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। राजस्थान की भूमि वीर-प्रसू ही नहीं, अपितु सिद्ध, संत-प्रसविनी भी रही है। जहाँ इस धरित्री ने अपनी गोद में खेलने वाले वीरों को रणांगण में निडरतापूर्वक जूझते हुए देखकर अपना मस्तक गर्वोन्नत किया है, वहाँ आत्म तत्त्व का साक्षात्कार करने वाले, सिद्ध-संतों की अमृतमयी अनहद-वाणी सुन कर परमाह्लाद का अनुभव भी किया है।

राजस्थान का इतिहास राजाओं तथा राज्यों से सम्बन्धित होने के कारण प्रारम्भ से ही ख्यातों के रूप में संकलित होता रहा है। उसमें वीरों का शौर्य-वीर्य चारण-भाटों की ओजस्विनी वाणी का पाथेय बनकर, इतिहास का आधार बन गया, पर आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करने वाले सिद्ध-संतों की अनहद वाणी जन-जन के गले का हार बनकर भी न इतिहास का आधार बन सकी और न मुद्रित होकर प्रकाश में ही आ सकी। जो कुछ वाणियाँ मुद्रित होकर प्रकाश में आई हैं वे राजस्थान के सिद्ध-संतों की विशाल और बहुमुखी परम्परा को देखते हुए संतोषजनक नहीं कही जा सकती है। विभिन्न प्रवाहों में प्रवाहित होनेवाली संत-गौरवगाथा आज भी जनवाणी का आधार बनकर विशिष्ट विशिष्ट अवसरों पर जन-कंठों से स्फुटित होती रहती है। इसे लिपिबद्ध करना और जनता के हाथों तक पहुँचाना बहुत ही दुष्कर और असमसाध्य कार्य है।

लोकपुरुषों के इतिवृत्त और उनकी वाणी को किसी ने ख्यातों का आधार नहीं बनाया। हाँ, क्षत्रिय कुलोत्पन्न एवं राजाओं और राज्यों से सम्बन्धित महापुरुषों के प्रसंग का यत्र तत्र यत्किंचित् वर्णन भले ही सुलभ हो, पर ऐसे विवरणों से इतिहास का पूर्ण बोध नहीं होता है। बहुत से ऐसे महापुरुषों का तो ख्यातों पर आधारित-इतिहास में नामोल्लेख भी नहीं मिलता, पर इससे उनका महत्व कम नहीं होता है। रजवाड़ों का इतिहास साधन सुलभ होने से विद्वानों द्वारा सुसम्पादित होकर मुद्रित भी हुआ है, पर राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में अवतरित लोक-कल्याणकारी भावनाओं को पनपाने, सौहार्द

और बन्धुत्व की भावना जागृत करने, मानवहित धर्म-नियमों का प्रतिपादन करने वाले और व्यथित समाज को अपने ज्ञानामृत से पुलकित कर सुपथगामी बनाने वाले अनेक सिद्ध महापुरुषों का इतिहास सर्वांगरूपेण अब तक अंधकार में ही है। ऐसे महापुरुषों की जीवनियाँ और उनके द्वारा लाखों की संख्या में निर्मित 'सबद' और 'वाणियाँ' अब तक केवल श्रुति परम्परा में कण्ठस्थ होकर ही सुरक्षित रहती आई हैं।

रामस्नेही, दादूपंथी आदि अनेक सम्प्रदायों ने अपने २ सम्प्रदायों से सम्बन्धित ऐतिह्य और वाणियों का संकलन करके उसे कालकृत विकृतियों से बचा लिया पर राजस्थान के बीकानेर और जोधपुर के विस्तृत भूभाग में व्याप्त सिद्ध-सम्प्रदाय के क्रमबद्ध इतिहास और सिद्धाचार्य की परम्परा को यथावस्थित चालू रखने वाले सिद्धों के सबदों' और 'वाणियों के संकलन की ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया था।

मध्यकालीन भारत में भारतीय सिद्ध पुरुषों के कारण भक्ति, योग एवं ज्ञान की त्रिवेणी प्रवाहित होकर जिस पवित्र संस्कृति का नव आलोक फैला, उसमें सिद्धाचार्य भगवान् श्री जसनाथजी का भी अपना विशिष्ट स्थान है। सिद्धाचार्य अपने समय के सिद्ध पुरुष ही नहीं, अपितु राजस्थान के आदि महापुरुष भी थे। उनकी उज्ज्वल कीर्ति ने उस समय मरुधरा के किसी एक कोने को ही नहीं, दसों दिशाओं को ही देदीप्यमान कर दिया था। उनके बाद तो सिद्धों की ऐसी परम्परा चली कि जिसने सिद्धाचार्य के आदर्श को सामने रखकर राजस्थान के जनमन में नैतिक उत्थान के ऐसे बीज बो दिये थे, जिनकी जड़ें आज भी सुदृढ़रूप में अवस्थित हैं लेकिन वह सिद्ध-साहित्य और इतिहास अब तक प्रायः अमुद्रित ही रहा। इसी कारण सर्व साधारण उससे अधिक लाभ न उठा सका।

जसनाथी-साहित्य एवं इतिहास की ओर मेरी प्रवृत्ति होने का भी एक कारण है। उसे यहाँ लिखना अप्रासंगिक न होगा—

बात वि० सं० १९९३ की है रतनगढ़ (बीकानेर) में स्थित परमहंसों के समाधिस्थल पर जसनाथी सिद्धों द्वारा अग्निनृत्य का प्रदर्शन किया गया था। सुनकर मैं भी अपने कुछ बाल साथियों के साथ नृत्य देखने चला गया।

मैंने देखा, राजस्थानी वेश-भूषा मे गेरुवे रंग की पगड़ी बाँधे कुछ व्यक्ति एक पंक्ति में बैठे थे। पंक्ति के मध्य में बैठे हुए व्यक्ति के सामने नगाड़ा जोड़ी रखी थी, जिसे वह बजा रहा था और अन्य व्यक्ति कलापूर्ण ढंग से मजीरे बजा रहे थे। सभी लोग गीत गा रहे थे। यद्यपि गीत दुर्बोध था, फिर भी उसकी स्वर लहरी से श्रोताओं को अपार आनन्दानुभूति हो रही थी। नर्तक जो उस समय तक बैठे थे, गीत की चढ़ती हुई ध्वनि को सुनकर आत्म-विभोर हो उठे। उन्हें अपने तन-बदन की सुधबुध न रही और वे अलमस्त होकर लाल लाल धधकते हुए अंगारों के ढेर में बिना किसी रासायनिक द्रव्य के सहारे नंगे पैरों कूद पड़े और नाचने लगे। मैंने जीवन में प्रथम बार ही ऐसा दृश्य देखा था। आँखों पर विश्वास न हुआ। मैं मन्त्रमुग्ध-सा बन गया और आश्चर्य की लहरों में मेरा मन डूबा ही रह गया।

रात भर मैं इस संगीत और नृत्य का रसपान करता रहा। प्रातःकाल साथ आये हुए साथी अपने २ घर चले गये, पर मैं इतना तन्मय होगया था कि वहाँ से हिलने का मन ही न हुआ। जब तक वे नर्तक लौट न गये तबतक मैं वहीं उनके साथ ही साथ रहा। रात्रि में सुने गये 'सबदों' और नृत्य के बारें में विभिन्न प्रश्न गायक एवं नर्तक सिद्धों से पूछता रहा, पर जिज्ञासा शान्त न हुई।

घर आया। माँ को समस्त बात कह सुनाई। माँ ने मुस्कराते हुए कहा— "तुमने तो यह नृत्य आज ही देखा है, लेकिन इस नृत्य और नर्तकों के साथ अपना एक अटूट सम्बन्ध है। जब हम गाँव में रहा करते थे, तब वर्ष में एक बार तो यह नृत्य अवश्य ही अपने घर करवाया करते थे।"

अपने कुल के साथ इस नृत्य का पुरातन सम्बन्ध जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। यद्यपि सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के देवत्व से मैं भली भाँति परिचित था, पर यह जानकारी नई नई मिली थी कि मैं सिद्ध-सम्प्रदाय के कुलगुरु के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ।

माताजी ने मुझे इस विषय की पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिए अपने घर सुरक्षित रखे हुए बही-पत्र इत्यादि देखने के लिए दिये। उसी दिन से मैं इस कार्य में मनोयोग से जुट गया। जसनाथी-साहित्य के प्रति मन में

आकर्षण पैदा होगया और माताजी के प्रोत्साहन ने मुझे इस कार्य में लग जाने को और भी अधिक प्रोत्साहित कर दिया। फिर क्या था ? मैंने मुख्य मुख्य जसनाथी-धामों का भ्रमण किया। यत्रतत्र बिखरी इतिहास तथा साहित्य-सम्बन्धी सामग्री प्राप्त करने में जुट गया। इस सम्बन्ध में मैंने कई गाँवों का भ्रमण किया और प्राप्त सामग्री लिपिबद्ध की। इस लम्बे काल में मुझे जसनाथी-साहित्य-मनीषियों, टीकाई महतों, सिद्धों और विरक्त-संतो से साक्षात्कार करने का सौभाग्य मिला। इनमें श्री गुलाबनाथ जी महाराज (हॉसेरा वाले) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके आग्रह से एक बार घूमे हुए स्थानों का उनके साथ साथ पुन भ्रमण करना पड़ा।

इस अवधि में मैंने भाई हनुमानप्रसाद शर्मा के साथ श्री लालनाथजी परम हंस द्वारा रचित जीवसमझोतरी' का सम्पादन किया और 'पारीक-सदन' द्वारा उसे प्रकाशित के पश्चात् मेरी यह इच्छा रही कि इस प्रकार छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में जसनाथी-साहित्य की सुन्दर सुन्दर कृतियाँ सुसंपादित रूप में प्रकाशित की जायँ। श्री कोलायत के मेले पर इस ओर अभिरुचि रखने वाले जसनाथ मतानुयायी लोगों से विचार विनिमय हुआ। उनमें कुछ लोगों का आग्रह रहा कि सर्व प्रथम जसनाथी-साहित्य के प्रमुख भाग 'सबदों' को प्रकाशित किया जाय और कुछ लोगों का यह सुझाव रहा कि सबसे पहले सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी और उनकी परम्परा का इतिहास लिखा जाय। मुझे भी यही रुचा कि पहले जसनाथी परम्परा का 'सबदों' पर आधारित ऐतिह्य जनता के सामने रखा जाय।

प्रस्तुत ग्रंथ में वे ही सबद' आये हैं, जो किसी घटना विशेष से सम्बन्धित हैं। ये 'सबद' वि० सं० १६०४ के एक हस्त लिखित गुटके से लिए गये हैं, जिसकी प्रतिकृति बीकानेर स्थित 'सिद्धों की जगह' के निर्माता मुलनाथजी ने व्यास गोपीनाथ से करवाई थी। स्वयं गोपीनाथ ने गुटके के अन्त में ऐसा उल्लेख किया है। इस हस्तलिखित गुटके के अतिरिक्त दो गुटके और भी हमारे संग्रह में हैं, लेकिन स्पष्टता एवं सुन्दरता की दृष्टि से वे उक्त गुटके की बराबरी नहीं कर सकते।

गुटके में सबदों के अतिरिक्त, जो 'सबद' ग्रंथ में प्रयुक्त हुए हैं, वे

लोगों से जबानी सुनकर लिखे गये हैं और उनका संशोधन अन्य अनेक लोगों से सुनकर किया गया है। मैंने अपनी ओर से किसी 'सबद' में कोई परिवर्तन नहीं किया है। पष्ठ-अध्याय में प्रयुक्त 'कड़ा' पदों का ऐतिहासिक क्रम जोड़ने के लिए यथा रुचि प्रयोग किया गया है।

समाधियों के क्रम में कोई हेर फेर नहीं किया गया है। जिस महा-पुरुष की समाधि जहाँ हुई, उसका परिचय उसी गाँव, बाड़ी के प्रसंग में दे दिया गया है चाहे वह सिद्ध-पुरुष अन्य किसी बाडी का प्रमुख ही क्यों न रहा हो।

कई बार ऐसे प्रसंग भी आये हैं कि जीवित-समाधियों का परिचय गाँव वालों को एकत्रित कर सामुहिक रूप में प्राप्त करना पडा है। कुछ प्रसंग उनके द्वारा प्रदत्त प्राचीन पत्र, वही, परवाने, पट्टे एवं ताम्र-पत्रों को देखकर लिखे गये हैं। कहीं-कहीं विस्तार भय से अनेक सत्पुरुषों के प्रवाद-गीतों, छावलियों एवं सबदों के सबद-ग्रंथ' की सामग्री समझ कर छोड़ दिये गये हैं।

जसनाथी-धामों में स्थित मन्दिरों, छतरियों, देवलियों तथा सुरम्य बाड़ियों के चित्र हमने लिए थे, पर आर्थिक स्थिति को देखकर 'सिद्ध-चरित्र' में उन चित्रों के देनेका विचार छोड देना पड़ा।

इस कार्य में मुझे जसनाथ-संप्रदाय के व्यक्तियों ने पूर्ण सहयोग दिया है। वे अपने हैं, उनके विषय में क्या कहूं? पर परमपूज्या माताजी और श्री गुलाबनाथजी के प्रेरणादायक शब्द कि-बेटा ' जसनाथी-साहित्य और इतिहास का उद्धार करने का बीड़ा बड़ी से बड़ी कठिनाइयों का सामना करके भी तुम्हें उठाना है।" मुझे निरंतर प्रेरणा देते रहे हैं।

सर्व श्री वैद्य प्रवर पं० बनावीशजी गोस्वामी, श्री रामदत्त जी सॉकृत्य, श्री सूर्यप्रकाशजी शास्त्री, श्री इन्द्रचन्द्र शर्मा आदि साथियों ने समय समय पर सुन्दर सुझाव और सहयोग देकर मेरा साहस बढ़ाया है। मैं इनका आभारी हूं।

श्री गजानन्दजी ज्योतिर्विद् (तारानगर) का विशेष आभारी हूं जिन्होंने सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का जन्माङ्गम बनाने में अपनी पूर्ण योग्यता का

परिचय दिया है। डा० कन्हैयालालजी सहल (पिलानी) ने एक "सबद" की हिन्दी में सुबोध टीका करके सहयोग दिया। श्री सत्यदेवजी "सत्यार्थी" ने श्री जसनाथजी का चित्र एवं पुस्तक का आवरण बनाकर, इसके सौंदर्य को बढ़ाने में पूर्ण योग दिया है, जिसके लिए वे विशेष धन्यवादार्ह हैं। स्वामी श्री बालकनाथजी परमहंस के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ, जिन्होंने एक विवादस्थल को सुलझाने का कष्ट किया।

अपने परम प्रिय साथी किशोर कल्पना कांत के लिए किन शब्दों में कृतज्ञता ज्ञापन करूँ? जिन्होंने इस पुस्तक को सर्वांगपूर्ण बनाने एवं प्रकाशित करने में मुझे अथक सहयोग दिया है। इसके अतिरिक्त श्री सोमदेव "मधुप", वासुदेवजी रूथला आदि ज्ञाताज्ञात सभी महानुभावों का आभारी हूँ, जो मुझे समय समय पर सहयोग देते रहे हैं। पूज्य भाई गोवर्धनप्रसादजी एवं सावलरामजी को भी नहीं भुलाया जा सकता जिन्होंने बराबर मुझे इस कार्य के लिए उत्साहित किया।

मैं इस कार्य में कितना सफल हुआ हूँ। इसका निर्णय विज्ञ पाठक स्वयं करेंगे। पर मैं यह कार्य करके गौरव का अनुभव अवश्य कर रहा हूँ कि मैं शिवलोकवासी श्री गुलाबनाथजी की आकांक्षा को यत्किंचित रूप में पूर्ण करने योग्य बन सका हूँ। मैं समझता हूँ कि मेरा यह प्रयास सर्वांग सम्पन्न नहीं है फिर भी सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी और उनके परम्परा के इतिहास के भावी अन्वेषकों के लिए राजमार्ग का काम देगा।

विज्ञ पाठकों से प्रार्थना है कि अल्पज्ञता और प्रमादवश इस ग्रन्थ में रही त्रुटियों के लिए क्षमा करते हुए उचित सुझाव देकर मुझे कृतार्थ करेंगे, जिससे द्वितीय संस्करण सुन्दर और अधिक उपादेय बन सके।

पारीक-सदन, रतनगढ़
माघ शुक्ला सप्तमी सं० २०१३

सूर्यशंकर पारीक

प्राक्कथन

विश्वकल्याणार्थ कृतसङ्कल्प सिद्धमहात्माओं ने समसामयिक समाज की आध्यात्मिक, राजनैतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थिति को सुरक्षित रखते हुए उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अपने जीवन की आहुतियाँ अनेक बार दी हैं। श्री जसनाथ जी का अवतीर्णकाल "परित्राणाय साधूनाम" की उक्ति के अनुसार ठीक उसी समय आँका जाता है, जब धार्मिक-असहिष्णु, अत्याचारी मुसलमान शासकों के क्रूर शासन से त्रस्त तथा अपमानित हो हिन्दूजाति अपने कर्तव्यों से च्युत होकर निराशा में डूब चुकी थी। वह निराशा का घोर अन्धकार आशा के दिव्यालोक में तब परिणत हुआ जब आपने श्रद्धान्वित मानव समाज को सत्य, अहिंसा प्राणियों पर दया, यज्ञानुष्ठान आदि नियमों का पालन करते हुए सर्वतोभावेन हिन्दू-संस्कृति की रक्षा करने का उपदेश दिया। उपदिष्ट नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करने से उनके अनुयायियों का जीवन-पथ सिद्धियों से चमत्कृत हो उठा और वह सब "सिद्धसम्प्रदाय" नाम से विख्यात होगया। सम्प्रदाय के मौलिक आचार्य होने के कारण श्री जसनाथ जी "सिद्धाचार्य" कहलाये।

सिद्धाचार्य ने लोककल्याण की भावना तथा संस्कृति-रक्षण को विशेष महत्त्व देते हुए नियमित यज्ञानुष्ठान पर अधिक बल दिया और वह यज्ञानुष्ठान सिद्धसम्प्रदाय में आज तक बड़ी श्रद्धा के साथ किया जाता है। सम्भव है, इसी से सिद्धों में प्रपंचाकृत नाना सद्गुणों का समावेश पाया जाता है। इस विषय में ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र—

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।

"मैं अग्निदेव की स्तुति करता हूँ, याचना करता हूँ। वे पुरोहित, ऋत्विक्, यज्ञ के देवता, देवताओं के आह्वाता हैं और श्रेष्ठतम रत्नों की खान हैं वे हमें उत्कृष्ट रत्नों (सद्गुणों) को प्रदान करें।"

ऋषि मुनियों ने वैदिक यज्ञ विधान के द्वारा दिव्यभावना का जो पुनीत स्रोत प्रवाहित किया, वह अविरत गति से ऋजु-वक्र-पथ में सृष्टि के आदिकाल से आज तक बहता आ रहा है। सिद्धाचार्य ने उसे इस मरुस्थल में शोषित होने की अपेक्षा अधिक विस्तृत किया है। आपकी उपकार परम्परा में ये दो कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, एक तो—याज्ञिक अनुष्ठान रूप पतितपावनी सुरसरि धारा को मानव समाज के रीढ़ भूत तपस्वी कृषकों के जीवनक्षेत्र में प्रवाहित कर उन्हें तथा देश को महान् उपकृत किया है, क्योंकि कृषि-लीला की आधारशिला वर्षा है और वर्षा की सुलभता यज्ञों में निहित है

> अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभव. ।
> यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञ कर्मसमुद्भव ॥ गीता ३–१४,

दूसरे गुरुतर कार्य द्वारा आपने वेदों तथा उपनिषदों के निगूढतम आध्यात्मिक तत्त्वों को सरल एवं सुबोध शैली से पद्यों (सबदों) में गुम्फित करके जनसाधारण के मानस-पटल पर अंकित कर वैदिक संस्कृति को अक्षुण्ण बनाते हुए जन-जीवन को दिव्यालोकित किया है।

इस सम्प्रदाय के मुख्य मुख्य सिद्धपुरुषों ने जनसाधारण के कष्टों को योगसिद्धि द्वारा निवृत्त कर उन्हें आश्चर्यान्वित ही नहीं किया बल्कि वे सिद्ध-पुरुष समय २ पर अपने सिद्धि-बल से राजा महाराजाओं द्वारा सम्मानित भी हुए हैं। भारत के तात्कालिक क्रूर शासक औरंगजेब को नत मस्तक कराने का अमिट श्रेय रूस्तमजी की यौगिक चमत्कृतियों को ही है। उन महापुरुषों का जीवनधारा तो काल के अनन्त स्रोत में विलीन हो गई, परन्तु काल के वक्षस्थल पर वे अपना अक्षय चिह्न छोड गये हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कुशल लेखक ने सिद्ध सम्प्रदाय के बिखरे साहित्य को एक सूत्र में ग्रथित ही नहीं किया है अपितु श्रुति परम्परागत अव्यक्त साहित्य को मूर्तरूप देकर अपनी साहित्यनिष्ठा को सफल की है। अत्यधिक परिश्रम एवं पर्यटन से प्राप्त ताम्रपत्रों, शिलालेखों, गुप्त समाधिस्थलों तथा चरित्रों को व्यक्त कर सिद्ध-सम्प्रदाय के इतिवृत्त को सजीव बनाते हुए छैं सौ वर्षों के

अतीतान्धकार में विलीन श्री जगन्नाथजी के जन्मलग्न की खोज निकाल कर तो लेखक ने पुरातत्त्व शोधशीलता का एक आदर्श उपस्थित कर दिया है।

पारीकजी का यह प्रयास अत्यन्त सराहनीय है। इन्होंने राजस्थानी भाषा के शब्दरत्नों को "सिद्धचरित्र" रूपी विशाल थाल में सजाकर राष्ट्रभाषा हिन्दी को समर्पित किये हैं। इससे हिन्दी के इस आक्षेप को कि—'हिन्दी भाषा में शब्दकोश की कमी है" दूर करने की दिशा में आगे कदम बढ़ाकर हिन्दी के प्राङ्गण को विशाल बनाने में पूर्ण योग दिया है। आशा है भविष्य में भी ये ऐसे कार्यों को अधिकाधिक अभिरुचि रखते हुए सम्पादित करते रहेंगे।

वै० धनाधीश गोस्वामी
आयुर्वेदालंकार, आयुर्वेदाचार्य
रतनगढ़

विषय-सूची

सिद्ध-चरित्र

प्रथम अध्याय

राजनैतिक व भौगोलिक विवेचन

राजस्थान के अन्तर्गत भूतपूर्व बीकानेर राज्य का प्राचीन नाम 'जांगल देश' था। महाभारत में[1] इसका उल्लेख मिलता है/ उस समय श्री कृष्ण, बलराम तथा उनकी सेना को जब द्वारका से 'इन्द्रप्रस्थ' (दिल्ली) आना पड़ता था तब वह इसी जांगल प्रदेश में से होकर पहुँचते थे। द्वारका से दिल्ली जाने का सुमार्ग इसी जांगल देश में होकर था।

---

(१) कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गला. कुरुवर्णका·।

(महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय ९, श्लोक ५६)

पंच्यं राज्यं महाराज कुरवस्ते स जाङ्गला. ॥

(वही, उद्योग पर्व, अध्याय ५४, श्लोक ७)

जांगल देश के लक्षण:- जिस देशमें जल और घास की कमी होती हो, वायु और धूप की प्रबलता हो और अन्नादि बहुत होता हो उसको जागल देश जानना चाहिए।

(शब्द कल्पद्रुम, काण्ड २, पृष्ठ ५२९)

भावप्रकाश में लिखा है.- जहाँ आकाश स्वच्छ और उन्नत हो, जल और वृक्षो की कमी हो और शमी (खेजड़ा), कैर, बिल्व, आक, पीलू (जाळ) और बेर के वृक्ष हो उसको जागल देश कहते है।

(वही पृ० ५२९)

इन लक्षणो से सामान्य रूप से राजस्थान के बालू वाले प्रदेश का नाम 'जांगल देश' होना अनुमान किया जा सकता है।

(बीकानेर का इतिहास पृ० १ टिप्पण)

अपहृत सुभद्रा के साथ अर्जुन ने इसी 'जांगल प्रदेश' में विधिपूर्वक विवाह किया था और उसकी स्मृति मे 'सुभद्रार्जुन' नाम का नगर बसाया, जिसको अब अपभ्रंश करके 'भाद्राजुन'[1] नाम से पुकारा जाता है। भाद्राजुन में उपलब्ध एक प्राचीन शिलालेख से भी अर्जुन द्वारा अपने विवाहोपलक्ष में 'सुभद्रार्जुन' नगर के बसाये जाने की जानकारी मिलती है[2]। महाभारत के समय वर्तमान बीकानेर प्रदेश (जांगल देश) 'कुरु-राज्य' के अन्तर्गत था[3]। ऐतिहासिक नगर 'जागलू'[4] का नाम भी जागल देश का द्योतक है। ऐतिहासिक वृत्त के

राजस्थान के विविध भागों के प्राचीन नाम—

(क) पौराणिक काल में—

उत्तरी भाग- जंगल

पूर्वी भाग- मत्स्य

दक्षिण पूर्वी भाग- शिवि

दक्षिणी भाग- मालवा

पश्चिमी भाग- मरु

मध्य भाग- अर्बुद

(ख) मध्ययुग में—

उत्तरी भाग- जगल

दक्षिणी भाग- मेदपाट, वागड, गुर्जरत्रा

पश्चिमी भाग- मरु, माड, वल्ल, त्रवणी

मध्य भाग- अर्बुद, सपादलक्ष

(राजस्थानी, अंक १, पृ० ४ पाद टिप्पण)

(शोध पत्रिका, भाग ४, अंक ४, पृ० ७८)

(१) यह ग्राम जोधपुर राज्य में है।

(२) डा० किशोरसिंह बार्हस्पत्य करनी-चरित्र, अध्याय १, पृ० ३

(३) डा० ओझा, बीकानेर का इतिहास, पहिला भाग, पृ० ६९

(४) [illegible] नगर के उत्तर और बीकानेर के दक्षिणी हिस्से में स्थित।

अभाव में यह नहीं कहा जा सकता कि महाभारत के 'कुरु-राज्य' के पश्चात् 'जांगल देश' पर किन किन राजवंशों का अधिकार हुआ। [मध्यकाल में नागवशी क्षत्रियों की राजधानी अहिच्छत्रपुर (नागोर) थी] परन्तु यह सुनिश्चित है कि ग्यारहवीं शताब्दी से इस राज्य पर जोहियों, चौहानों, सांखलों,[1] भाटियों और जाटों का अधिकार अवश्य रहा[2]। इस प्रदेश के कुछ क्षेत्रों पर मुसलमानों का भी अधिकार था। वैमनस्यता के कारण उपर्युक्त शासकगण एक दूसरे से पूर्ण शत्रुता[3] रखते थे। इसीलिये प्रतिद्वन्द्वी[4] के अधिकृत क्षेत्रों पर वे लूट खसोट कर, वहां की प्रजा का प्रताड़न करते रहते थे और अपहृत धनराशि को कुमार्ग का साधन बना कर सर्वनाश के बीहड़ जङ्गल की ओर अग्रसर थे।

---

(१) परमार (पवार) राजपूतो की एक शाखा।

(२) डा० ओझा, बीकानेर का इतिहास, भा० पहिला, अ० २, पृ० ६९।

(३) टॉड कृत 'राजस्थान' में लिखा है– गोदारो का जोइयों तथा भाटियो से वैर रहता था।

(भाग २, पृ० ११२८)

(४) पूगल के रावशेखा, भटनेर (हनुमानगढ) के भट्टी मुसलमानो, बलूचियो तथा अन्यान्य लुटेरो के उत्पातों से थळी की जनता बडी दुखी थी, इन लुटेरो का आक्रमण इस प्रदेश पर होता तब यहा की जनता दैनिक उपयोग में आने वाले बर्त्तनो तक को जमीन में गाड कर रक्षा कर पाती। जसनाथजी के 'सबदो'(पद्यों) में इस बात का स्पष्ट आभास मिलता है—'गाड्यो धन धरती में रै'सी का कोई कटक दबारे' कटक दौड़ने के सस्मरण अब तक लोगो की जबान पर है।

ठा० किशोरसिंह बार्हस्पत्य ने; करनी चरित्र, अध्याय ७, पृ० १२८ में तत्कालीन भूभोक्तो के विषय में लिखा है कि राजपूत, जाट और मुसलमान सब के सब पक्के डाकू थे, आस पास की प्रजा को लूट कर उसके धन पर अपना उल्लू सीधा करना ही इनका मुख्य कर्त्तव्य था, उसमें यह भी लिखा है–'यह प्रदेश उन दिनो सूबा हिसार के अन्तर्गत था। दिल्ली के लोदी सम्राट् की ओर से **नियुक्त किया हुआ**

मदिरादि[1] से दूर रहने वाले जाट भी उस समय कल्पित भोमियों[2] आदि को 'बली बाकला[3]' देकर जीव हिंसा और मदिरादि पीने में प्रवृत्त होगए थे, इतिहासों में ऐसा उदाहरण मिलता है[4]। भाटों की बहियां, उनके वृत्त एवं गाँवों में अनेकों देवलियाँ देखने में आई हैं जिनसे यह प्रकट होता है कि मदिरादि दुर्व्यसन-रत शक्ति-सम्पन्न लोग महिलाओं की इज्जत लूटने में भी संकोच नहीं करते थे, अपहरण की अनेकों घटनाए उस समय घटित होती थी। देहातों में स्थित दृष्टिगोचर हुई देवलियों में सबसे प्राचीन विक्रम स० १०१३ की देवली (स्मारक) ग्राम 'धनेरू'[5] और विक्रम स० १५६० की देवली 'रीड़ी'[6] में हैं। ये दोनों देवलिया सगमरमर जैसे श्वेत पत्थर पर एक जैसी आकृति में अकित हैं।

राजस्व (खिराज) वहा जमा करा देते और उन्ही के इलाके में लूट मार मचाया करते'।

डा० गौरीशकर हीराचन्द लिखित बीकानेर का इतिहास भाग १ पृ० १०१ टिप्पण ३, में लिखा है—बीठू सूजा रचित 'जैनसी रो छन्द' से भी बहलोल लोदी का बीका का समकालीन होना पाया जाता है (छन्द ४६) परन्तु सिकन्दर लोदी और बहलोल लोदी दोनों ही बीका के समकालीन थे।

(१) देशराज जघीना ने 'जाट इतिहास' में जाटो को विशुद्ध आर्य और पूर्ण रूप से मांस मदिरादि को निषेध मानने वाली जाती माना है।

(२) भैरूं भूत पितर भोमियां फिर फिर पीर मनावे।

(३) बळ बाळक भैरूं री पूजा गोरख मना न माणी।

('सबद ग्रन्थ')

(४) डा० ओझा, बीकानेर का इतिहास, पृ० ९८।

(५) यह ग्राम श्री डूगरगढ़ (बीकानेर) तहसील में है, बीदासर से ५ कोश पश्चिम में है।

(६) रीड़ी बीकानेर रेल्वे लाइन में बीगा स्टेशन से ५ कोश दक्षिण में है।

अश्वारूढ वीरांगनाएं हाथ मे तलवार लिये हुए शत्रुओं का सामना कर रही हैं, इन वीर ललनाओं ने अपहरणकारियों से रणक्षेत्र में जूझ कर अपने सतीत्व की रक्षा के लिए सहर्ष प्राणोत्सर्ग कर दिया था। गाँव के लोग इन्हें 'सती दादी' की देवली[1] कहते है, इन के नीचे लेख भी खुदा हुआ है परन्तु प्राचीन लिपि होने के कारण अक्षर ज्ञान स्पष्टरूप से नहीं हो सकता।

राठोड़ों के अधिकार से पूर्व इस देश का दक्षिणी हिस्सा (८४ ग्राम)[2] सांखलो के अधिकार[3] में था, तब इनकी राजधानी 'जांगलू' थी तथा अब तक वह स्थान 'जांगलू' नाम से प्रसिद्ध है जांगलू के अतिरिक्त थली प्रदेश में भी यत्र तत्र सांखलों के स्वतन्त्र खेड़े (ग्राम) थे।

बीकानेर से आग्नेय दिशा में छापर और द्रोणपुर[4] के आस पास का प्रदेश चौहानो के अधिकार में था, इनमे मोहिल और खीची वंश प्रधान थे अतएव वह प्रदेश मोहिलवाटी कहलाता था[5]। मोहिल क्षत्रिय अब भी उस भूखण्ड पर अधिकता से पाये जाते हैं।

बीकानेर का पश्चिमी एवं कुछ उत्तरी हिस्सा भाटी क्षत्रियों के आधीन था, जिसकी राजधानी 'पूगल' थी। उस समय वहां का शासक राव शेखा[6]

---

(१) यदि ये देवलिया जाट ललनाओ की हैं तब तो अनुमानत. जाटो का निवास इस भूमि पर बहुत पहिले हो चुका होगा। रोडी जाखड़ जाटो का खेड़ा है। बीगा को बसाने वाले जाखड़ बीगा (वि० स० १३००) के आस पास, रोडी का निवासी था।

(२) डा० किशोरसिंह बार्हस्पत्य, करनी-चरित्र पृ० १२९।

(३) डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, बीकानेर का इतिहास, पृ० २ और पृ० ७३।

(४) वर्तमान गोपालपुरा या उसके आस पास का स्थान।

(५) वही, बीकानेर का इतिहास, भाग १, पृ० ७१।

(६) डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, बीकानेर का इतिहास, पहिला भाग, पृ० ७३

जो लुटेरों का अग्रणी था और बाद मे भगवती श्री करनी जी के समझाने बुझाने पर जिसने चोरी जैसे निन्दनीय कार्य के परित्याग की प्रतिज्ञा ली।[1]

देश के पूर्वोत्तरी हिस्से पर जोहियों[2] और भटनेर (हनुमानगढ) के आस पास बसने वाले भाटी मुसलमानों का अधिकार था, जिन्हें भट्टी भी कहा जाता है। ये भी लूट एवं डाकाजनी में निपुणता पूर्वक अग्रसर थे। इन्होंने बीकानेर नरेश सूरतसिंह के शासन से पूर्व तक भटनेर और उसके समीपवर्ती प्रदेश पर अपना अधिकार जमाये रखा। बीका तथा उसके उत्तर राजाओं से इन्हें कई बार परास्त होना पडा किन्तु दिल्ली की मुसलमान सल्तनत का सहयोग होने से उनको अपना अस्तित्व जमाये रखने के लिए सफलता मिलती रही।[3]

'जागल देश' के ऊँचे ऊँचे रेतीले टीलों वाले भूभाग पर छोटे छोटे ठिकानों के रूप में[4] जाटों का स्वतन्त्र अधिकार था,[5] आत्मरक्षार्थ साधन सम्पन्नता मे जाट सब से प्रबल थे।[6] यह प्रदेश जाटों की विभिन्न जातियों मे मुख्यतया निम्नरूप से विभाजित था—

(१) लाधडिया-शेखसर के स्वामी गोदारा पाण्डू के अधिकार में ३६० ग्राम, (२) भाडग के स्वामी सारण पूला के अधिकार मे ३६० ग्राम, (३) सीधमुख के शासक कसवाँ कुंवरपाल के अधीनस्थ ३६० ग्राम, (४) रायसलाणा के स्वामी बेणीवाल रायमल के अधिकार ८४ मे ग्राम, (५) बलूंदी (बडी लूंधी) के स्वामी पूनियाँ कान्हा के अधिकार मे १४० ग्राम, (६) सूंडका (सूई) के स्वामी सीहाग चोखा के अधिकार मे १४० ग्राम, (७) गोहुवा अमरा के अधिकार

(१) डा० किशोरसिंह बार्हस्पत्य, करनी-चरित्र, पृ० १३०

(२) पर इन्होंने शीघ्र ही बीका की अधीनता स्वीकार करली।
(वही, बीकानेर का इतिहास, पहिला भाग, पृ० ७०)

(३) वही बीकानेर का इतिहास, पहिला भाग, पृ० ७४

(४) नरोत्तमदास स्वामी, बीकानेर के वीर, पृ० ९

(५) नव अधिकृत क्षेत्रों के बीच का प्रदेश

(६) डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, बीकानेर का इतिहास, पहिला भाग, पृ० ३८।

में थानमी,[1] इसके अतिरिक्त खीचियावाड़ के स्वामी देवराज मानसिंहोत के अधीनस्थ १४० ग्राम, खरलां के स्वामी शुभराम ईश्वरोत के अधिकार में ६०० ग्राम, हिसार के रंगड़ भाटी मुसलमानों का राज्य। वाघोड़ राजपूतों के १४० ग्राम, मुट्टा शाखा के सोलङ्की राजपूतों के गाँव, बिलोचों, कायमखानियों के गांव[2] एवं छोटे छोटे विभिन्न ग्रामाधिपति भी इस भूखण्ड पर अपना अपना अधिकार जमाये हुए थे। जिसने जहां कुवा बनवा कर वास बसा दिया उस भूमि का वही अधिकारी समझा जाता था, अब तक उन जातियों के नाम पर खेड़े (ग्राम) आबाद हैं।

बीकानेर डिवीजन का थळी प्रदेश अब भी 'जाटायत' के नाम से बोला जाता है। जाटों के निःशक्त होने का मुख्य कारण आपस की कलह एवं प्रतिस्पर्धा थी। उस समय के कुछ पूर्व वृत्तान्तों, भाटों की बहियों और गाँवों में स्थित देवलियों के देखने से इस बात की पुष्टि होती है कि प्रबल जाट शासक सावधानी से एक दूसरे की स्त्री का अपहरण करने की ताक में लगे रहते थे। लाधड़िया-शेखसर के गोदारा पांडू और भाड़ंग के शासक सारण पूला में स्त्री सम्बन्धी प्रश्न[3] को लेकर परस्पर युद्ध हुआ था, जिसमें राव बीका ने ने पांडू का पक्ष लिया:[4] इसके परिणामस्वरूप सारण पूला परास्त हुआ और उसने बीका की अधीनता स्वीकार करली।

---

(१) वही बीकानेर का इतिहास, पृ० ९८, टिप्पण ७।

(२) ठा० किशोरसिंह बार्हस्पत्य, करनी-चरित्र, पृ० १२९-३०

(३) जब सारण पूला ने पांडू के ढाढी को यथासंभव दान दिया था तब सारण पूला की स्त्री मल्की ने कहा— "चौधरी! ऐसा दान करना था जिससे पांडू से अधिक यश प्राप्त होता" पूला उस समय नशे में था, उसने मल्की को मारते हुए कहा— तुझे पांडू अच्छा लगता है तो तू उसके पास चली जा, कुछ दिन के बाद मल्की पांडू के पुत्र नकोदर के साथ शेखसर चली गई। पांडू बहुत वृद्ध होगया था फिर भी पांडू ने मल्की को अपने घर में डाल लिया, मल्की के नाम पर मल्कीसर तथा पांडू के पुत्र नकोदर के नाम पर नकोदेसर ग्राम बसे हुये हैं।

(४) राव बीका द्वारा पांडू को उसकी खैरख्वाही के बदले में यह अधिकार

सारण पूला के पराजित हो जाने से अन्य जाट शासकों का भी साहस क्षीण पड़ गया, फिर भी अस्तोन्मुख जाटों ने अपने अपने राज्यों की रक्षा के निमित्त राव बीका से संघर्ष किया[1] पर बीका की प्रबल शक्ति के सामने जाटों को अपने संघर्ष में सफलता नहीं मिली, अतएव समस्त जाट-शासकों ने अदम्य साहसी वीर योद्धा राव बीका की अधीनता स्वीकार कर साधारण प्रजा की भांति भूमि-कर देकर[2] निवास करने लगे।

बीका का आगमन—

जागलू का प्रसिद्ध शासक नापा सांखला[3] [माणकराव का पुत्र] बलोच मुसलमानों से तङ्ग आकर राव जोधा के पास चला गया और वह कुंवर बीका की नया देश जीतने की इच्छा को देख कर विक्रम सम्वत् १५२२ में जागलू पर कुंवर बीका को चढा लाया तथा शत्रुओं को खदेड कर इसके पश्चात् उसका बायां हाथ बन कर बीका की सेवा में रहने लगा[4]। बीका ने साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति से समस्त देश पर शनैः शनैः अपना अधिकार जमा कर, विद्रोही भाटियों, जाटों, जोइयों, खीचियों, पठानों, बाघोडों, बलूचियों और भूटों को हरा कर अभूतपूर्व वीरता, साहस एवं युद्ध-कौशल का परिचय दिया[5]।

दिया गया कि बीकानेर के राजा का राजतिलक उस (पाडू) के ही वंशजों के हाथ से हुआ करेगा, यह प्रथा अब तक प्रचलित है पाडू के वंशज रूणिया के गोदरों को अब यह अधिकार प्राप्त है।

दयालदास की ख्यात, जि० २, पत्र ३। मुन्शी देवीप्रसाद, राव बीकाजी का जीवन चरित्र, पृ० १९।

(डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, बीकानेर का इति० पृ० ९९)

(१) देशराज जघीना, जाट इतिहास, पृ० ६१८।

(२) डा० ओझा, बीकानेर राज्य का इतिहास, पहिला भाग, पृ० ७४।

(३) यह राव बीका का मामा भी लगता था।

(४) वही, बीकानेर राज्य का इतिहास, पहिला भाग, पृ० ७३।

(५) वही, बीकानेर राज्य का इतिहास, पहिला भाग, पृ० ११०।

विक्रम सम्वत् १५६१ आषाढ सुदी ५ सोमवार को वीका का देहान्त हो गया[१]। वीका के दस पुत्र थे[२]। वीका के परलोकवास होने पर उसका ज्येष्ठ पुत्र नरा वीकानेर के राज्य-सिंहासन पर बैठा।

सात मास के बाद सं० १५६१ माघ सुदी ८ को उसका देहान्त हो गया[३]।

नरा के नि:सन्तान मरने पर उसका छोटा भाई होने के कारण लूणकरण विक्रम सम्वत् १५६१ फाल्गुन वदी ४ को वीकानेर की गद्दी पर बैठा[४]। लूणकरण ने अपने पराक्रम से वीकानेर राज्य को काफी बढाया। लूणकरण साहसी और असामान्य वीर होने के साथ ही बड़ा उदार, दानी, प्रजापालक और गुणियों का सम्मान करने वाला था।

उपरोक्त ऐतिहासिक विवरण पढ़ने से यह सुनिश्चित होजाता है कि उस समय देश में शान्ति नहीं थी। अज्ञान-तमसावृत 'जांगल देश' के निवासी अपने सही रास्ते से भटक चुके थे। लूट-पाट और अपहरण की घटनाओं से प्रजा इतनी तंग थी कि वर्ष भर में दस दिन भी लोग, सुख की श्वास नहीं लेसकते थे। यद्यपि राव वीका ने विद्रोहियों को दबाकर देश में कुछ शान्ति-व्यवस्था की स्थापना की किन्तु यह शान्ति वास्तविक शान्ति नहीं थी अपितु लोग आतंक से दबे हुए थे। क्योंकि वीका भी विपक्षियों को लूटने में[५] संकोच नहीं करता था, परन्तु वीका का उद्देश्य निरीह प्रजा को लूटने का नहीं था, वह तो उन लुटेरों को लूट कर तहस-नहस करने पर उद्यत था जिससे उनको दबा कर सर्व साधारण प्रजा को सुख पहुँचाया जाय।

राव वीका के अनुगत उत्तराधिकारियों ने भी अपने न्यायपूर्ण अनुशासन से राव वीका द्वारा इस देश पर संस्थापित राज्य को सुदृढ़ बनाया।

---

(१) वही, वीका० राज्यका इतिहास, पृ० १०९।

(२) १- नरा, २- लूणकरण, ३- घड़सी, ४- राजसी, ५- मेघराज, ६- कल्याण, ७- देवसी, ८- विजयसिंह, ९- अमरसिंह और १०- वीसा।

(३) कुंवर कन्हैयाजूदेव, वीकानेर का राज्य इतिहास।

(४) डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, वीकानेर का इति० पहिला भाग, पृ० ११२।

(५) वही, वीकानेर राज्य का इतिहास, पहिला भाग, पृ० ९९।

पुण्यभूमि कतरियासर का विवरण—

(यह ऊपर कहा जा चुका है कि राठोड़ों के शासन से पूर्व 'जांगल देश' के इस थळी भूभाग पर छोटे छोटे ठिकानों के रूप में जाटों का अधिकार था, उन्हीं ठिकानों के अधिकारान्तर्गत बीसलजी के पुत्र स्वनामधन्य हमीरजी उस समय कतरियासर के अधिपति थे। और इन्हीं महाभाग हमीरजी को सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी का पोषक पिता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। था।

कतरियासर के लिये यह कहना कठिन है कि विक्रम की कौनसी शदी में यह ग्राम आबाद हुआ। पर जसनाथी सिद्धों में कतरियासर के लिये जो धारणा है, वह इस प्रकार है—

सुरगाँ श्याम थलेसर थान, ऊँडा नीर नहीं है पान।
बालमुकनजी बोलिया, च्यार जुगाँ रो एको थान।
कतरियासर कळ ऊपन्या, रम्या'ज कवल्यो का'न।
जाळ बगीची देवरा, छेतर किया धाम।
धूँ धणी है धरम री, ताप्या सुख (दे) हनुमान।
निशाण नगारा नाथरा, सुखदाई सूँ तान (ण)।
वा'रै धाम धरम री, मेळै में भगवान[1]।

---

(१) 'बमलू' भोम भारी रची, ताप्या सत जवान।
हरमल मित्र भागीरथी, न्हाया शील सिनान।
'मालासर' प्यारी सती, इदको दीन्यो मान।
'लिखमाणू' लेवै दियो, दियो जतीजी मान।
'पूनरासर' पीरावरी (परापरी), न्हाया गै'र गुमान।
चिन 'चाऊ' छेतर किया, बन हासाणू नाम।
पूनर दियो परेम भूँ, भरम'ज दियो भान।
दानमर्जी ने मिल्या डोकरा, दूदै (जी) नै भगवान।
नाथ दुवारो 'पांचलो' नोकोटी मे नाव।

अर्थात् थळी पर अवस्थित स्थान ही श्याम का स्वर्ग स्थान है, जहाँ पानी बहुत गहरा है और लता वाले वृक्षों की कमी है। बालमुकुन्दजी कहते हैं ~~अर्थात् भगवान् ने ही निश्चित किया है~~ कि यह स्थान चारों युगों में स्थायी है। कलियुग में भगवान् श्रीकृष्ण ने ही कतरियासर में श्रीजसनाथजी के रूप में निष्कलंक-अवतार लेकर क्रीडा की, जहाँ भगवान् ने उस क्षेत्र को

विरत गूगळ ले होमिया, गीरि छुंहारा ले विदाम।
गुरु वचना 'सुरतो'(जी) भणै महर करी भगवान।

इन पंक्तियों के अतिरिक्त अन्य जसनाथी ग्रामों की नामावली के साथ ऐसा पाठ भी सुनने में आया है—

'घिंटाळ' गुरु रो बेसणा, निज धूणी असथान।
'जोगलियै' धर थर हरि, दोनों पड़िया पाय।
गुरु गोरख पंजो दियो, वचना रै परमाण।
खेतोजी (खरै) मन परगट्या. निज धूणी असथान।
वींजैजी भगति करी, 'वीनादेसर' धाम।
मैया करी हँसराजजी, 'हांसेरा' पर नाम।
सिद्ध मनोहर (जी) तापिया, गंगा गोमती ग्राम।
'पारेवड़ो' है पांचा नगरी, पीराँ रो असथान।
'साधासर' है सतरो खेड़ो, दीवि सिद्धाई नाथ।
सिद्धाई सरणै गई, गंग सवाई जाग।
चूक 'चिताणै' मे पड़ी, अवलियो असथान।
कुवै नीर खारो कियो, वचना रै परमाण।
कळजुग किनारे 'कालड़ी' रहसी इणको मान।
गुरु वचना 'ठुकरो' (जी) भणै, गुरु मनावै ध्यान।

पहिले वाले पद में 'सुरतोजी' का सभोग लगा है और दूसरे में 'ठुकरोजी' का, कहते हैं ये दोनों सगे भाई थे। उपर्युक्त वर्णित नामावली में प्रसिद्ध जसनाथी ग्रामों के नाम छूट गए हैं, रुस्तमजी आदि प्रसिद्ध सिद्धों के स्थानों का नाम छूटना अखरता है अतः यह नामावली अधूरी प्रतीत होती है, क्योंकि लिखितरूप में ये पंक्तियां देखने में नहीं आई, जिह्वा-कर्ण परम्परा में पंक्तियों का छूट जाना स्वाभाविक है।

धाम बनाकर जाळ, बाड़ी और मन्दिर के लिए उपयोगी बनाया। यह धूनी (स्थान) धर्म की है, यहाँ सुखदेवजी तथा हनुमानजी ने तप किया। यहाँ के सुखदायक उपकरण 'नाथ' के नगाड़े और निशान[1] (झण्डा) हैं, वैसे तो जसनाथी सिद्धों में धर्म के बारह धाम माने गये हैं किन्तु कतरियासर के मेले में स्वयं भगवान् के दर्शन होते हैं।

कतरियासर की प्राचीनता के विषय में एक 'सबद' और प्रचलित है उसमें कतरियासर का पूर्व नाम 'केतली' बताया गया है, सम्भव है यह ग्राम बहुत-प्राचीन हो। लोगों का कहना है कि वर्तमान स्थान से कतरियासर पहिले किसी अन्य स्थान पर आबाद था। लोगों का यह कथन भी विचारणीय है— उतराधे वास वाला कूआ बहुत प्राचीन है, श्रीजसनाथजी ने लोगों को यह कूआं बताया था, इस कूवे की सुगड़ नाळ (राजा सगर के पुत्रों द्वारा खोदी हुई) बताई जाती है, श्रीजसनाथजी ने यहाँ 'सुगड नाळ'का निर्मित कूआं ही बताया था। राजस्थान— बीकानेर-मण्डल के थळी प्रदेश के गाँवों में ऐसे कूओं का पाया जाना सर्वविदित है। इस कूवे की प्राचीनता के आधार पर ऐसा मानना असगत नहीं कि सम्भवत. कतरियासर ग्राम भी बहुत प्राचीन हो[2]।

क्योंकि प्राचीनकाल से ही इस परमपवित्र वसुन्धरा पर मनस्वी महर्पिमुनियों ने अपने श्रीचरण रखकर इसे गौरवशालिनी बनाया था। बीकानेर से पश्चिम में श्रीकोलायत तीर्थ साख्य-दर्शन के प्रणेता भगवान् कपिलमुनि का आश्रम है। भगवान् कपिलमुनि ने अपनी माता देवहूती

---

(१) जसनाथी सिद्धों का ध्वज भगवें रङ्ग का होता है ऊपर के शिरे पर मोर पक्षी की पाखें बन्धी रहती हैं।

> श्रीजसनाथ निज हेतु है, आदेश सिरसाज।
> मोर पर ध्वज सुकेतु है श्रीसिद्धेश्वरराज।
>
> (यशोनाथ सगीता, मगलाचरणम्)

(२) सुप्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के मतानुसार काबुल से लेकर बीकानेर डिवीजन के पूर्वी भाग तक प्रागैतिहासिक स्थल हैं।

को इसी स्थान पर साख्य-योग-दर्शन का उपदेश दिया था। कपिल क्षेत्र के समीप ग्राम 'देवहूति' नाम का ग्राम इस बात की साक्षी के लिए ज्वलन्त उदाहरण है। कहते हैं महर्षि याज्ञवल्क्य, च्यवन और गुरु दत्तात्रेय ने भी इस पवित्र क्षेत्र में तप-साधन किया था, जिनके नाम पर क्रमशः 'जागीरि' नाम का तालाव, 'चिमनगुफा' और श्रीकोलायत से पश्चिम में 'दियात्रा' (द्यातरा) नाम का गाँव इस बात का सार्थक है।

दक्षिणी पूर्वी कोने में छापर के पास काळा डूंगर नाम की पहाड़ी है। उसकी तलहटी में पहिले द्रोणपुर नाम का एक वड़ा शहर था, जिसे द्रोणाचार्य ने वसाया था। वहाँ पर द्रोणाचार्य का आश्रम था। कहते हैं वन वास में भ्रमण करते हुए पाण्डव एक वार यहां आये थे[1]।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की समकालीन महाविभूति भगवती श्री करणीजी का मुख्य स्थान 'देशनोक', सदाचार मूलक श्री जांभोजी का 'मुकाम', चौहान श्री गोगाजी की 'गोगामेड़ी', नोहर के पास श्याम पाण्डिये का 'धोरा' और सालासर- पूनरासर श्रीहनुमानजी के मुख्य स्थान इसी पुण्य-धरा-धाम का महत्व प्रकट करते हैं।

कतरियासर इसी प्राचीन 'जांगलदेश' और वर्तमान वीकानेर डिवीजन के थली प्रदेश मे विद्यमान है।

निखिल जसनाथी सिद्ध, जाट एवं अन्यान्य जसनाथी समाज का यह ग्राम पवित्र भावना का श्रद्धा-स्थल है।

कतरियासर वीकानेर से पूर्वोत्तर भाग में १२ कोस की दूरी पर एवं वीकानेर-भटिंडा रेल्वे-लाइन की स्टेशन जामसर से ६ कोस पूर्व में है। वीका-नेर-दिल्ली रेल्वे-लाइन की स्टेशन नापासर से कतरियासर ६ कोस उत्तर में है। प्रसिद्ध क्षेत्र 'रुणियें के वास' तीन कोस पूर्व में हैं तथा उत्तर मे दो कोस 'मंलारियाँ' ग्राम है। दक्षिण मे चार कोस 'वमलू' और पश्चिम में मालासर दो कोस के अन्तर पर है। पूर्वोत्तर भाग में प्रसिद्ध ग्राम काळू है।

कतरियासर का कुल अधिवास १५० घरों के लगभग है, ग्राम के

(१) नरोत्तमदास स्वामी, 'वीकानेर के वीर' पृष्ठ ८।

चारों ओर सुरक्षित ओयण[1] (ओरण) है। ग्राम के दोनो वासों में अलग २ कुए बने हुए हैं। बाड़ी के पास वाले कुएं का पानी पहिले खारा हो गया था, पर अब पुन पानी मीठा हो जाने से वह अपने माधुर्य को लिए हुए अहनिश बहता रहता है।

कतरियासर के मूल निवासी सिद्ध और जाट दोनों जाणी शाखा के एक ज्येष्ठ (पूर्वज) की सन्तान हैं। कतरियासर में कुछ घर अन्य जाति के लोगों के भी हैं, पर श्रीजसनाथजी की मान्यता रखने में सब समान हैं। ग्राम का रहन-सहन एव वातावरण बहुत पवित्र है, जसनाथी खेडा होनेके कारण यहां के लोगों में कोई दुर्व्यसन नहीं है। शिकारादि करना यहां सर्वथा निषिद्ध है।

सिद्धो की तरह कतरियासर के जाणी जाट भी पूर्व परम्परा से मृतक को समाधि देते हैं। इसी नियम का कुछ अन्य गावों के जसनाथी लोग भी पालन करते हैं परन्तु सिद्धों के अतिरिक्त सभी जसनाथी लोगों के लिए यह नियम आवश्यक नहीं है।

कतरियासर के सभी स्त्री-पुरुष कम से कम दिन मे एकबार बाडी मे दर्शनार्थ अवश्य पहुँचेगे। प्राय सभी दर्शनार्थी पक्षियों के लिए चुग्गा और पानी साथ मे लेजाते हैं। मथनी का पहिला घृत और खेत की उपज के अनुपात से वार्षिक चुग्गा इनके लिए बाड़ी में देना अनिवार्य है। कमीपूर्ति के लिए कभी कभी सालभर में दो चार भी पक्षियों के लिए चुग्गा सग्रह किया जाता है। निकटवर्ती गाँवों से भी बाडी के लिए चुग्गा प्राप्त करना इनके लिए कोई सकोच की बात नहीं है।

बाडी – जहां सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी ने गोरखमाळिए के नीचे बारह वर्ष तपोपदेश किया था, जहा श्रीजसनाथजी की समाधि पर विशाल

(१) 'ओयण' शब्द सस्कृत के उपवन शब्द का अपभ्रश है। उपवन से प्राकृत में 'उअवण' शब्द बनता है जो अपभ्रश में 'उ' और 'अ' की सन्धि होकर 'ओअण' बन जाता है, उसी से डिगळ में ओयण शब्द बना है। उपवन का अर्थ है बाग। आजकल 'ओयण' शब्द रक्षित जगल के लिए व्यवहृत होता है। 'ओरण' मे आरण्य, जगल का अर्थ निकलता है।

मन्दिर बना हुआ है, जहाँ अनेकों सिद्ध-पुरुषों एवं सतियों की जीवित समाधियां हैं और जहां कतरियासर के विविध सिद्ध, महन्त और सेवकों ने शरीरान्त होने पर जिस भूमि के अन्तर में चिरनिवास किया है, उसको बाड़ी या श्रीजसनाथजी की बाड़ी भी कहते हैं, बाड़ी का दूसरा नाम आसण (आश्रम) भी है। दूसरे गाँवों में भी जहाँ जहाँ श्रीजसनाथजी का मन्दिर एवं स्थान है, बाड़ी नाम से ही सम्बोधित होता है।

कतरियासर को श्रीजसनाथजी की बाड़ी का विस्तार ८४ बीघा में है, बीकानेर का जूनागढ़ और कतरियासर मे श्रीजसनाथजी की बाड़ी का क्षेत्रफल बराबर बताया जाता है।

सुकोमल रेतीले टीबों से आवृत बाड़ी का दृश्य बड़ा दिव्य और चित्ताकर्षक है। बाड़ी के मध्य में श्रीजसनाथजी की समाधि पर अंडाकार अतिरम्य विशाल मंदिर बना हुआ है, जिस पर श्वेतकलई का पक्का पलस्तर किया हुआ है। कंगूरेदार बिरन्डी मंदिर की प्राचीनता का बोध कराती है। प्रारभ मे मंदिर की प्रतिष्ठा श्री पालोजी ने की थी, जिसका वर्णन यथास्थान किया गया है।

सम्भव है इतने लम्बे समय में मंदिर की कई बार मरम्मत हुई होगी पर 'स्व० श्री मघानाथ पोळिये' ने मंदिर का समुचित जीर्णोद्धार करवाकर प्रशंसनीय कार्य किया है। मंदिर के सभामंडप मे संगमरमर का पत्थर लगा हुआ है। बाहर के चौक पर 'खारी' ग्राम का लालपत्थर लग जाने से मंदिर की उम्र बहुत बढ गई है। मंदिर के इधर उधर चौक पर कतरियासर के सिद्ध महन्तों की समाधियों के चिह्न, हैं किन्तु चौक पर मृतक को समाधि दीजाने की प्रथा अब समाप्त होगई है जो बहुत ही समयानुकूल और उचित प्रतीत होती है। सभामंदिर मे कब्रनुमा समाधि है जो नाथ, परम्परा के अनुकूल नहीं है, यह कार्य मुसलमानी शासनकाल में लोभ, दबाव या मूर्खतावश किया गया जान पड़ता है। बहुत ही अच्छा होता यदि इस मंदिर मे सिद्धाचार्य की समाधि पर स्थापत्यकला की आदर्शपूर्ण मूर्ति संस्थापित की हुई होती। मुख्य मंदिर के अतिरिक्त बाड़ी में जीवित समाधियों पर और भी छोटे छोटे देवालय बने

चारों ओर सुरक्षित ओयण[1] (ओरण) है। ग्राम के दोनों वासों में अलग २ कुए बने हुए हैं। बाड़ी के पास वाले कुएं का पानी पहिले खारा हो गया था, पर अब पुन पानी मीठा हो जाने से वह अपने माधुर्य को लिए हुए अहनिश बहता रहता है।

कतरियासर के मूल निवासी सिद्ध और जाट दोनों जाणी साखा के एक भडेरी (पूर्वज) की सन्तान हैं। कतरियासर में कुछ घर अन्य जाति के लोगों के भी हैं, पर श्रीजसनाथजी की मान्यता रखने में सब समान हैं। ग्राम का रहन-सहन एव वातावरण बहुत पवित्र है, जसनाथी खेडा होनेके कारण यहां के लोगों में कोई दुर्व्यसन नहीं है। शिकारादि करना यहा सर्वथा निषिद्ध है।

सिद्धों की तरह कतरियासर के जाणी जाट भी पूर्व परम्परा से मृतक को समाधि देते हैं। इसी नियम का कुछ अन्य गावों के जसनाथी लोग भी पालन करते हैं परन्तु सिद्धों के अतिरिक्त सभी जसनाथी लोगो के लिए यह नियम आवश्यक नहीं है।

कतरियासर के सभी स्त्री-पुरुष कम से कम दिन में एकबार बाडी में दर्शनार्थ अवश्य पहुँचेंगे। प्राय सभी दर्शनार्थी पक्षियों के लिए चुग्गा और पानी साथ में लेजाते हैं। मथनी का पहिला घृत और खेत की उपज के अनुपात से वार्षिक चुग्गा इनके लिए बाड़ी में देना अनिवार्य है। कमीपूर्ति के लिए कभी कभी सालभर में दो बार भी पक्षियों के लिए चुग्गा सग्रह किया जाता है। निकटवर्ती गॉवों से भी बाडी के लिए चुग्गा प्राप्त करना इनके लिए कोई सकोच की बात नहीं है।

बाडी – जहां सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी ने गोरखमाळिए के नीचे बारह वर्ष तपोपदेश किया था, जहां श्रीजसनाथजी की समाधि पर विशाल

---

(१) 'ओयण' शब्द सस्कृत के उपवन शब्द का अपभ्रश है। उपवन से प्राकृत में 'उअअण' शब्द बनता है जो अपभ्रश में 'उ' और 'अ' की सन्धि होकर 'ओअण' बन जाता है, उसी से डिंगळ में ओयण शब्द बना है। उपवन का अर्थ है बाग। आजकल 'ओयण' शब्द रक्षित जगल के लिए व्यवहृत होता है। 'ओरण' से आरण्य, जगल का अर्थ निकलता है।

मन्दिर बना हुआ है, जहाँ अनेकों सिद्ध-पुरुषों एवं सतियों की जीवित समाधियां हैं और जहां कतरियासर के विविध सिद्ध, महन्त और सेवकों ने शरीरान्त होने पर जिस भूमि के अन्तर में चिरनिवास किया है, उसको वाड़ी या श्रीजसनाथजी की वाड़ी भी कहते हैं, वाड़ी का दूसरा नाम आसण (आश्रम) भी है। दूसरे गाँवों में भी जहाँ जहाँ श्रीजसनाथजी का मन्दिर एवं स्थान है, वाड़ी नाम से ही सम्बोधित होता है।

कतरियासर की श्रीजसनाथजी की वाड़ी का विस्तार ८४ बीघा में है, बीकानेर का जूनागढ़ और कतरियासर में श्रीजसनाथजी की वाड़ी का क्षेत्र-फल बरावर बताया जाता है।

सुकोमल रेतीले टीबों से आवृत वाड़ी का दृश्य बड़ा दिव्य और चित्ताकर्षक है। वाड़ी के मध्य में श्रीजसनाथजी की समाधि पर अंडाकार अतिरम्य विशाल मंदिर बना हुआ है, जिस पर श्वेतकलई का पक्का पलस्तर किया हुआ है। कंगूरेदार त्रिरन्डी मंदिर की प्राचीनता का बोध कराती है। प्रारंभ मे मंदिर की प्रतिष्ठा श्री पालोजी ने की थी, जिसका वर्णन यथास्थान किया गया है।

सम्भव है इतने लम्बे समय में मंदिर की कई बार मरम्मत हुई होगी पर 'स्व० श्री मेघानाथ पोल्डिये' ने मंदिर का समुचित जीर्णोद्धार करवाकर प्रशंसनीय कार्य किया है। मंदिर के सभामंडप में संगमरमर का पत्थर लगा हुआ है। बाहर के चौक पर 'खारी' ग्राम का लालपत्थर लग जाने से मंदिर की उम्र बहुत बढ गई है। मंदिर के इधर उधर चौक पर कतरियासर के सिद्ध महन्तों की समाधियों के चिह्न हैं किन्तु चौक पर मृतक को समाधि दीजाने की प्रथा अब समाप्त होगई है जो बहुत ही समयानुकूल और उचित प्रतीत होती है। सभामंदिर में कब्रनुमा समाधि है जो नाथ, परम्परा के अनुकूल नहीं है, यह कार्य मुसलमानी शासनकाल में लोभ, दबाव या मूर्खतावश किया गया जान पडता है। बहुत ही अच्छा होता यदि इस मंदिर में सिद्धाचार्य की समाधि पर स्थापत्यकला की आदर्शपूर्ण मूर्ति संस्थापित की हुई होती। मुख्य मंदिर के अतिरिक्त वाड़ी में जीवित समाधियों पर और भी छोटे छोटे देवालय बने

हुए हैं । इनके अलावा मुख्य मदिर के सामने 'संगीत चौकी' और हवन वेदी बनी हुई है जहाँ मेले के समय सिद्ध लोग बैठकर जागरण एव हवन कार्य सम्पन्न करते आरहे हैं।

गोरख माळिया— यह वही परम पवित्र स्थान है जिसका विशद वर्णन यथा प्रसंग आगे की अध्यायों में किया गया है । 'गोरख माळिये' के चारों ओर गोलावृत्त से लाल पत्थर का चबूतरा बन्धा हुआ है, इसका श्रेय भी मघानाथ को है। पहिले यहाँ गोबर मिट्टी का कच्चा ओटिया (चबूतरा) था। गोरखमाळिया इस लाल पत्थर के चबूतरे का नाम ही नहीं है अपितु चबूतरे पर जो मीठी जाळ (पीलू) का पेड है उसे मय इस स्थान के गोरख माळिया सज्ञा दी गई है । जाळ का पेड़ बहुत ही सुन्दर और सुहावना लगता है। यह जाळ वि० सं० १५५१ में स्वयं सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी के कर कमलों से लगाई गई थी। मीठी जाळ के पेड़ की उम्र दस हजार वर्ष से भी अधिक बताई जाती है, इस दृष्टि से यह जाळ अभी अपनी किशोरावस्था में है । जाळ की टहनियों ने लता की भाति फैल कर चौक को चारों ओर ढाप लिया है। जाळ के सघन और ठढी होनेके कारण बाड़ी के मयूरादि पक्षी बड़े आराम से इसके झुरमुट में बैठे कल्लोल करते रहते हैं।

श्रीजसनाथजी की मुख्य चौरासी बाड़ियों में सब जगह जाळ का पेड लगा हुआ है। जाळ के प्रति जसनाथी सिद्धों का निम्नांकित उद्गार मान्यता और श्रद्धा का जीवित उदाहरण है।

ज्यूँ वृज में गोविन्द रम्यो, ज्यूँ तरवर में पात ।
जीव ! तूँ ने'चै राखिये, जाळ जठै जसनाथ ॥

तालाब— बाडी के बाहर पूर्वी भाग में 'गोरखाणू' नाम का एक छोटासा पक्का तालाब है । पहिले रेतका टीला आजाने से भूमिगत होगया था ग्रामीणों ने सामूहिक श्रम से रेत हटा कर जीर्णोद्धार कर पुन इसे जन-लाभ के लिए उपयोगी कर दिया ।

सतीजी की बाडी— कतरियासर से पूर्व की ओर लगभग एक माइल के फासले पर महासती काळलदे की बाडी है। बाड़ी में सतीजी का

एक सुन्दर मंदिर है। जब सतीजी और बेणीवाल परिवार चूड़ीखेड़ा से कतरियासर आये थे तब सतीजी का रथ और बेणीवालों के गाडे (बैलगाड़ियां) सबसे पहिले इसी स्थान पर ठहरे थे। चैत्र शुक्ला ४ को प्रतिवर्ष यहां सतीजी का बड़ा भारी मेला लगता है। रात को यहाँ सतीजी का जागरण होता है। इसी गांव के दक्षिणी मुहल्ले में श्री पालोजी की बाड़ी का स्थान है।

कतरियासर से दक्षिण में 'जांभाथळ' नाम का धोरा (टीला) है, सरकारी पैमाइशी कागजों में भी इस स्थान का नाम 'जांभाथळ' ही अंकित है। प्रसिद्ध सन्त जांभोजी जब सिद्धाचार्य से मिलने कतरियासर आये थे तब आचार्य की यौगिक शक्ति ने उनका रथ वहीं घुमाया अतः जांभोजी को रथ से नीचे उतर कर पैदल ही चलना पड़ा, यह 'जांभाथळ' अब तक उस घटना की स्मृति करवाता है।

कतरियासर के उत्तरी भाग में दो कोस पर 'भागथळी' नामका खेत है जहाँ वि० सं० १५५१ में गुरु गोरखनाथजी ने श्रीजसनाथजी को दर्शन देकर कृतार्थ किया था और चार कोस के अन्तर पर 'डाबला' नाम का तालाब है जहाँ हमीरजी को बालक रूपमें जसनाथजी की प्राप्ति हुई थी।

कतरियासर मे क्रमशः तीन मेले लगते है—आश्विन शुक्ला सप्तमी, माघ शुक्ला सप्तमी और चैत्र शुक्ला सप्तमी, इन तीन मेलों में श्रीजसनाथजी की बाडी में बडी धूमधाम से जागरण होता है और प्रातःकाल से सायंकाल तक घृत मिश्रित सुगन्धित द्रव्यों का हवन होता रहता है।

यात्रीगण अपने बच्चोंका चूड़ान्त (झडूला) संस्कार इसी दिन 'गोरखमाळिये' पर आकर करते हैं। प्रत्येक जसनाथी के लिये कतरियासर गंठजोड़े की यात्रा करनी अनिवार्य बनी हुई है अतः दूर दूर से अनेकों यात्री उपर्युक्त तीनों मेलों में कतरियासर आकर अपने को कृतार्थ करते हैं।

कतरियासर की दोनों बाड़ियों के पीछे 'माफीदान' की काफी भूसम्पत्ति है जिसका हिस्सेवार उपभोग कतरियासर के सभी सिद्ध करते हैं परन्तु श्री जसनाथजी के मन्दिर की आय तथा पूजा का अधिकारी श्री जागोजी की परम्परानुगत टीकाई सिद्ध ही हैं। इसी प्रकार सतीजी के मन्दिर की

आय और पूजा का अधिकारी 'सती सेवक' उपाधिकारी सिद्ध है।

श्री जसनाथजी के यात्रियों को दोनों समय का भोजन जागोजी परम्परा में नियुक्त महन्त को देना पड़ता है और सतीजी के यात्रियों को दो समय का भोजन 'सती सेवक' के जिम्मे है। सम्प्रदाय में सती सेवक मेले में लागत खर्च की उगाही करने का भी अधिकार प्राप्त है और इसी प्रव टिकाई महन्त अपने सेवकों में सदलबल फेरी चढाने का अधिकारी है। अच सवत् में इनको हजारों रुपये की आय होती है।

मन्दिरों (श्री जसनाथजी और सतीजी) में दोनों समय विधि विध से पूजा आरती होती है। सिद्ध पवित्रता पूर्वक पहिले हवन-ज्योति को प्रज्ज लित करता है तत्पश्चात् नगाड़ा शख और झालर की झकार के साथ आर प्रारभ होती है। छोटे छोटे देवालयों और गोरखमाळिये पर इसी आर पात्र से आरती उतारी जाती है।

समस्त जसनाथी समाज में प्रत्येक मास की शुक्ला सप्तमी एवं चतु विशेष तिथि समझी जाती हैं। जसनाथी का यह अर्थ है कि जो व्यक्ति जसनाथजी द्वारा प्रतिपादित ३६ धर्म नियमों का भली भाँति से पाल करने की 'चळू'[1] लेकर प्रतिज्ञा करता है या जिसने की हो वह तथा उस सन्तान को जसनाथी समझा जाता है। श्री जसनाथजी को मानने वाले क्ष देवों की उपासना नहीं करते।

कतरियासर सहित सिद्धों के कई मुख्य स्थान माने जाते हैं कि मूल ठिकाने निम्नांकितहै— (१) कतरियासर मुख्य धाम— यहाँ के टिक महन्त श्री जागोजी की परम्परा के होते हैं। (२) बमलू— श्री हारोजी परम्परा, (३) लिखमादेसर— श्री हांसोजी की परम्परा, (४) पूनरासर

---

(१) पचगव्य की तरह तरल पदार्थ को चळू कहते हैं। हाथ में जल ले या आचमन कर प्रतिज्ञा करना एक भारतीय पुरातन पद्धति रही है।

(२) दुनिया पूजै देवता, सूना खेतरपाळ।
सावण की नदियां निठै; (ज्यू) खादर खोळा खाळ।
(श्री लालनाथजी, 'जीव समझोतरी')

श्रीपालोजी की परम्परा, मालासर और पांचलासिद्धों का श्रीटोडरजी की परम्परा, विरक्त परम हंसों की मण्डली इनके अतिरिक्त सिद्धों के जितने ठिकाने व श्री जसनाथजी की 'बाड़ियां' हैं वे सब अलग अलग इन्हीं उपर्युक्त परम्पराओं के अन्तर्गत आजाते हैं जिनका प्रसंगानुसार वर्णन आगे की अध्यायों में किया गया है। सिद्ध या महन्त अपने अपने मण्डल के सेवकों के यहां 'फेरी'[1] के समय जागरण देकर भेट लेते हैं, जसनाथी सेवक अधिकतर बीकानेर, जोधपुर और जेसलमेर के प्रदेशों में निवास करते हैं।

(१) सेवक के घर प्रतिवर्ष नगाड़ा-निशान सहित जाकर तथा श्री जसनाथजी का जागरण देकर भेंट लेने को 'फेरी' कहते हैं।

द्वितीय अध्याय

हमीरजी और उनके पूर्वजों का वृत्तान्त

भारतवर्ष के विशाल जाति समूह में जाट जाति का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। पूर्व इतिहासकारों ने जाटों की गणना शासक जाति में की है और स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहिले तक जाट कई जनपदों के शासक थे। छत्तीस राजवशों में जाटों की गणना की गई है, जिसका उल्लेख चद कवि ने 'जिट' नाम से किया है। कर्नल टॉड ने 'जित' व 'जाट' लिखा है[1]। 'टॉड राजस्थान' में लिखा है कि 'जित' जाति पजाब में स्थित होकर बहुत दिन तक अपने अटल प्रताप से विराजमान रही'

महमूद गजनवी को भी जाटों ने अपने प्रबल पराक्रम से बड़ा तग एवं तिरस्कृत किया था अतएव यह नि.संकोच कहा जा सकता है कि जाट वश भी किसी समय भारत का एक विख्यात वीर वश था जिसने एक बार तो दुर्दान्त विदेशी आक्रान्ता महमूद गजनवी को अपनी वीरता के बल पर ऐसा छकाया कि उसके दान्त खट्टे कर दिये थे। उसको इनके सामने भागते ही बन पड़ा[2]। अब तक के उपलब्ध विवरणों व तथ्यों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि धर्मपालन, धार्मिकउत्सर्ग, ईश्वर-निष्ठा, सदाचार-सम्पन्नता, सत्यप्रियता एव ध्येय-दृढता आदि सद्गुण जाट जाति में प्रचुर मात्रा में विद्यमान थे और इन्हीं कारणों से विशाल हिन्दूसमाज में उसका महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

जाटों की मूल उत्पत्ति के विषय में इतिहासज्ञों के विभिन्न मत हैं— भगवान् शकर की जटा से उत्पन्न होने के कारण भी इनको जाट कहा जाता है। यह सर्व विदित है कि जाट विशुद्ध आर्य हैं, विदेशी इतिहासकारों ने

---

(१) ले० शिवप्रसाद त्रिपाठी, मरु-भूमि के चार धम-वीर जुझार, पृष्ठ० ४२

तथ्यान्वेषण की धुन में बहुत से प्रचलित तथ्यों को जाने अनजाने में उपेक्षित या विस्मृत कर सारा गुड गोवर कर दिया है। इतिहासकारों ने जाटों को हूण, शक और सिथियन घोषित किया है, जो असंगत होने के साथ साथ अन्याय-पूर्ण भी है।

गंभीरता पूर्वक विचार करने से पता चलता है कि जब हूण और शक जाति के लोगों के आक्रमणों की कल्पना तक नहीं थी, जाट तब भी भारत मे यत्रतत्र आबाद थे। महर्षि पाणिनि, जो ईसा से लगभग ६०० वर्ष पूर्व हुए हैं, के प्रसिद्ध व्याकरण (धातु पाठ) मे जट शब्द आता है, जिसका अर्थ होता है 'सघ'। पंजाब मे जाट की अपेक्षा 'जट' या 'जट्ट' शब्द का ही प्रयोग अब तक भी होता है। किसी अरबी यात्री ने श्री कृष्ण तक को जाट लिखा है[1], यदि उस अरबी यात्री की बात मान भी ली जाय तो सिर्फ यही अभिप्राय निकलता है कि श्री कृष्ण अपूर्व संगठन कर्ता थे।

अंग्रेज अन्वेषकों ने मानव-जाति-भेदों की पहचान के विषय में जिन आधारों को स्वीकार किया है उनमें से दो मुख्य हैं (१) शारीरिक बनावट, और (२)भाषा-विज्ञान। अन्वेषकों ने शरीर शास्त्र के आधार पर मनुष्य जाति को पांच श्रेणियों मे विभक्त किया है— (१) आर्य, (२) मंगोलियन, (३) मलय, (४) हब्शी और (५) अमेरिकन। रंग भेद से ये जातियाँ क्रमशः गोरी, पीली, काली और लाल कहलाती हैं। आर्य जातीय जन गोरे या उजले रंग, उन्नत ललाट, सुआसारी नाक, विशाल छाती और काली आँखों वाले एवं दीर्घ भुजाओं व टांगों वाले होते हैं। आर्यों के ये सब लक्षण निःसन्देह ही जाटों में पाये जाते हैं, अतएव विदेशी इतिहासकारो के निष्कर्षों की भ्रान्तता व काल्पनिकता इस सम्बन्ध मे स्पष्ट हो जाती है और जाटों के आर्य जातीय होने में किसी संदेह की गुंजाइश नहीं रह जाती।

जाट जाति की अनेकों शाखायें क्षत्रियों में से निकली हुई हैं, क्योंकि इनके गोत्र अधिकतर क्षत्रियों के गोत्रों से मिलते हैं, तथा वंश परम्परा भी उन प्राचीन मनस्वी क्षत्रियों से मिलती है। राजस्थानी जाटों के ऐसे अनेकों गोत्र

(१) देशराज जघीना, जाट इतिहास, पृ० ५९

हैं जो क्षत्रिय गोत्रों के सर्वथा समान हैं। यथा—परिहार, सोलंकी, तोमर, कछवाह, धाड़ीवाल, सैंगर और भट्टी। मध्यकालीन क्षत्रियों के गोत्र और जाटों के गोत्र एक जैसे पाये जाते है, जैसे—गोरी, राठी, दीक्षित, दोहिया, दहिया और चोटिया[1]।

इसके अतिरिक्त जाटों मे अन्य उच्च एव समकक्ष जातियों का भी सम्मिश्रण हुआ जान पडता है। जाटो मे 'जाणी' 'हुडा' 'ईसराम' और 'भूरिया' गोत्र पुरुषोत्तम ब्राह्मण के पुत्रों के नाम पर चालू हुए हैं।

पुरुषोत्तम ब्राह्मण नागौर के पार्श्ववर्ती किसी ग्राम का रहने वाला था। मुसलमानों ने एक बार वध करने के उद्देश्य से ब्राह्मण पुरुषोत्तम की गाय को पकड़ लिया। धर्म-प्राण पुरुषोत्तम से यह जघन्य कृत्य नहीं सहा गया। उसने साहस पूर्वक वधिकों का काम तमाम कर उनके हाथ से गाय की रक्षा की। इसी के फलस्वरूप पुरुषोत्तम को तात्कालिक यवन शासक का कोप भाजन बनना पड़ा। पुरुषोत्तम को विश्वास हो गया था कि यवन शासक द्वारा उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है अतः दूरदर्शी पुरुषोत्तम ने अपनी सती साध्वी गृहलक्ष्मी को सचेत कर दिया कि उसके पकड़े जाने पर वह अपने चारों पुत्रों सहित 'डेह'[2] में अपने यजमान के यहा शरण लेले। समयोपरान्त ऐसा ही किया गया। निदान पुरुषोत्तम भी उस यवनशासक द्वारा पकड़ा गया और निर्दयता पूर्वक तलवार के घाट उतार दिया गया।

पुरुषोत्तम के चारों पुत्र उन दिनों बहुत छोटे थे। जब ये विवाह के योग्य हुए तो ब्राह्मणों ने इन्हे भ्रष्ट हुआ समझकर जाति बहिष्कृत कर दिया। अत. उनके सम्बन्ध में बड़ी कठिनाई उपस्थित हुई, क्योंकि इनका आश्रय-

---

(१) 'चोटिया' खण्डेलवाल ब्राह्मणो का भी एक शासन है—

शिखा वृद्धतरा यस्य सर्वांगे लुलिता परा।
तस्माच्चौल इतिख्यातो भूसुरो भुवि मण्डले॥

(खाण्डल विप्र इतिहास, पृ० ३७९)

(२) नागौर से लगभग ९ कोस पूर्व भाग में है। इस ग्राम का ऐतिहासिक

दाता 'डेह' का शासक जाट था। ये डेह से चलकर वाडेला[1] ग्राम में आकर रहने लगे और जाट जाति से ही अपना वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ लिया। उस समय वाडेला की अधिकतर आबादी तिवाड़ी ब्राह्मणों की थी। पुरुषोत्तम के चारों पुत्रों ने उस समय की परिपाटी के अनुसार तिवाड़ी को ही अपना 'घरू ब्राह्मण' बनाना स्वीकार किया। स्वयं पुरुषोत्तम भी तिवाड़ी ब्राह्मण था[2]। पुरुषोत्तम के चारों पुत्रों की सन्तान उनके नाम गोत्र से ही जाट जाति मे प्रसिद्ध हुई। यही कथा भाटों की 'बहियों' एवं मिरासियों (ढाढियों) की दन्त कथाओं में प्रकारान्तर से लिखी तथा कही जाती है।

ज्ञात होता है कि पुरुषोत्तम के चारों पुत्रों मे ज्येष्ठ पुत्र 'जाणी' बड़ा ही साहसी, वीर तथा कुशल विजेता था, क्योंकि जाणी के नाम पर 'जाणीवा' 'जाणीयावास' आदि[3] कई ग्राम बसे हुये हैं। सम्भवतः जाणी ने 'जाणीवा' को ही अपना प्रधान स्थान बनाया, क्योंकि अब तक 'जाणीवा' मे अधिकांश आबादी जाणी जाटों की है। 'जाणीवा' के स्थापना-काल निर्धारण के सम्बन्ध में अब तक प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध नहीं हुई है। संभवतः १४-१५ वीं शताब्दी मे यह ग्राम बसा हो।

'जाणीवा' से जाणी के वंशज केनली ग्राम आकर बस गये। तत्पश्चात् जाणी के वंशज कुन्तोजी ने केतली से कतरियासर नाम देकर आबाद किया। कुन्तोजी की पीढी में वजीणजी हुये और वजीणजी के कुल में शील-सन्तोष

---

(१) यह ग्राम श्रीडूगरगढ तहसील में है। श्रीडूगरगढ से दक्षिण में लगभग १० कोस की दूरी पर है।

(२) अन्य मतानुसार 'जोशी' था किन्तु सिद्ध रामनाथ ने पुरुषोत्तम को पारीक-तिवाड़ी ब्राह्मण ही माना है एव उसका जीवनकाल वि० सं० १३९० माना है। उपर्युक्त पुरुषोत्तम एवं उसके पुत्रों के सम्बन्ध में सिद्ध रामनाथजी ने एक पर्चा वि० स० १९९९ मे श्री राधाकृष्ण प्रिंटिंग प्रेस, जोधपुर से प्रकाशित करवाया था, जो हमारे संग्रह में है।

(३) यह ग्राम नागौर परगने में नागौर से १० कोस के लगभग पूर्व दिशा में है।

क्षमाव्रतधारी, परोपकारी, सर्वगुणसम्पन्न, विराटकाय, अत्यधिक प्रभावशाली साहसी वीर-पुरुष बीसलजी हुए। बीसलजी की गुण-गरिमा की साक्षी भाटों की पुस्तकें अनेकों विशेषणों के साथ दे रही हैं। बीसलजी ने अनेकों बार कटक (सामूहिक रूप से डाका डालने वाला दल) दौडने वाले भट्टी एवं खधारों[1] के विरुद्ध अपनी तलवार उठाकर उन्हें परास्त किया था।

बीसलजी के चार पुत्र हुए-(१) हमीरजी, (२) राजोजी (३) धनराजजी और (४) मंगलोजी। भाटों और उनकी वहियों के कथनानुसार बीसलजी की अन्तिम सन्तान मगलोजी ने वि० सं० १५४२ में[2] विस्नोई धर्म स्वीकार कर लिया।

महामना बीसलजी के देवलोक होने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र परम विवेकी धर्म-परायण तथा भाग्यशाली हमीरजी कतरियासर ग्राम के अधिपति घोषित हुए। हमीरजी की धर्म-पत्नी का नाम रूपादे था, यह 'सोमवाळ' शाख के जाट की लड़की थी। किन्तु यह पता नहीं चलता कि हमीरजी की ससुराल किस ग्राम मे थी।

एक हस्तलिखित लेख में योगी श्री कृष्णनाथ 'तितिक्षु' ने हमीरजी के विषय में लिखा है— 'उनका यश मरुस्थल की चारों दिशाओं में चन्द्रमा की कौमुदी के सदृश देदीप्यमान हो रहा था। उनका घर-जन-धन-अन्नादि से सुसम्पन्न था। वे दान करने में राजा कर्ण के समान साहसी थे और प्रजापालन में विष्णुजी के समान कहें तो भी अत्युक्ति असभव है। उनकी अर्द्धांगिनी श्रीमती रूपादे पातिव्रत्य धारिणी सती सीता के सदृश सौभाग्यवती और सुशीला महिला थी। इतना सब कुछ होते हुए भी दैवदुर्विपाक से

---

(१) साच्यो धन धरती में रें'सी का कोई कटक खधारे।
(सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी)

(२) वि० स० १५४२ में विसनोई धर्म अस्तित्व में भी नही आया था। हां इस सम्वत् में श्री जांभोजी गुरु गोरखनाथ द्वारा दीक्षित अवश्य

युवावस्था में[1] उनके हृदय में चिन्ता की आग निरंतर धधकती रहती थी। कारण यह था कि उनको धन-सम्पत्ति तथा यश का स्तम्भस्वरूप कोई पुत्र नहीं था।

काल की अबाध व निरंतर गति में कोई विराम नहीं आता। उदय और अस्त, दिन एव रात काल के पटाक्षेप उठते एवं गिरते रहते हैं, क्षणों और पलों के सूक्ष्म कदमों से काल देवता निरंतर दौड़ते चले जाते हैं। बाल्य में यौवन और यौवन में वृद्धत्व छिपा हुआ है। आशा की लम्बी रज्जु का अन्तिम छोर हमीरजी को तब दिखाई दिया जब वे काफी वृद्ध होगये। जैसे जैसे हमीरजी की वृद्धावस्था समीप आती थी वैसे ही हमीरजी के हृदय में चिन्ताग्नि अधिकाधिक प्रज्ज्वलित होकर उन्हे दग्ध किए जा रही थी, फिर भी हम उस परमपिता परमात्मा की अद्भुत इच्छा व विधान को समझने में सर्वथा असमर्थ हैं। क्षण में राई को पर्वत, पर्वत को राई, शुष्क को हरित, हरित को शुष्क, जल पर स्थल, स्थल में जल और असंभव को संभव करने की सामर्थ्य रखने वाले उस जादूगर के बारे में कुछ भी कह सकना असंभव है। सम्पूर्ण ऐश्वर्यशाली प्रभु के अद्भुत विधान को यह साधारण चर्मचक्षु धारी मनुष्य समझ भी कैसे सकता है कि वह कहाँ-किस रूप में क्या माया दिखाने वाला है।

हमीरजी की अवस्था ८५ वर्ष[2] की हो गई थी तथा उनकी अर्द्धांगिनी रूपांदे की अवस्था उनसे दस वर्ष कम रही होगी, फिर भी उन्हे सन्तान लाभ नहीं हुआ। धन-धान्य से पूर्ण घर में हमीरजी को कोई खटकने वाला अभाव था तो एकमात्र यही कि उनकी अभिलाषाओं तथा मनोकामनाओं की प्रतिमूर्ति कोई सन्तान नहीं थी। यदि उनके एक पुत्री भी हुई होती तो यह हृदय विदारक अभाव उन्हें नहीं खलता। निसन्तान होने के कारण ही हमीरजी

(१) सिद्ध रामनाथ ने 'जसोनाथ पुराण' में हमीरजी की अवस्था पुत्र प्राप्ति से पहिले ५० साल की लिखी है किन्तु ५० साल की अवस्था में पुत्र होने की आशा नहीं छोड़ी जा सकती, अतः हमीरजी की अवस्था बहुत अधिक हो चुकी थी।

(२) वर्ष पिच्यासी ऊमर बीती, पुत्र होण री कद के रीती। (लोक-श्रुति)

को पद पद पर अपमानित होकर आत्मग्लानि का अनुभव सहन करना पडता था। उदाहरण के लिए नीचे दो घटनाओं का उल्लेख किया जाता है जिनसे पाठकों को बोध होगा कि किस प्रकार हमीरजी के जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ—

(१) हमीरजी की धर्मपत्नी रूपादे एक बार समीप के कूए पर पानी लाने के लिए गई। आगन्तुक महात्माओं के लिए ताजा जल की तात्कालिक आवश्यकता पड़ गई थी, इसलिए स्वय रूपादे को शीघ्रतावश कूए पर जाना पडा था। कूए पर पनिहारिनों की बडी भारी भीड़ थी और पारी के अनुसार कूए से पानी भरा जा रहा था। घर पर पधारे हुए सन्तों के लिए जल की तुरन्त आवश्यकता बतलाते हुए रूपादे ने पारी के बीच मे जल भरने की अनुमति विनम्रतापूर्वक पनिहारिनों से मागी।

श्री रूपादे जब पानी का मटका भर कर कूए से उतर रही थी तब किसी स्त्री ने कटाक्ष करते हुए कहा— सन्तों की सेवा करते करते बाल सफेद हो गए 'लाल खेलाने की लालसा अगले जन्म में ही पूरी होगी' इस तीक्ष्ण वाक्यशर (बाण) से रूपादे का मर्मस्थल बिद्ध गया, पर कोई उपाय नहीं था।

(२) दूसरी घटना यह है— वर्षाऋतु के प्रथम दिन की बात है[1], हमीरजी प्रात.काल ही शौचादि की निवृत्ति के लिए जगल की ओर गए हुए थे, जब वे वापिस घर की ओर आरहे थे तब खेत जोतने को जाने वाले हाळियों[2] को सबसे पहिले हमीरजी ही सामने मिले, हमीरजी को देखते ही 'हाळियों' के माथे ठनके और उनका मिलना अपशकुन समझ कर वे सब मन ही मन उन्हें (हमीरजी) को कोसते हुए अपने घरों को लौट आये। जब घर वालों ने हाळियों से तत्क्षण ही घर लौट आने का कारण पूछा, तो हाळियों ने घरवालों के सामने खेतों के मार्ग में हमीरजी के मिलने के अपशकुन

(१) राजस्थान मे पहली वर्षा के होते ही किसान लोग शकुन-स्वरोदय से हल जोतने को जाते है।

(२) हळ जोतने वाले को 'हाळी' कहते है।

का हाल सुनाते हुए कहा— साल भर की रोटी-व्यवस्था के श्रीगणेश में, खेत यात्रा के समय 'यह अभागा निपूता न जाने कहां से आ टपका!' निपुत्र के दर्शन साल भर की आजीविका साधन में भला कैसे अच्छा हो सकता था? पड़ौसी की यह बात सुन कर हमीरजी स्तब्ध रह गये। हमीरजी अब तक ऐसी व्यंग्यात्मक बातें स्त्रियों के ही करने की समझ रहे थे, किन्तु आज तो निकट सम्बन्धी पुरुषों के मुंह से भी ऐसी बातें सुनने को मिलीं। उनके दुख का कोई पार नहीं रहा, उनको अपने जीवन से ग्लानि होने लगी और वे अहर्निश चिन्तातुर एवं खिन्न चित्त रहने लगे। सहसा उन्होंने एक दिन निश्चय किया कि इस घृणास्पद तथा अनादृत जीवन से क्या लाभ! इससे तो यही अच्छा है कि इस मृततुल्य जीवन को कठिन व्रतादि प्रण द्वारा त्याग देना चाहिए।

शिव-गोरख के परम उपासक हमीरजी ने उपर्युक्त निश्चय के अनुसार अपने ग्राम कतरियासर से कुछ दूर निर्जन वन में जाकर अनशन कर लिया, कहते हैं हमीरजी ने यह निश्चिय किया था कि या तो पुत्र लाभ करने पर सन्तति हीनता का कलंक धुल जायगा या देह-पतन होकर चिर शान्ति प्राप्त हो जायगी।

श्री गणपति शर्मा ने 'सिद्धाचार्यप्रशस्ति' में हमीरजी के बारे में इस प्रकार परिचय दिया है—

हमीरः क्षत्रियो जात्या विसलस्य सुतोऽभवत्।
कत्रियासर वासोऽसौ पुत्र चिन्तातुरस्तदा॥

सिद्ध रामनाथजी ने भी 'यशोनाथ पुराण' में हमीरजी को ज्येष्ठ क्षत्रिय ही लिखा है परन्तु लोक प्रचलन से जाणी जाट 'सामरिया जाट' ही कहलाते हैं। देश के समस्त जाणी जाट जसनाथी होते हैं तथा मांस मदिरा से पूर्ण परहेज रखते हैं।

तृतीय अध्याय

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का प्रादुर्भाव

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का प्रादुर्भाव विक्रम की सोलहवीं शताब्दी के पूर्व भाग में हुआ, और वे सशरीर केवल २४ वर्ष ही राजस्थान-बीकानेर की पुण्यवती धरा 'भागथळी' पर विराजमान रहे। उस समय दिल्ली के सिंहासन पर लोदीवंश का अधिकार था[1]। सैकड़ों छोटे-छोटे राज्य परस्पर एक दूसरे को हड़पने की ताक में लगे रहते थे एव एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिए जी-जान से प्रयत्नशील थे। मुसलमान शासक हिन्दू राजाओं के सहयोग से मुसलमान शासक पर और हिन्दू राजा मुसलमान शासकों के सहयोग से हिन्दू राजा पर धावा बोलकर उसके राज्य को विनष्ट करने पर तुले हुए थे। सम्पूर्ण भारतवर्ष पर एकछत्र राज्य नहीं था, जिसमें भी बल-पराक्रम हुआ, जिसके अधीन बलवान सेना हुई, वही इस प्रान्त का शासक बन बैठा और दिल्ली के बादशाह ने भी उसे उसी समय शासक स्वीकार कर लिया।

राजस्थान के विशाल भू-भाग में स्थित बीकानेर मण्डल का अन्तर्वर्ती यह मरु-प्रदेश आधुनिक काल की भान्ति इतना सघन जनाकीर्ण नहीं था थोड़ी-थोड़ी दूरी पर उत्तुंग अट्टालिकाओं से सुसज्जित भव्य व सुन्दर नगर, शहर एव कस्बे इस भूमि पर नहीं थे। छोटे छोटे ठिकानों के रूप में जाटों का गणराज्य था। बलोच, भट्टी और खधारों के सामूहिक आक्रमणों से यहां की जनता त्राहि त्राहि कर उठी थी।

---

(१) उस समय दिल्ली का बादशाह शिकन्दर लोदी था।

भगवती श्री करणीजी[1] के सत्परामर्श से राव बीका ने इस प्रदेश को अपने अधीन किया, जिससे यहां के शासकगण जाटों का पूर्णतया राजनैतिक पतन हो गया। पहले तो राजमद में जाटों का नैतिक स्तर गिरा, उन्होंने कुलोचित कर्म का परित्याग किया और तत्पश्चात् राज्यपतन से यहाँ के बहुसंख्यक जाट घोर निराशा के वातावरण में अपने को असहाय समझने लगे। भगवती श्री करणीजी ने सब प्रकार से राजनैतिक विषमताओं का ही विनाश करना चाहा। उन्होंने समाज को अन्य निर्देश नहीं के बराबर दिये।

उस समय इस प्रदेश की धार्मिक स्थिति तो बहुत ही जटिल थी। लोगों में यज्ञ-यागादि के प्रति कोई रुचि नहीं रही थी। तान्त्रिक, वाममार्ग के प्रचारक और पाखंडी जमातियों के इस प्रदेश में बराबर आवर्तन प्रत्यावर्तन होते रहने के कारण मरुधरा के निवासी ऐसे जघन्य कर्मों में अज्ञानतावश प्रवृत्त हो चुके थे, जो सर्वथा मानवता के उत्थान में बाधक थे। भैरव, भोमिया आदि विविध काल्पनिक देवों की आराधना में मांस-मदिरादि से बलि-देने की कुत्सित भावना यहां के लोगों में घर करती जा रही थी। यहां के जनमानस पट पर अंकित कुटेवरूपी कालिमा से धर्म जैसी पवित्र वस्तु की विकृति का स्पष्ट आभास मिल रहा था। लोगों की आचार विचार की भावना, स्वधर्म के प्रति आस्था न जाने कहाँ विलुप्त हो चुकी थी।

अधिकांशतः वीरान और उजाड़ इस रेतीले भूभाग पर ऐसा कोई इतिवृत्त सुनने में नहीं आया, जिससे यह जाना जासके कि सिद्धाचार्य

---

(१) ये चारणी थी। इनका जन्म जोधपुर राज्य के सुवाप गांव में विक्रम संवत् १३८७ में और देहान्त १५१ वर्ष की अवस्था में संवत् १५३८ में (अन्य मतानुसार १५९५ चैत्र शुक्ला ९ गुरुवार) को हुआ। एक दोहा भी प्रचलित है-

पनरैसै पिच्याणवें, चैत सुक्ल गुरनम्म,
देवी सागण देह सूं, पूगा जोत परम्म।

ये देवी का अवतार मानी जाती है और देवी के रूप में पूजी जाती है।

(राजस्थान रा दूहा, पृ० २०४)

श्री जसनाथजी एवं जाम्भोजी[1] से पहिले कोई सामर्थ्यशील महापुरुष यहां हुआ हो। अतः इस प्रदेश में धर्म-प्रधान भावना को लेकर ही आदि महापुरुष श्री जसनाथजी ने विविध 'सबद' 'वाणी' एवं योगबल के माध्यम से यहाँ के लोगों के हृदय में सच्चे धर्म की भावना जागृत की। गीता मे लिखा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

धर्म की सस्थापना के लिये युगयुग में भगवान् अनेक रूपों मे जन्म लेकर अधर्म का नाश करते है। भारत के भिन्न २ प्रान्तो मे उस समय बहुत से महापुरुष एक साथ उत्पन्न हुए और उन सब ने अपने अपने प्रान्तों में धर्म का प्रचार व पुनरुद्धार किया, एव लोगों के नैतिक स्तर को ऊंचा उठाया।

जिस काल में श्री जसनाथजी का प्रादुर्भाव हुआ था, वह समय नि सदेह ही बड़ा विकट था। समाज मानवोचित सद्गुणों को छोडकर दानवोचित आसुरी सम्पदा के भ्रम जाल में फंस चुका था। ऐसा कहना अनुचित न होगा कि वह समय आध्यात्मिक अशान्ति का युग था। मानव मस्तिष्क में नये नये विचार उठ रहे थे। मनुष्य जीवन के जन्म-जरा-मरण आदि दु:खों से छुटकारा पाने के साधन लोग खोज रहे थे। वे ऐसे महापुरुष की प्रतीक्षा

(१) श्री जाम्भोजी महाराज का जन्म विक्रम स० १५०८ भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को आधी रात के समय पवार क्षत्रिय जाति में जोधपुर राज्य के पीपासर नामक ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम ठाकुर लोहटजी और माता का नाम हसादेवी था। वि० स० १५४२ में ये गुरु गोरखनाथ द्वारा योग दीक्षित हुए, और इन्होने 'बिसनोई' धर्म की स्थापना की। आजन्म ब्रह्मचारी रहकर पचासी वर्ष की अवस्था मे वि० स० १५९३ मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की नवमी को लालासर (बीकानेर) ग्राम के जगल में जाम्भोजी ने इस शरीर को छोड दिया। उन्होने बीस तथा नव (उन्तीस) बातो की अपने अनुयायियो को शिक्षा दी, जिसमे वे बिसनोई कहलाने लगे।

कर रहे थे, जो उन्हें मोक्ष का मार्ग बतलाता। जो सांसारिक दुःखों की संवेदना से उन्हें बचाता, और जो धर्म के उच्च आदर्श को उनके सामने रख कर उन्हें कल्याण-पथ का पथिक बना देता। इन्हीं सब समाधानों को लेकर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के रूप में विक्रम सम्वत् १५३६ कार्तिक शुक्ला एकादशी शनिवार (अन्य मतानुसार सोमवार) को प्रादुर्भूत हुए[1]। आचार्य विनोबा के शब्दों में —

'सन्तों की परम्परा अति प्राचीनकाल से आज तक चली आ रही है। जब से मानवता का उद्गम हुआ, सन्तों का आविर्भाव हुआ है[2]"।

"सिद्धाचार्य प्रशस्ति" में लिखा है[3]—

धर्मः सनातनो लोके, आपद्ग्रस्तो यदाऽभवत्।
यशोनाथस्तदा कालेऽवतीर्णो भुवि लीलया॥

सिद्ध रामनाथ ने लिखा है[4] —

सन्त तणा पग देखतां, करै मेदनी आस।
पाप हरै पुन ऊपजै, करै ग्यान परकास।
ईश्वर के शुभ अंशते, होवत संत सुजान।
नित्य गुरू जसनाथजी, प्रकटे श्री निरवान।

यशोनाथाष्टक में सिद्धाचार्य को कविने इस प्रकार नमस्कार किया है—

---

(१) विक्रम संवत् पंचदश, गुणचालो दरसात।
कार्तिक शुक्ल एकादशी, मिल्यानाथ परभात।
जाणी जाट हमीरजी, वां घर हो औतार।
'भागवळो' जसनाथजी, दुःख खंडन सुखधार।
(यशोनाथ पुराण, उत्पत्ति प्रकरण, पृ० २)

(२) वियोगी हरि, सन्त-सुधा-सार, प्रस्तावना, पृ० ९।

(३) गणपति शर्मा, रयामसर, रामगढ़ (शेखावाटी)।

(४) यशोनाथ पुराण, उत्पत्ति प्रकरण।

नित्यमुक्तं योगिराजं सर्वज्ञं सर्वतोमुखम् ।
सच्चिदानन्द-सिद्धेशं यशोनाथं भजाम्यहम् ।
वेद-वेदान्त तत्त्वज्ञं सर्वतंत्र स्वतंत्रकम् ।
ब्रह्मनिष्ठं तमाचार्यं, यशोनाथं नमाम्यहम्[1] ।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का ऐतिहासिक जीवनवृत्त लिखने का प्रयास करते समय कुछ कठिनाइयाँ विशेष रूप से उपस्थित होती हैं।

भारत के समस्त सन्तों की यह प्रणाली रही है कि वे अपने विषय में बहुत कम कथन करते थे। सिद्धेश्वर ने भी अपने निजी ऐतिह्य के सम्बन्ध में बिल्कुल कथन नहीं किया। जो कुछ उन्होंने कहा है, वह भी केवल किसी को उपदेश करते समय प्रसंग वश आध्यात्मिक परिचय के रूप में ही[2]। जिससे

---

(१) श्री गजानन्दजी शास्त्री चोटिया, यशोनाथाष्टक, यशोनाथ सगीता, पृ० १०।

(२) 'सिभू घडे' की निम्न पक्ति में श्री जसनाथजी कहते है—

भागथळी ओतार लियो है, कुण लह अन्त'र पारू ।

लोहापांगळ को कहते हुए—

हम दरवेश निरंजण जोगी, जुग जुग रा अगवाणी ।
जाँसूँ जैसा ताँसूँ तैसा, और न बोला बाणी ।

राव बीका के पुत्र घडसी को—

म्हे तो घड़सी जद ही हुँता, बरतन्ता धुंधुकारू ।
आपही करता आपही भरता, आपही इष्ट बिचारू ।
अब री घड़सी काँसूँ बूझै, जद रा देवाँ बिचारू ।

हे घड़सी! जब प्रारभ में सर्वत्र अन्धकार था तब भी हम तो थे। आत्माही कर्त्ता, हर्ता और इष्ट है। और भी—

दुनियाँ में समझाऊ आया, कई तारथ्या गिवारू ।
समझाया समझिया नाहीं, टोटै गया हँकारू ।

सिद्धाचार्य घडसी को फिर कहते है—

उनथ नाथां अनथीं निवावाँ, करो जका मन भाणूँ ।
तीन लोकरा नाथ भणीजाँ, थळ्सर रचिया थाणूँ ।
काळंग माराँ कुळ वरतावाँ, निकळँग नाव कुहाणूँ ।

जन्म, जाति, स्थान एवं निर्वाण के विषय में अधिक कुछ भी नहीं जाना जा सकता। अधिकांश सिद्ध पुरुषों के जीवन वृत्त अनुश्रुतियों के आधार पर ही लोक प्रचलित रहते हैं। सिद्धाचार्य के जीवन-वृत्त सम्बन्धी जो पुष्ट प्रमाण हैं, वे जसनाथी सम्प्रदाय में प्रचलित "जलम-झूलरा" नामक पद्य हैं। अब तक प्राप्त जलम झूलरों की संख्या चार है। अधिक प्राचीन जलम-झूलरा जियोजी सांखले का है[१]। जियोजी ने अपनी स्वाभाविक रचना शैली में सिद्धेश्वर का इतिवृत्त वर्णन किया है, जो इस प्रकार है—

> कळ दसमैं प्रगटिया जादम, घर जाणी रै आया[२]।
> बाळक आय हुया हरियाळा, सोवन थाळ बजाया।
> सोवन तणियाँ पिंगो बान्ध्यो, ले माता हुलराया।
> दिना दसा (रो) दसोटण थरप्यो, जोशी ने तेड़ाया[३]।
> कुळ रै जोशी पुस्तक बांच्या, जसवन्त नाम दिराया।
> दूजी दुनियाँ जव तिल बद्धै, जसवन्त जोत सवाया।
> ना'ना सूँ हर मोटा हुवा, बरस बा'रा बोळाया।

दसवें (दशावतार) कलियुग में प्रकट होकर भगवान श्रीकृष्ण जाणी के घर आये। बालक आकर आनन्दित हुआ, (बालक के प्राप्त्युपलक्ष में) सोने का थाल बजाया गया। (बालक के) झूलने के लिये सोने की तनियों से पालना बांधा और माता ने (बालक को) लोरी दी। जोशी को बुलाकर दस दिनों का दशोटन (नाम करण संस्कार) किया। कुल के जोशी ने बालक का नाम जसवन्त रखा। दूसरे बालक यव और तिलक के प्रमाण से बढते हैं, (किन्तु) बालक जसवन्त सवाई ज्योति से बढ़ता है। बालक से भगवान (जसनाथ) वृद्धि को प्राप्त हुए। इस क्रम से बारह वर्ष व्यतीत होगये।

---

(१) जियोजी सांखला पालोजी के शिष्य एवं जसनाथजी के समकालीन माने जाते हैं। सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी की समाधि पर स्थित मन्दिर के निर्माण में इनका बड़ा योगथा। इनकी जन्मभूमि पूनरासर (बीकानेर) से पश्चिम में सांखलों का बास था।

(२) (जाणी जाट हमीरजी होता, जिणघर बाळक आया, कुछ लोग इस पंक्ति का भी उच्चारण करते हैं, पर यह क्षेपक है)

(३) तेड़ो तेड़ाया जोशी ने बुलाया, नतत्तर बार बुलाया।

चूर चूरमों फड़कै बान्धो, हित कर माय जिमाया ।
रिण विजण में हेड़ चरन्ती, सोधण नै मुकळाया ।
भागथळी गुरु गौरख मीलिया, जिण जोगी भरमाया।
स्वामी देख'र संको आण्यो, गुरु धीरज बन्धाया ।
काना फूँक शीस पर पंजो, सतरो सबद सुणाया ।
चेलै रै फड़कै भोजन होंतो, गुरु चेलै रळ पाया ।
गुरु री डीबी पाणी होंतो, चेलो कर हर पाया ।
गुरु अर चेलो रळमळ चाल्या, नगर नेड़ै रै आया ।
चेलो घिर घिर पाछो जोया, गुरु (म्हारै) नजर न आया ।
मार पलाथी तपस्या बैठा, सूरज सूँ लिव लाया ।
बमलू सूँ सिद्ध हरमल वुआ, सेव गुरों री आया ।

एक दिन माता (रूपादे) ने बालक को प्रेम पूर्वक भोजन करवाया तथा चूरमा चूरकर कपड़े के छोर में बान्ध दिया और निर्जन वन में चरती हुई साँडों (ऊँटनियों) के समूह को खोजने के लिये भेज दिया। (वहाँ) भागथळी में (बालक जसवन्त) को गुरु गोरखनाथजी मिल गये (और) उस योगी ने सांसारिक कार्यों की ओर से भ्रमित कर दिया। (बालक जसवन्त) योगी को देखकर (कुछ) सशंकित हुए, (किन्तु) गुरु गोरखनाथ ने उनको धैर्य बन्धाया (और) उनके सिर पर वरद–हस्त रखकर कान में 'सत्य-शब्द' की फूँक देदी अर्थात् योग दीक्षित कर लिया। शिष्य (जसवन्त) के कपड़े में जो भोजन बन्धा हुआ था, उसे गुरु और शिष्य ने मिलकर पाया। गुरु के कमण्डलु में पानी था, उसे गुरु गोरखनाथ ने शिष्य समझ कर (बालक जसवन्त को) पिलाया। तत्तपश्चात् गुरु और शिष्य दोनों मिलकर नगर (कतरियासर) के समीप आये। वहाँ शिष्य ने जब मुडकर पीछे देखा तो गुरु दिखाई नहीं दिये। (बालयोगी) अपने गुरु के पद-चिह्नों पर वहीं पलाथी लगाकर बैठ गया एव उन्होंने सूर्य से लगन लगाली। (कुछ समय बाद) बमलू गाँव से सिद्ध हारोजी चलकर गुरु की सेवामें आये।

हरमल हर री सेवा कीनि, पार गुराँ रा पाया ।
हरमल नै गुरु आज्ञा दीवि, सत रा राह बताया ।
गुरु चेला आळोच रचाया, दिन सात्यूँ का थाया ।
लेय मजीरा गावण बैठा, गै'रै मादळ वाया ।
जती सती रो अथचळ जोड़ो, थळसर थान रचाया ।
सरण सिद्धाँ रै 'जियो' बोलै, जलम झूलरो गाया ।

हारोजी ने अपने गुरु जसनाथजी की बड़ी सेवा की और गुरु के भेद को समझा । गुरु ने हारोजी को सत्य का मार्ग बताते हुए आज्ञा दी । (यहाँ आज्ञा देने से यह अभिप्राय है कि सती काळलदे को लाने के लिये हारोजी को चूड़ीखेड़ा भेजा) गुरु और शिष्य ने विचार कर सप्तमी का दिन निश्चित किया, अर्थात् सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी सप्तमी को जीवित रूप में समाधिस्थ हो गये । उस दिन सिद्ध लोग मजीरा लेकर गाने के लिए बैठे और प्रेम पूर्वक वादन किया । यति और सती का जोड़ा अविचल है, उन्होंने थली पर अपना स्थान बनाया । सिद्ध-शरणगत 'जियोजी' कहते हैं (मैंने यह) जन्म झूलना गाया है।

★ ★ ★ ★

जियोजी सांखला के जलम झूलरे के बाद 'लालनाथजी' के 'जलम झूलरे' का महत्व है तीर्थाटन एवं भारत के ऐतिहासिक स्थानों का भ्रमण करते हुए लालनाथजी जब द्वारिका पहुँचे, तब वहाँ के लोगों ने इनका परिचय पूछा । लालनाथजी ने परिचय-प्रसंग में यह भी कहा—मैं जसनाथ-सम्प्रदाय को मानने वाला हूँ । लोगों ने साश्चर्य कहा कि यह जसनाथ और जसनाथ-सम्प्रदाय क्या है ? इसका उद्गम तो हमने नहीं सुना । इनका कब, कैसे और कहां जन्म हुआ तथा इनका जन्म लेने का क्या हेतु है ? तब लालनाथजी ने उनकी शंका निवारण के लिए यह 'जलम झूलरा' कहा—

सुरनर अरज करै सायब नै, सुण स्वामी दाता किरतार ।
सुरपत सुर तेतीसों बिलखा, सुर-नर ऊभा पोळ दुवार ।
बिरमा बिस्न महेसर ईसर, गोरख जोगी ज्ञान विचार ।
जादम धर जाणी रै आया, बुध रुपी निकळँग ओतार ।

मात पिता नै मान बड़ाई, हमीरै घर जाग्या किरतार ।
गुरु चेलां आळोच रचायो, दोन्यो आया थळी मंझार ।
मात पिता कळपै दुख पावै, सोच करै सारो परिवार ।
थे तो बाळक भोजन जीमो, लाडू पेड़ा खीर खसार ।
घिरत मिठाई गिरी चुंहारा, दूध मंगायो देव दुवार ।
मार पलाथी तपस्या बैठा, जाप जप्यो वॉ ओंकार ।

धर्म की पुन स्थापना के लिए देवता और मनुष्य परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हे, सबके भरण-पोषण करने वाले भाग्य विधाता, स्वामी, सुनो! आपके द्वार पर इन्द्र सहित तैंतीस करोड देवता (पृथ्वी पर अधर्म का नग्न नृत्य देखकर) बिलख रहे हैं। (तब) ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा योगिराज गोरखनाथ ने विचार किया। (तब) स्वयं श्रीकृष्ण ही जो पहले बुद्ध रूप में अवतरित हुए थे, वही श्रीकृष्ण जाणी के घर (सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी के रूप में) निष्कलंक अवतरित हुए। (ऐसे अलौकिक बालक के) माता-पिता सम्मान और बड़ाई के (पात्र) हैं (जो) हमीरजी के घर स्वय भगवान ही प्रकट हुए। गुरु (गोरखनाथ) शिष्य (जसवन्त) दोनों विचार कर थळी के बीच में आये (बालक जसवन्त तो कतरियासर की ओर से सॉडों के समूह को खोजने के लिए भाग थळी की ओर आया, और गुरु गोरखनाथ को तो आज यहाँ साक्षात् प्रकट होकर सिद्धाचार्य द्वारा संसारमें ज्ञान ज्योति के प्रसार का निर्देश करना ही था) माता और पिता संताप करते हैं; क्योंकि बालक ने संसार से विरक्ति लेली है, अतः दुःखी हुये हैं (और) सारा परिवार सोच करता है। परिवार के लोग बालक (जसवन्त) से कहते हैं— हे बालक! आप तो लड्डू, पेड़े, खीर तथा कसार का भोजन करो। (सविनय अनुरोध करने पर बालक ने) घृत, मिठाई, गिरी, (खोपरे) छुहारे तथा दूध पुण्यभूमि 'गोरख माळिये' पर (जहाँ जसनाथजी अपने गुरु के पद चिह्नों पर बैठे थे और जहाँ उन्होंने अपनी हाथ की जाल की टहनी को गाड़कर पल्लवित किया था, उसी स्थान को अब गोरख माळिया कहकर पुकारते हैं) मगवाया और पद्मासन लगाकर तपस्या म बैठ गये, एवं 'ॐ' मंत्र का जप जपना आरम्भ कर दिया।

लेय विसन्नर होमण बैठा, घिरत मंगायो देव दुवार।
ब्रिरमा जाप जप्या जुग जूना, सुरग मंडल में गई महकार।
सुर तेतीसूं हुया सुवाया, सुरपत इन्दर मेघ मलार।
पांच[1]स पाण्डु[1] दस दिगपाळा[2], सिध सोरासी[3] दस ओतार[4]।

---

(१) १ युधिष्ठिर २- भीमसेन ३- अर्जुन ४ नकुल ५- सहदेव।

(२) दिक्पाल— १- पूर्व के देवता इन्द्र, २- अग्निकोण के अग्नि, ३- दक्षिण के यम, ४- नैऋृतिकोण के नैऋृति, ५- पश्चिम के वरुण, ६- वायुकोण के मरुत, ७- उत्तर के कुबेर ८ ईशानकोण के ईश्वर ९- ऊर्ध्व दिशा के ब्रह्मा और १०- अधो दिशा के देवता अनन्त है।

(३) १- सिद्धरावलनाथ, २- मीननाथ, ३- मच्छन्दरनाथ, ४- चर्पटनाथ, ५- चोरङ्गीनाथ, ६- कनकनाथ, ७- काननाथ, कनगीगानाथ, ९- गजवेलीनाथ, १०- गजकयडनाथ, ११- अचलनाथ, १२- अचहलानाथ, १३- स्वर्गावनाथ, १४- रेन्दनाथ, १५- अयनचङ्गरीनाथ, १६- भूसभूसापानाथ, १७- लोहाहरकनाथ, १८- पोडानाथ, १९- चोलीनाथ, २०- चञ्चलानाथ, २१- मलकीनाथ, २२- कपलीनाथ, २३- चर्पटीनाथ, २४- टिण्टीनाथ, २५- मीडकीनाथ, २६- अमराईनाथ, २७- कुद्दालीनाथ, २८- कुकडीनाथ, २९- घूमकनाथ, ३०- घामकनाथ, ३१- खेचरनाथ, ३२- भूचरनाथ, ३३- नन्दाईनाथ, ३४- लोहानाथ, ३५- लव्वरनाथ, ३६- शोरीनाथ, ३७- सुन्दरनाथ, ३८- वनवणखण्डीनाथ, ३९- सिद्ध अर्जुननाथ, (रसग्रन्थ कर्ता) ४०- वहुदण्डिनाथ, ४१- श्रीअव्वाईनाथ, ४२- सारस्वताईनाथ, ४३- भूताईनाथ, ४४- जलपाईनाथ, ४५- मुसकाईनाथ, ४६- सहजाईनाथ, ४७- वालगुन्दाईनाथ, ४८- सागरकुण्डनाथ, ४९- उपाडीपानाथ, ५०- गुरुवानाथ, ५१- गोचरनाथ, ५२- ढँयाडुमनीनाथ ५३- ब्रह्मानन्दनाथ, ५४- कुह्वारीपानाथ, ५५- अजयपालनाथ मुनि, ५६- कपिलनाथ ऋषि, ५७- घून्यलीनाथ, ५८- धर्मनाथ, ५९ नागकेतनाथ, ६०- सुनकाईनाथ सादिक, ६१- हारीतनाथ, वप्पारावल के परम गुरु, ६२- ठेकरनाथ, ६३- रसूलनाथ, ६४ वीरवकनाथ, ६५- सिद्ध भगाईनाथ, ६६- श्री चतुरनाथ, ६७- भस्मनाथ, ६८- गुफाईनाथ, ६९- पाईनाथ, ७०- माईनाथ, ७१- औरानाथ, ७२- गोरानाथ, ७३ घोरानाथ, ७४- नरतनाथ, ७५- कपलनाथ, ७६- जलनाथ, ७७- जन्मपरीक्षानाथ, ७८- हाडीपानाथ, ७९- नागीपानाथ, ८०- पहृनिपानाथ, ८१- मृणीरानाथ, ८२, गोपीचन्द्रनाथ, ८३- भर्तृनाथ, ८४- श्री ओघडनाथ स्वामी।

(४) १- मत्स्य, २ कूर्म, ३- वराह, ४ नृसिंह, ५- वामन, ६- परशुराम, ७- दाशरथीराम, ८- बलराम, ९- बुद्ध, १०- और कल्कि।

धरती[1] धवळ शेष रिख[2] वासक, साध सती[3] को अन्त न पार।
नव नाथाँ[4] गुरु गोरख आया, नाद वजायो ओंकार।
सुण हो मुल्ला, सुण हो काजी, सुण हो पिंडत वेद विचार।
दोऊँ कर जोड़ दाखवै 'लाल्ह', इण विद श्याम लियो ओतार।

देव द्वार पर संग्रहीत हव्य गव्य घृतादि पदार्थों की (हवन कुण्ड में) आहुति देनी प्रारम्भ करदी। ब्रह्मा के अनादि जाप का जपना आरम्भ किया (उस) यज्ञ की सुगन्धी स्वर्ग-मण्डल में पहुची (यज्ञ से) तैंतीस करोड़ देवता संतुष्ट हुए (और सन्तुष्ट होकर) सुरपति इन्द्र ने मेघमलार (सुखद वर्षा) की। पाँचों पाण्डव, दसों दिक्पाल, चौरासी सिद्ध, भगवान् के मुख्य दशों अवतार, पृथ्वी, नन्देश्वर, शेषनाग, ऋषि और वासुकि वहाँ आये। (जहाँ जसनाथजी हवन कर रहे थे) साधक, दृढ प्रतिज्ञ, सत्पुरुष और सती महिलाएं तो इतनी आई कि जिनका कोई पार (परिमाण) नहीं। नव नाथों के साथ गुरू गोरख आये (और उन्होंने) ओंकार की ध्वनि की। हे मुल्लाओ सुनो, हे काजी सुनो, और हे पण्डित, तुम भी वेद का विचार करके सुनलो। लालनाथजी हाथ जोड़ कर कहते हैं— इस प्रकार परमात्मा ने अवतार लिया।

★ ★ ★ ★

जियोजी सांखला और लालनाथजी के जलम भूलरों के बाद चोखनाथजी का जलम भूलरा माना जाता है। चोखनाथजी ने अपने जलम भूलरे में

(१) उन्चास करोड पृथ्वी।
(२) रिख=ऋषि, मिलाइये– रँ रँ मँ मँ सूँ निसतिरया को अट्ठासी रिख,
(३) संसार में सतियों की सख्या सात मानीगई है–

सीता कुन्ता द्रोपदी, अनुसूया रिखनार।
तारादे मन्दोदरी, सात सती संसार॥

(४) १- ओंकार (ओंकार स्वरूप) श्री आदिनाथ, २- उदयनाथ ३- प्राणनाथ, ४- सत्यनाथ, ५- सन्तोषनाथ, ६- अचल अचम्भेनाथ, ७ गजवेली गजकथडनाथ, ८- मायारूपी मच्छदरनाथ, ९ ज्ञानारगी (खी) ज्ञान परीक्षक सिद्ध चौरङ्गीनाथ।

आदि गुरु श्रीजसनाथजी को बड़े व्यापक रूप में देखा है। चोखनाथजी ने अपने चार युग के सबदों[1] (पद्यों) में भी अपने गुरु के प्रति व्यापक दृष्टिकोण का परिचय दिया है—

जोत सरूपी परगट्या, जुग में जै-जै-कार।
जाग्या भाग हमीर का, अलख लिया ओतार।
पुन पूरबला परगट्या, मछ रूपी ओतार।
झे'र पियाला झेलिया, नीलकंठ निरकार।
ऊबा सुर नुर देवता, बिरमा वेद विचार।
सुरत भई से जागिया, दस डालम जैकार।

जोत सरूपी=ज्योति-स्वरूप। हमीरजी का भाग्य जाग पड़ा कि उनके घर अलख ने अवतार लिया। पुन=पुण्य। पूरबला=पिछला। मछरूपी=मत्स्य-रूप। (चोखनाथजी ने अपने आराध्यदेव को व्यापक रूप में देखा है—) श्रीजसनाथजी के रूप में वही भगवान प्रकट हुए, जिन्होंने मत्स्यावतार का रूप धारण किया था, गरलपात्र को सहर्ष स्वीकार कर, जिन्होंने पान किया, उन्हीं नीलकंठ निराकार शिव के रूप में जसनाथजी प्रकट हुए। देवता तथा श्रेष्ठ मनुष्यों ने ब्रह्मा के सम्मुख उपस्थित होकर प्रार्थना की, तब ब्रह्मा ने वेद का विचार कर, जसनाथजी के रूप में दिव्यज्योति को प्रेषित किया। जब भगवान् ही जसनाथ जी के रूप में प्रकट हुए, तब जयकार हुई।

---

(१) देव निकळंगजी परगट्या, जोत जगाई नाथ।
घर हमीरं ओतर्‌या, अलख निरजण आप।
पंथ चलायो परमगुर, मींड्या गोरखनाथ।
हरमन्त आयो हेतसूं, कहो अगम री बात।
जाग दतांनूं रमरयो, जद निरभै रमिया नाथ।
ओंकारे गुरु रमरह्या, जद म्हे रमिया साथ।
भीड़ बणी पहलाद में, हिरणा (कस) आयो हाक।
पहलाद पुकारे परमगुरु! बीरियो बिरमीनाथ।
नरसिंह फिरन्ती परगट्या, वळवन्त घाली बाथ।
पवड फाड़'र गाजियो, दाणूं दळिया पात।
मनस्यारूपी माहुतो (जदम्है) ···· ····।

जूना जोगी परगळ्या, भाग थळी ओतार।
हरमल कंठ सरेवँतॉ, बीती पोह न च्यार।
बैठा 'गोरखमाळियै' भळकन्ते दीदार।
तिलक चन्दरमाँ भळहळै, शीस मुकुट गंगधार।
सदा हजूरी देव री पांडू पोळ दुवार।
सातम रा मेळा मण्डै, आसी जात अपार।
आसीं देई देवता, होसी होम हजार।
चढै चढावै चूरमाँ, भोजन खीर खसार।
आगळ नाचै अपछरा, मंगळ गावै नार।
शंख पँचायण वाजसी, झालर रै झणकार।
पंथ चलायो परम गुरु, ईसर गोरखनाथ।
दोनों थळसर ओतरया, मात सती जसनाथ।
गुरु शरणै 'चोखो' भणै, तूठ्या निकळँग पात।

जूना=प्राचीन, वयोवृद्ध । भागथळी=भाग्यस्थली, ससार। वैसे इस क्षेत्र का नाम भी भागथळी है। (हारोजी को संदेश द्वारा बुलाकर) श्री जसनाथ-जी ने उनको प्रेम पूर्वक अपनी शरण में रखा। गोरखमाळिये=आदि आसन (यह वही, पुण्य स्थान है जहाँ सिद्धाचार्य ने बारह वर्ष तपोपदेश किया था, चोखनाथजी को गोरखमाळिये पर बैठे हुए तेजस्वी श्रीदेव जसनाथजी साक्षात् भगवान् शकर के रूप मे ही दृष्टिगोचर हुए हैं। श्रीदेव जसनाथजी की सेवामें पाण्डव उनके द्वार का पहरा देते हैं। 'गोरख माळिये' पर सप्तमी का मेला लगता है और अपार यात्री आते हैं। (यहाँ) देवी-देवता भी आयेंगे, क्योंकि यहाँ हजारों मन घृत का हवन होगा। अपच्छरा=अप्सरा। वाजसी=बजेगा। आगळ=आगे। चोखनाथजी की मान्यता है कि इस पथ के प्रवर्त्तक भगवान् शंकर तथा परम गुरु गोरखनाथजी हैं। उसी परम्परा में मातेश्वरी महासती काळलदे तथा श्रीजसनाथजी पृथ्वी पर अवतरित हुए। गुरु शरणागत चोखनाथजी कहते हैं.— निष्कलंक सबके प्राणपति श्रीजसनाथजी मुझ पर संतुष्ट हुए।

× × × × × ×

उपर्युक्त जलम भूलरों में वर्णित सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के संक्षिप्त इतिवृत्त का आपने अवलोकन किया. अब सवाईदासजी कृत चौथे जलम-भूलरे को भी देखिये। यह जलम भूलरा बड़ा महत्वपूर्ण है। इस 'जलम-भूलरे' में अन्य जलम भूलरों की अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्यान्वेषण का अधिक समावेश हुआ है। इस जलम भूलरे की असाधारण विशेषता यह भी है कि इसमें हमीरजी के विषय में भी कुछ जानकारी प्रकट की गई है; जिससे पूर्ववर्ती इतिहास के ज्ञान में अच्छी सहायता मिलती है। जैसा वर्णन सवाईदासजी के जलम-भूलरे में पाया जाता है वैसा ही वृत्त लोक में प्रचलित है। अतः इस जलम-भूलरे पर विश्वास तथा सत्य पक्ष अधिक स्थिर होता है।

वणी त्रिरोळताँ कण-पण लाध्यो, माणक मोल अपारी।
आक बाग में आमो ऊगो, ऊगो सतरी क्यारी।
करणी सधीर जती नरजाग्या, जुग में जोत विराजै।
नाथाँ माहिं रमै नारायण[1], (धणी म्हारो) जोगारम साजै।
पैं'ली पार परम गुरु[2] भेट्या, स्वामी सिद्ध जटाधारी।

जंगल में ढूंढ़ने से (ऐसा) सार (ऐसा) सत्व (ऐसा) माणिक्य मिला; जिसका मूल्य नहीं आंका जासकता। आक के बागमें आम पैदाहुआ, (और वह आम) सत्य की क्यारी में उत्पन्न हुआ। कर्त्तव्यनिष्ठ, धैर्यशाली, यतिवर्य (श्री जसनाथजी) जागृत हुए। अब भी उनकी कला (शक्ति) संसार में विद्यमान है। हमारे मालिक नाथों में रमण करते हैं (अर्थात जिन्हों ने अन्तःकरणकी वृत्तियों का निरोध कर लिया है) (श्री जसनाथजी) नारायण स्वरूप रहकर योगाभ्यास में लगरहे हैं। सर्व प्रथम जटामुकुट धारी. स्वामी सिद्ध परम गुरु (गोरखनाथ) मिले।

---

(१) १ कवि नारायण, २- करभाजन नारायण, ३- अन्तरिक्ष नरायण, ४- प्रबुद्ध नारायण, ५- आविर्होत्र नारायण, ६- पिपलाय नारायण, ७- चमस नारायण, ८- हरि नारायण, ९- द्रुमिल नारायण।

(२) सत्यरूप, ज्ञानरूप, आनन्दरूप, (सत्य ज्ञानमानन्दं ब्रह्म)

हमीरजी नै हरजी मिलिया, रिणबिण बीच मझारी।
आपो उत्तम बताओ थारो, जात पाॅत कुळ कांई।
किण कारण ज्यूॅ तपै जोगेसर, करड़ी कूँत वन माँही।
जात'ज जाणी नांव हमीरो, बाळक नि सुत म्हारै।
के स्यामी! किसड़ी के दाखाँ, (हररो) नाँव लियाँ गुरु तारै।

हमीर आवै लुळ सीस निवावै, वासक भोम मनावै।
वासक पंथ पियाळाॅ[1] लागो, बालक सुनमुख आवै।

हमीरजी को निर्जन वन के बीच में (साक्षात्) ईश्वर ही मिले। (उस परम गुरु गोरखनाथजी ने हमीरजी से पूछा) हे हमीर! अपना परिचय बताओ, आप कौनसी जाति, बिरादरी व उत्तम कुल के हैं। (और) दृढ़ विचार करके जैसे योगेश्वर वन में तपता है, उसी तरह से आप कैसे वन में तपस्वी की तरह तप रहे हैं। (तब हमीरजी बोले) मैं जाणी जाति का हूँ। मेरा नाम हमीर है। मेरे बालक नहीं है। हे स्वामी! मर्मस्थल की पीड़ा को कैसे प्रकट करूँ, (क्योंकि हमीरजी को निःसन्तान होने के कारण यहाँ वन में आकर देह त्याग या पुत्र प्राप्ति के निमित्त अनशन करना पड़ा) तब गुरु गोरखनाथजी ने हमीरजी को पुत्र-प्राप्ति के लिए डाबला तालाब की ओर जाने का निर्देश किया। यद्यपि जलम भूलरे की किसी पक्ति से यह आशय प्रकट नही होता है किन्तु अन्य अनेकों प्रमाणों एव अनुश्रुतियों से यह बात सिद्ध है। हमीरजी (वहाँ बालक के पास) आते है (और) नीचे झुककर बालक को नमस्कार करते हैं, तथा पृथ्वी और वासुकि (वहाँ बालक पर सर्प राज ने अपने फन का छत्र कर रखा था) नाग को मनाते हैं। (वहाँ जो) सर्प राज था वह पाताल के मार्ग से चला गया, और बालक हमीरजी के सामने आया या हमीरजी बालक के सामने गये।

---

(१) १- पाताल, २- तल, ३- वितल, ४ सुतल, ५- तलातल, ६- महातल, ७- रसातल।

बालक सूँ मन माँयलो, मिलियो जोत में जोत मिलावै।
बाँह पिसार हर कान्धै लिया, हमीर हरिख उमावै।
सकळ सुधारण कुळ उजारण, रिधि सिधि[2] घर ल्यावै।
घर लेय जाय घरणी नैं सूंप्यो, बालक सूँ चित लावै।
हुया अणद अगम घर बाजा, मंगळ गाय बधारै।
खाती बुलाओ पालणो घड़ावो, रंगरी रीज दिरावै।
सोनैं रूपैं रा झालण झूलणा, जसवन्त कुँवर हिंडावै।
'पाँच सात' 'दोवाँ दसा' में, साँढ्याँ सोधण जावै।
काना कुंडळ गळ'ज कन्था, गोरख आ बतळावै[1]।

(हमीरजी की) आत्मा बालक मे तद्रूप हो गई जैसे ब्रह्म ज्योति में आत्मा लीन होती है। (हमीरजी) ने भुजाओं को लम्बी फैलाकर ईश्वर-स्वरूप बालक को कंधो पर लेलिया। वहाँ (हरिरिख तथा) हमीरजी आनन्द से उमंगित हो उठे। सकल सृष्टि को पवित्र करने वाले तथा कुलोद्धारक ऋद्धि-सिद्धि-सम्पन्न बालक को हमीरजी अपने घर ले आये। हमीरजी ने बालक को घर लेजा कर अपनी गृहलक्ष्मी (रूपादे) को सौंप दिया। (रूपादे का) मातृ-वात्सल्यपूर्ण चित्त बालक में लग गया। (बालक के आने से) घर में बड़ा आनन्द हुआ। प्रसन्नता के वाद्य बजने लगे। महिलाओं ने मंगल गीत गाकर बधाई दी अर्थात् बालक का हार्दिक स्वागत किया। बढई को बुलाओ और बालक के लिए झूला बनवाओ और झूले को रेशम की रंग बिरंगी डोरियों से बांधो। स्वर्ण और चाँदी के (खूंटे से बंधे हुये) झालरदार झूले पर कुमार जसवन्त को झुलाते हैं। पाँच और सात, दो और दस अर्थात् बारहवें वर्ष में (बालक जसवन्त) ऊँटनियों को खोजने के लिए जाते हैं। (वहाँ भागथळी नाम के स्थान पर) कानों में कुण्डल तथा गले में कन्था (अल्फी) पहने हुए गोरखनाथजी ने आकर जसवन्त को सम्बोधित किया और उनको अपने मार्ग मे प्रवृत्त कर लिया।

---

(२) योग की अष्ट सिद्धियाँ— अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्ति प्राकाम्य, ईशित्व वशित्व और कामावसायित्व।

(१) कर्ण शोभित कुण्डलं शिरजटं यज्ञोपवीतान्वितम्।
नस्मान्न धृत कम्बलं शशि-निभ विश्वैक शोभाधरम्।

गिरै त्याग गिरवर नै चाल्या, जसवन्त 'नाथ' कहावै।
सो जुग आवै, सीस निवावै, पूजा देव चढावै।
माता 'रूपाँ' पिता 'हमीरजी', धिन(स) पदारथ पावै।
'सवाईदास' जती नै सिंवरै, जलम झूलरो गावै।

बालक ने घर को छोड़कर उत्तर दिशा-स्थित ऊँचे टीले पर अपना अडिग आसन जमा लिया। अब जसवन्त 'नाथ' सञ्ज्ञा से पुकारे जाने लगे, अर्थात् जसवन्त से जसनाथ हो गये। सारा ससार जसनाथजी के दर्शनार्थ आता है और श्रद्धापूर्वक शीस झुकाता है। सभी उन्हें देवता की भाँति पूजते हैं और प्रसाद लगाते हैं। माता रूपादे पिता हमीरजी धन्य है, जिन्होने ऐसा पदार्थ (मानव रत्न) प्राप्त किया है। सवाईदासजी यतिवर्य श्रीजसनाथजी का स्मरण करते हुऐ जलम झूलरा गाते हैं।

* * * * * *

जियोजी सांखला, लालनाथीजी, चोखनाथजी और सवाईदासजी ने सिद्धेश्वर श्री जसनाथजी के प्रादुर्भाव से निर्वाण तक का मुख्य वृत्तान्त संक्षिप्त रूपसे अपने जलम झूलरों में विविध निजी मान्यताओं के साथ प्रकट कर दिया है। सन्तो ने श्री जसनाथजी का जीवन परिचय कृष्ण, शकर आदि देवताओं के रूप मे श्रेष्ठ मनुष्यों की प्रार्थना के फलस्वरूप प्रादुर्भूत यज्ञ-यागादि वेद विहित कल्याणकारी, श्रेष्ठ भावों के प्रवर्त्तक तथा भू-मण्डल में शान्ति सन्देश वाहक, भगवान् की दिव्य ज्योति के रूप में दिया है। जसनाथी सिद्ध लोग जलम झूलरों को कण्ठस्थ रखते हैं, तथा हवनादि के समय "सिंभूधड़ों" के पश्चात् इनका भी पाठ (उच्चारण) करते हैं

यदि आजतक की इन सभी उपलब्ध रचनाओं का एक साथ तुलनात्मक अध्ययन कर, उन पर विचार किया जाय तो इनके विषय, भाषा व रचना शैली में एक विचित्र साम्य दीख पड़ेगा और जान पड़ेगा कि लगभग एक ही प्रकार की विचार धारा व परम्परा का पालन इन जलम झूलरों में हुआ है। जलम झूलरों के रचयिताओं ने क्रमशः अपने पूर्व रचयिताओं के आदर्शों व पद्धतियों का स्पष्ट अनुसरण किया है। सवाईदासजी ने जियोजी का और चोखनाथजी ने लालनाथजी का अनुसरण किया है। लालनाथजी और चोखनाथजी जियोजी साखले से लगभग दोसो वर्ष पीछे हुए हैं, और और सवाईदासजी इन दनों से अनुमानत १००-१५० वर्ष पीछे हुए हैं।

जलम झूलरों में संवत्, वर्ष, तिथि और वार का उल्लेख नहीं हुआ है। यदि हुआ भी होगा, तो वे पंक्तियां संभवतः अब विनष्ट होचुकी हैं और इस लेखक के बहुत प्रयास करने पर भी उपलब्ध नहीं हो सकी हैं। बहुत काल तक इन जलम झूलरों की रक्षा अनुयाइयों द्वारा कर्णपरम्परा से होती रही है। जलम झूलरों के बाद जसनाथ-सम्प्रदाय में "सिद्धजी रो सिरलोको" छन्द प्रचलित है। जसनाथी लोग इस सिरलोके को एक विशेष राग से बड़े चाव के साथ गाते हैं। मालाणी परगने में इस सिरलोके का विशेष प्रचार है। सिरलोके में संवत, वर्ष तिथि और वार का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। देखिये:—

श्री जसनाथ रो कहूँ सिरलोको, सुणमुख होणजे नै हुणज्यो रै लोको।
राम भजन रो आयो है मोको, भजन चुकोला तो पावोला धोको।
संवत पनरा सै बरस गुण चाळे, मास काति नै पख उजाळे।
एकादशी नै छनिछर वारो, उण दिन धरती मे परगट अवतारो।
गढ़ विकाणो नै कतरियासर कहिये, जाणी तो जाट हमीरजी रहिये।
आधी रैण रा सपनो दरसायो, जोगी जटाधर गोरख आयो।
उठो हमीरा नै वचन सम्भावो, बाळक परगटियो डावले जावो।
पानां फूलां में घर ले आवो, बांटो बधाई खोळे हुलरावो।
मानव नहीं छै देव दरसाया, जुग में जादुपति किरपा कर आया।
जाग्या भाग हो भक्ति वर पाया, भागथळियों में पॉव धराया[1]।

यह गीत काफी लम्बा है। इस में भी जलम झूलरों की तरह प्रायः मुख्य २ घटनाओं का ही उल्लेख हुआ है। इन सभी मुख्य घटनाओं के साथ संवत्, वर्ष, मास, तिथि और वार का संयोग, इस सिरलोके में भी नहीं हो पाया है, किन्तु प्रादुर्भाव सम्बन्धी तिथि आदि का उल्लेख इस में वैसा ही हुआ है, जैसी जसनाथी सम्प्रदाय में मान्यता है। जसनाथजी का संक्षिप्त परिचय एक अन्य (मुद्रित) पुस्तकों[2] में भी मिलता है पर संवत् तिथि आदि

(१) यशोनाथ पुराण, पृ० ३ में भी पाठान्तर भेद से अंकित है।
(२) मुंशी मोहनलाल: तवारीख राज श्री बीकानेर पृ० ४६ ४७।
रमेशचन्द्र गुप्तार्या, 'राजस्थानी जातियों की खोज'

का उल्लेख उनमें नहीं है। शिवनाथजी सिद्ध द्वारा संग्रहीत जसनाथी साहित्य के अनेकों प्राचीन पत्रों में उपरोक्त संवत ही लिखा हुआ मिलता है—

'श्री जसनाजी सवत् १०७ समा ३२ वीसै (विषै) सिध किरण मां प्रगटा छा। पछै सींमत १५ समैं ३६ काती सुदी ११ सनिवार क दिन गाव कतरियासर या प्रगट हुवा'। 'पांचला सिद्धों का' के प्राचीन हस्तलिखित पत्रों में उपर्युक्त सवत का ही विवरण है। 'सिद्धाचार्य श्री जसनाथ'[1] नाम के लेख में भी उपरोक्त सम्वत्, तिथि आदि के साथ शनिवार का भी उल्लेख किया गया है। इन सबके आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि दिव्य देवमूर्ति सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का प्रादुर्भाव निश्चय ही वि० स० १५३६ कार्तिक शुक्ला देवोत्थाननी एकादशी शनिवार को ब्राह्ममुहूर्त में हुआ।

हमीरजी को जंगल में तप करते हुए जब तीन दिन व्यतीत हो गये, तब जटा मुकुटधारी, तपोधन, शिवावतार गुरु गोरखनाथ ने हमीरजी को दर्शन देकर उनके मनोगत दुःख को सुना और द्रवित होकर हमीरजी को डाबले तालाब पर पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया। 'यशोनाथ पुराण' में लिखा है कि हमीरजी को अर्धरात्रि में ऐसा स्वप्न आया[2] कि एक योगी उनको भाग-

---

(१) सतोष पडित, 'नियमि पाक्षिक'।

'चमत्कार को नमस्कार' लेखक- राव शिवनाथसिंह, हिन्दू सन्देश प्रेस, जोधपुर। इस पत्र में भी सिद्धाचार्य की उत्पत्ति सवत् १५२९ कातिक सुदी एकादशी सोमवार लिखा है। बालक प्राप्ति-स्थान का नाम डावला लिखा है। इसमें लिखा है हमीरजी को आकाशवाणी हुई थी।

सिद्ध गुणेशनाथ महत, पाचलासिद्धो का (मारवाड) 'सिद्ध जाति वर्णन' इस पत्र में भी उपरोक्त सवत् वर्ष का समर्थन है। डा० श्री कन्हैयालाल तथा पतराम गौड, 'सिद्धाचार्य महात्मा जसनाथजी तथा लोहापागळ' 'राजस्थान साहित्य' वर्ष १, अक १।

(२) आयो सपनो सो अजब दरसाया, भगवैं वसतर सूं जोगेसर आया।
भागथळी में बाळक बतळाया, डावळै सरवर पर हुकम पठाया।
दोय घडी कै सवेर जाग्या, घोडै जीन करण नै लग्या।
जिण घोडै पर सजी सजाई चढिया हमीरजी उत्तर दिशा जाई।

थली में डावले तालाब की ओर जाने के लिए कह रहा है। तब हमीरजी उठे और घोड़े पर जीन कसकर डावला की ओर गये। जलम भूलरों में घोड़े की सवारी का तथा हमीरजी को स्वप्न आने के बारे में विवरण नहीं है।

सरवर डावळै हमीरजी आया, हुई परभाता भानु दरसाया।
खड़िया घोड़ो तो हालै नी आगै, सिह बसगरी चोकी'ज लागै।
(वही, पृ० ५)

ददर्श स्वप्न धीमान्स रात्रौ सुप्तो द्विनादिते।
गोरक्षनाथ नामाऽऽह डावला याहि सत्वरम्।
तत्रैकः सुबालाऽस्ति लीला मानुष विग्रह।
गत्वा तत्र तमानीय पुत्रवान् भवत्व सतः॥
(गणपति शर्मा, श्यामसर सेखावाटी)

योगी कृष्णनाथ 'तितिक्षु' ने अपने एक हस्तलिखित लेख में लिखा है—हमीरजी तीन दिन के बाद एक समय पुत्र चिन्ता के कारण ध्यान में मग्न हो गये। कुछ कालान्तर उनके हृदय कमल में एक अद्भुत अनुपम प्रकाश प्रकट हुआ। अभीतक हमीरजी इस प्रकाश का यथार्थ निश्चय नहीं कर सके थे कि अचानक देदीप्यमान मकराकृत कुंडल जिनके कानों में शोभायमान हैं तथा जटा का मुकुट बांधे हुए, अंग में भस्म रमाये हुए, कर में कमंडल, लिये हुए, तत्वज्ञानी, तपोधन, शिवावतार, योगाचार्य श्रीगोरक्षनाथजी ने हृदय में प्रवेश किया। हमीरजी ने उस परमोत्कृष्ट दिव्य मूर्ति को देखकर विनय की भावना से अनेक कल्पना की कि अब मैं इनकी किस विधी से स्तुति करूँ। ये इधर विचार ही रहे थे कि कुछ शब्द ध्वनि श्रवगत हुई वह शब्द यह था कि— हे हमीर! तू क्यों वृथा अनशन कर रहा है। अनित्य पुत्रधन के लिये अमूल्य देह को नष्ट कररहा है। उस समय गोरक्षनाथजी के उपदेश-मय वाक्य को सुनते ही ज्ञानोत्पत्ति के प्रभाव से गंभीर मधुर स्वर से नीतियुक्त विनय पूर्वक नम्र भाव से, हमीरजी ने कहा कि महाराज! आपके दर्शनमात्र से ही अनेक जन्म के अकृत कार्यों का जो अपराध रूप पाप प्राणियों की आत्मा में रहता है वह कपूर के समान एक क्षण में नष्ट होजाता है और इस लोक परलोक में जीव को सुख आपकी कृपा से ही मिलता है। इस प्रकार मनही मन वह यह ही रहे थे कि कानों में फिर मधुर ध्वनि आने लगी वह यह थी कि तुम चिंता न करो। डावले तालाब पर जाओ वहाँ तुम्हें अति विश्वमहात्मी, धर्मोपदेशक, परमोदार चित्त वाला एक अलौकिक पुत्र प्राप्त होगा।

'वणी विरोळताँ कण पण ला'दो माणक मोल अपारी'—

लिखकर सवाईदासजी ने यह स्पष्ट संकेत किया है कि पुत्र के अभाव से पीड़ित, हमीरजी को जंगल में भटकते (ढूँढते) हुए अमूल्य सार युक्त माणिक्य के रूप में बालक की प्राप्ति हुई। राजस्थानी में 'विरोळताँ' हाथों के छटपटाने को कहते हैं। हमीरजी तो नि सन्तान होने के कारण छटपटा ही रहे थे। हमीरजी ने जिस जगह अनशन प्रारम्भ किया था, सम्भव है— वह स्थान डाबला के पास ही रहा होगा। अत. हमीरजी उसी स्थान से डाबला चले गये होंगे या हमीरजी पहले घर गये होंगे, और घोड़े की सवारी से डाबला गये होंगे। अस्तु। यह कोई विशेष विवाद का विषय नहीं है। किसी भी प्रकार गए हों, हमीरजी डाबला पर चले गये। वहाँ हमीरजी ने एक तेज पुंज बालक को देखा। बालक पर एक काले साँप ने अपने फन से छत्र कर रखा था, तथा पास में एक सिंह[1] भी बैठा, बालक की रखवाली कर रहा था। हमीरजी उनको देखकर भय से पहले तो ठिठक गये, पर तत्काल ही हमीरजी ने विनम्रतापूर्वक उनको नमस्कार किया। तब सिंह उत्तराखण्ड की ओर चला गया और साँप पाताल के रास्ते से चला गया।

'बाँह पिसार हर कान्धै लिया' 'हमीर' 'हरख' 'उमावै'[2] हमीरजी ने अपनी भुजाएं फैलाकर ब्रह्म-स्वरूप बालक को कन्धों पर ले लिया, और हर्ष से उमगित हो उठे। सकल सृष्टि को पवित्र करने वाले, कुलोद्धारक तथा ऋद्धि-सिद्धि-सम्पन्न बालक को घर ले आए और अपनी धर्मपत्नी रूपादे को सौंप दिया। बालक को देखते ही उल्लसित रूपादे के स्तनों से दूध की धारा बहने लगी। यह सब विग्रह-लीला जलम झूलरों में वर्णित की जा चुकी है। अत' यहाँ अधिक विस्तार की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

यहाँ इस प्रश्न का उठना स्वाभाविक है कि आखिर ऐसा अलौकिक तेज पुंज बालक डाबला पर कहाँ से आया? इस सम्बन्ध में कई प्रकार की किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं।

---

(१) जलम झूलरो में सिंह की चौकी का कही उल्लेख नही है।

(२) राजस्थानी में 'उमावै' और 'हरख' पर्यायवाची शब्द है। यहाँ हरिख से हरिऋषि से भा तात्पर्य हो सकता है।

(१) जसनाथजी सम्प्रदाय में ऐसी मान्यता है कि-स्वयं भगवान् ही बालक के रूप में यहां प्रकट हुए और गोरखनाथजी ने हमीरजी को इस सुसम्वाद से ज्ञात करा दिया, अतः हमीरजी बालक को डाबला से अपने घर ले आये। वह अलौकिक ऐश्वर्य-सम्पन्न बालक था अर्थात् उसका जन्म हुआ ही नहीं; वह गर्भवास में आया ही नहीं।

(२) दूसरा मत है कि श्रीजसनाथजी संवत् १०७ समै ३२ सिद्ध किराणा[1] (सिद्धक्षेत्र) में प्रकट हुए थे। यही महात्मा यहां बालक के रूप में प्रकट हुए।

(३) तीसरे मत के अनुसार कहा जाता है कि हमीरजी पूर्व-जन्म (सत्य-युगादि) में हरि ऋषि (हरि-रिख) नाम के ब्राह्मण थे, और उनके कोई सन्तान न होने के कारण उन्होंने भगवान शंकर की चिरकाल तक घोर आराधना की। एक दिन प्रत्यक्ष में प्रकट हो कर प्रसन्नतापूर्वक भगवान शंकर ने कहा "हे ऋषि! मन इच्छित वर मांगो" हरि ऋषि ने कहा- "भगवन् आप प्रसन्न हैं तो मुझे आप जैसा दिव्य देहधारी पुत्र-रत्न प्राप्त होना चाहिए"। भगवान् शंकर ने कहा— "हे ब्राह्मण! तुम्हारी यह इच्छा कालान्तर में पूर्ण होगी"।

कहते हैं यही हरि ऋषि कलियुग में हमीरजी हुए और पूर्व वचनानुसार भगवान् ने सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के रूप में अलौकिक रीति से प्रकट होकर हमीरजी की इच्छा पूर्ति की तथा पुत्र रूप में बारह वर्ष तक उनके घर निवास किया।

---

(१) जि० सरगोदा (पश्चिम पंजाब, पाकिस्तान) में सिद्ध किराणा नाम से एक पहाड़ी प्रसिद्ध है, जिसके संस्थापक योगी भर्तृहरि माने जाते हैं। उन्होंने ही गोरखटीला नाम की पहाड़ी से एक हिस्सा योगबल से तोड़ कर वहां संस्थापित किया था।

सिद्ध रामनाथजी ने "यशोनाथ पुराण" में हमीरजी का सत्य युग का नाम भी हरि ब्राह्मण ही बताया है[1]। जसनाथी सिद्धों में भी यह कथा इसी रूप में प्रचलित है जैसा अनशन करते समय गोरखनाथजी द्वारा हमीरजी को उद्बोधित किया भया गया था— "जाग जागरे हरिरिख ब्राह्मण जूना कोल चितार"। भगवान् लीलाधारी हैं वे जहां जैसा रूप धारण करना चाहें, कर सकते हैं। वाराह, वामन और नृसिंह आदि भगवान् के इसी श्रेणी के रूप हैं। सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी को जलम भूलरों के रचयिताओं ने श्रीकृष्ण का निष्कलंक अवतार माना है[2]।

---

(१) पूर्व जन्म की कहुँ समझाई, हरिरिख ब्राह्मण हमीर हुताई।
ते शिव की नित्य सेव कराई, शिव परसन वर देत सदाई।
ओर बचन हम मागत नाई, मम सुत सत सदा सुखदाई।
युग युग भक्त होत वर पाई ते कारण अवतार धराई।

नित्य निमत भगवान के, मम घर हो अवतार।
ये वर हमको दीजिये, हरिरिखदास पुकार।

(यशोनाथ पुराण, पृ० ४२)

(२) उपरोक्त घटना से सम्बन्धित कुछ ऐतिहासिक तथ्य हमारे सामने हैं किन्तु जसनाथ सम्प्रदाय वालो को यह तथ्य स्वीकार नहीं अतएव सुदृढ मान्यताओं का प्रकाशन ही यहां समीचीन समझा गया है। सम्भव है द्वितीय संस्करण में ऐसे ही कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख किया जा सकेगा।

श्रीसिद्धेश्वर जन्माङ्गम्

श्री सवत् १५३६ शाके १४०४ (१४८२ ई० सन्) कार्तिक शुक्ला ११ शनेष्टम ०/० लग्न वृश्चिक।
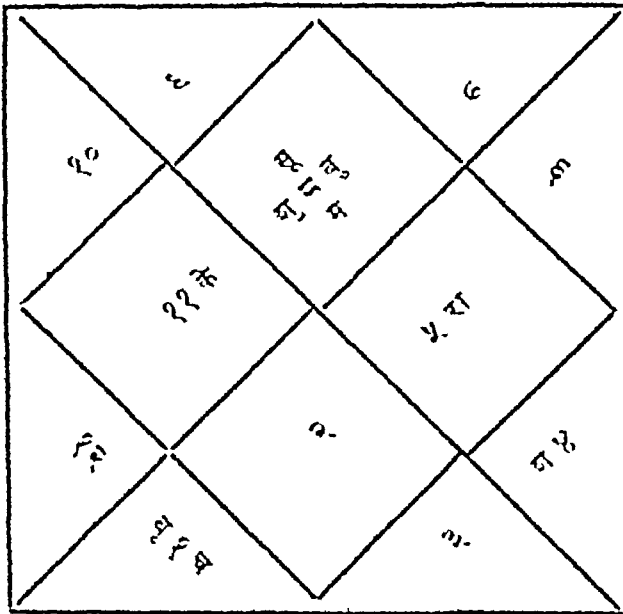
विरछी लगन 'भान' 'कुज' 'सुक्र', 'बुध' भी रे'मी ओं भेलो।
दश मे 'राहु' भागमें 'पंगु' 'गुरु' 'चन्दर' छटै मेलो।
पड़्यो पाप 'केत' चोथे मे, कस जचियो रचियो खेलो।
चिन्ता त्याग भजो 'हरिहर' नै, आगै को देखो चेलो।

बालचरित्रः—

सिद्ध पुरुषों का समस्त जीवन ही अलौकिक घटनाओं से गुंथा हुआ रहता है। महापुरुष अपनी जीवन घटनाओं और विचार धाराओं के द्वारा ही समाज को आत्म-शान्ति का मार्ग दिखाते हैं। सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के बाल चरित्रों से सम्बन्धित घटनाओं का नीचे कुछ उल्लेख किया गया है। यद्यपि "जलम झूलरों" में इन घटनाओं का वर्णन नहीं आया है किन्तु जसनाथी समाज में दन्तकथाओं के रूप में ये चरित्र सुनने में आते हैं। 'यशोनाथ पुराण' में भी इस प्रकार के कुछ चरित्र प्रकाश में आये हैं।

(१) बालक जसवन्त- जिस समय एक साल का था, खेलता हुआ आँगन में पडी एक अग्नी की बड़ी अँगीठी में जा बैठा। माता यह देखकर अत्यन्त व्याकुल और भयभीत हो उठी और दौड़कर बालक को अग्नी के दहकते हुए ढेर से बाहर निकाला किन्तु बालक के जलने का कहीं निशान तक न देखकर माता के हर्ष और विस्मय का पारावार न रहा।

(२) जब बालक जसवन्त दो वर्ष का था तब खेलता खेलता दौड़कर माता के पास आया और अनुरोध करने लगा—माँ, मैं भूखा हूँ, दूध पीऊँगा। माता ने उपेक्षा पूर्वक कहा- यह पड़ा है, पीलो। माता कार्यवश इधर उधर चली गई। बालक ने लोटा उठाया और वह 'कढावणी'[1] में से डेढ मण दूध चट कर गया। दो घड़ी बाद, अत्यन्त कौतुहल के साथ, माता ने बालक के इस अद्भुत क्रियाकलाप को देखा!

(३) बालक जसवन्त जब पाच वर्ष का हुआ तब हमीरजी बालक को पढ़ाने के लिए एक विद्वान् ब्राह्मण के पास लेगये। बालक की अल्पायु देखकर पण्डित ने कहा, कुमार (कुंवर) अभी छोटा है। कुछ और बडा होने पर विद्याध्ययन प्रारम्भ करायेंगे। कहते हैं कि इस पर बालक ने पच्चीस वर्ष के युवक का दिव्य-स्वरूप धारण कर, विनीत भाव से गुरु के समक्ष निवेदन किया- महाराज! मैं छोटा नहीं हूँ। विद्याध्ययन के सुअवसर को न टालिये।

---

(१) दूध के कढाने (गर्म करने) का मिट्टी का वर्त्तन।

ब्राह्मण ने आश्चर्य चकित होकर हमीरजी से पूछा, यह क्या लीला है? हमीरजी ने सम्माननीय ब्राह्मण को बालक के पूर्व चमत्कारों का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। बालक ने माँ सरस्वती की पूर्ण अनुकम्पा से उन ब्राह्मण देवता के पास स्वल्प काल में ही समस्त विद्याओं का अध्ययन समाप्त कर लिया।

(४) अपने ग्राम के टाडे में एक दिन टोळे के दो भीमकाय 'महिये' (साँड छोड़े हुए ऊँट जिनसे कोई काम नहीं लिया जाता) लड़ पड़े। महिये गुस्से से पागल होकर इतने भयानक रूप में एक दूसरे से गुथ गये कि उनको छोड़ाने का किसी को साहस नहीं हुआ। सब लोग इधर उधर धूलकोटों पर चढगये। कूए पर जलार्थ आनेवाली पनिहारिनों के मार्ग अवरुद्ध होगये। गांव के पशु भी उधर पानी पीने न आसके। टाडे का शान्त वातावरण क्षुब्ध हो उठा। इस विकट स्थिति को अनुभव कर संसिद्धि-सिद्ध बालक जसवन्त को सब पर दया आई और बालक ने सहज ही दोनों हाथों से महियों के कान पकड़ कर उन्हें पृथक् कर दिया। उस समय इस दृश्य को हरियाणा के चूड़ीखेड़ा ग्राम का निवासी नेपालजी बेणीवाल भी देख रहा था।

नेपालजी के घर भी ऐसी ही एक अलौकिक कन्या ने जन्म लिया था, जिसके सम्बन्ध में आगामी अध्यायों में विशेष रूप से लिखा गया है। नेपालजी उस समय किसी सुयोग्य वर की खोज में घर से निकले हुए थे। उन्होंने बालक के समुचित आदर्श गुणों का परिचय प्राप्त कर हमीरजी के सम्मुख सगाई-सम्बन्ध का प्रस्ताव रखा। आगन्तुक नेपालजी में वाञ्छित गुणों का समावेश पाकर, हमीरजी ने उन्हें अपना समधी बनाना उचित समझा और प्रस्ताव पर अपनी स्वीकृति देदी। शास्त्र-रीत्यनुसार मांगलिक कार्य-क्रम का आयोजन किया गया। उस समय जसवन्त की अवस्था दस साल की थी।

(५) ग्रामीण बालकों की तरह बालक जसवन्त भी उस समय जंगल में गौ चराने जाते थे। इनकी गायें तथा बछड़े बड़े सुन्दर सुडौल थे। उन दिनों यवन तस्करों का बड़ा प्राबल्य था। वे समूह बनाकर ग्रामीण-धनवित्त पर आक्रमण कर क्षति पहुँचाते रहते थे। वे लोग अधिकांश सिन्ध एवं उत्तर पंजाब के मार्ग से इस थली प्रदेश की ओर आया करते थे। एक दिन उन लुटेरों की

लोलुप दृष्टि जंगल में चरते हुए जसवन्त के सुडौल गौ बछड़ों पर पड़ी। एकान्त पाकर लुटेरों ने बालक जसवन्त को एक शमी-वृक्ष के तने से कसकर बाँध दिया एवं तने के चारों ओर ईंधन डालकर उसमें आग लगादी और जसवन्त को भस्मीभूत हुआ समझकर, यवन तस्कर गौ-बछड़ों को टोरकर नौ दो ग्यारह हुए। थोड़ी दूर जाकर क्रूर-कर्मी यवनों ने बालक जसवन्त के सर्वप्रिय नन्दी बछड़े का बध कर दिया और वहीं बैठकर भक्षण करने लगे। परमसिद्ध जसवन्त का अनिष्ट अग्निदेव कैसे कर सकते थे? अग्नि से निकलकर उन्होंने मुसलमान लुटेरों को एक कोसपर जा पकड़ा और कहा— अरे अन्धो! मेरी गायों को तुम नहीं लेजा सकते; इतना कहने के साथ ही उनमें से दो मुसलमान लुटेरे— जो गायों को दौड़ाकर ले जारहे थे, तत्क्षण अन्धे हो गये। सिद्धराज ने अपनी गाये अपने अधिकार में की, परन्तु उन गायों में अपने सर्वप्रिय नन्दी बछड़े को नहीं पाया। बछड़े को जंगल में इधर उधर तलाश करने पर देखा कि एक वृक्ष के नीचे शेष दो मुसलमान लुटेरे बछडे की खाल निकाल रहे हैं। सिद्धेश्वर ने उनको देखकर कहा—अरे नराधमों! 'तुम्हें काल चक्र पहुँचे'। इतना कहते ही एक काले साँप ने उन मुसलमान लुटेरों को डस लिया और वे वहीं धराशायी हो गये। बछड़े को बालक जसवन्त ने अपने योगबल से जीवित कर लिया। चार मुसलमान लुटेरों में से जो दो लुटेरे जसवन्त के कोप से अन्धे होगये थे, वे दोनों सिद्धाचार्य से प्रभावित होकर उनके भक्त बन गये तथा कालान्तर में नेत्र लाभ कर तपस्यामय जीवन बिताने लगे। उन यवनों द्वारा कुछ 'सबद' भी सादरदीन तथा समसदीन की 'छाप' के प्राप्त होते हैं। कुछ लोगों का मत है कि सादरदीन और समसदीन तो मुलतान के सुल्तान थे। उस समय समसदीन नाम का एक व्यक्ति काश्मीर में भी हुआ है। वह सूर्यदेव का उपासक था। ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में अन्ततः निर्णय करना कठिन है कि ये सादरदीन और समसदीन वस्तुतः कौन थे?

(६) कतरियासर के कूए पर नमक की कतार आई, यद्यपि लोगों को यह भली-भाँति ज्ञात था कि कतार के इन ऊँटों पर नमक लदा हुआ है फिर भी

विनोद भावना से बालक जसवन्त को बुला कर लोग कहने लगे देखो, जसवन्त ! ये ऊँट मिश्री से लदे हुए हैं, इच्छा हो तो निकाल कर दें ! खाओगे ? बालक जसवन्त मुस्कराकर कहने लगा, हाँ ! ये ऊँट मिश्री से लदे हुए हैं। मैं ही क्यों ? आप लोग भी तो खाइये ! नमक की बोरियों के मुँह खोल दिये गये। सर्व प्रथम बालक को ही मिश्री-प्रसाद दिया गया। तदुपरान्त सब ने नमक समझते हुए भी प्रसाद ग्रहण किया। बालक ने मिश्री का टुकड़ा मुँह में रखते हुए सबको मिश्री-प्रसाद चखने की आज्ञा दी। लोगों ने चख कर देखा तो नमक सचमुच ही मिश्री के रूप में परिणित हो गया था। कतारियों ने अपने भाग्य की सराहना की।

चतुर्थ अध्याय

महासती काळलदे का प्राकट्य

बीकानेर नगर से पूर्व की ओर लगभग निन्नानवें कोस की दूरी पर हरियाणा के भूभाग में चूड़ी-खेड़ा नाम का एक गाँव है। उस गाँव में नेपालजी बेणीवाल निवास करते थे। नेपालजी की गणना उस समय के श्रेष्ठ शिवभक्तों में थी। घटना, उस समय की है, जब कि नेपालजी के घर में, प्यारलदे को जन्म लिये छः मास का समय हो चुका था। माता ने एक दिन बहुत तड़के तीन बजे के समय ६ मास की कन्या प्यारलदे को स्तन पान कराकर झूले में लेटा दिया और स्वयं नित्य की भांति घर के कार्य में लग गई।

उसी दिन विक्रम संवत् १५४१ आश्विन शुक्ला चतुर्थी को सूर्योदय के समय में देखा गया कि उस छ मास की गौराङ्ग कन्या के साथ तद्रूप ही एक अन्य बालिका लेटी हुई है। यह आश्चर्यजनक घटना त्वरित गति से सारे गाँव में फैल गई और कन्या के दर्शनार्थ गाँव के स्त्री पुरुषों का ताँता लग गया। सम-स्वरूपा कन्याओं के पहचानने में जब माता पिता को कठिनाई हुई. तब उनमें से एक बालिका ने श्यामवर्ण धारण कर लिया। इसी श्यामांग कन्या का नाम काव्लदे रखा गया। चन्द्रकला की भाँति दोनों ये कन्याएँ वृद्धि को प्राप्त होने लगी। इनकी मधुर मुस्कान, शौर्य भरी दृष्टि, सहज सकोचशील स्वभाव आदि से नेपालजी और उनकी धर्मपत्नी अति-प्रसन्न रहने लगे।

(१) नेपालजी के परिवार में किसी के यहाँ विवाह था और विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिए दोनों बालिकाओं को शीघ्रतापूर्वक जाना था, परन्तु काव्लदे ने वस्त्राभूषणों से अपना शृंगार करने में बहुत विलम्ब कर दिया।

परिजन महिलाओं ने काव्लदे को चलने के लिए बार २ आवाज दी, पर काव्लदे बाहर नहीं निकली। स्त्रियों की व्यग्रता को देखकर स्वयं नेपालजी काव्लदे के कक्ष में गये किन्तु नेपालजी ने कक्ष में देखा कि पलंग पर काव्लदे के स्थान पर साज-शृंगार-युक्त एक सिंहनी लेटी हुई है। काल के विकराल रूप को सहसा सम्मुख देखकर, नेपालजी के प्राण सूख गये। वे दबे पाँव कक्ष से वापिस लौट आये, बाहर देखा कि स्त्रियों के साथ काव्लदे भी विवाह वाले घर की ओर जारही है।

इसी दिन से नेपालजी काव्लदे को महामाया का अवतार मानने लगे। कहते हैं देवी स्वय भी कभी २ अपने को काली एवं प्यारलदे को पार्वती कहती थी। लालनाथजी 'जीव समझोतरी' में एक जगह कहते है—

'पारवती प्यारी सती, काळी सो हिंगळाद"

देवी का दूसरा चमत्कार यह सुनने मे आया है—

नेपालजी बेणीवाल के घर के सामने एक बहुत बड़ा पत्थर था; जिस पर कई ऊखल खोदे हुए थे। इन ऊखलों में गाँव की समस्त स्त्रियाँ धान कूटने के लिए आती थी। एक दिन दो चार स्त्रियाँ परस्पर झगड़ा कर बैठी। तू तू, मैं मैं होने लगी। महामाया काव्लदे ने सोचा— ऊखल के इस पत्थर के विषय में स्त्रियाँ लड़ती झगड़ती रहती हैं और नित नये फसाद होते हैं। मैं इस प्रकार की बुराई नहीं देख सकती। ऐसा निश्चय करके काव्लदे आनन फानन मे इस पत्थर को उठाकर अपने घर ले आई।

काव्लदे की इस असाधारण शक्ति और साहस को देखकर नेपालजी का चकित व विस्मित होना स्वाभाविक था। इससे अधिक सामर्थ्य सम्पन्न वर कहाँ मिल सकेगा? इसी प्रकार के विचार नेपालजी के हृदय को आन्दोलित करने लगे। उनका मस्तिष्क विभिन्न प्रकार के विचारों से चंचल रहने लगा। ऐसा होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि साधारण कन्या के भविष्य के लिये भी जब माता पिता चिन्तित रहते हैं जैसी कि कहावत है "कन्या जाइरै जगनाथ, चारौं हेठा होया हाथ" फिर इस असाधारण कन्या के लिए तो नेपालजी का चिन्तित होना अवश्यम्भावी था।

कई दिन तक नेपालजी मन ही मन कुढते रहे। 'किं कर्त्तव्य विमूढ' होकर भविष्य के बारे में कोई निर्णय न कर सके।

एक दिन एक ब्राह्मण अपने यजमानों में भ्रमण करता हुआ चूड़ीखेड़ा में नेपालजी के घर आया। प्रसगवश नेपालजी ने ब्राह्मण के आगे किसी सुयोग्य घर के विषय में अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

ब्राह्मण ने प्रशंसात्मक भूमिका बांधते हुए कतरियासर के एकाधिपति हमीरजी के सुपुत्र जसवन्त (जसनाथ=यशोनाथ) का नामोल्लेख किया। ब्राह्मण के मुँह से हमीरजी के पुत्र के गुणों की प्रशसा सुनकर नेपालजी को कुछ सांत्वना मिली और दूसरे दिन नेपालजी ने कतरियासर के लिये प्रस्थान किया।

महामाया काळलदे की भाँति प्यारल सती भी कम सामर्थ्यशीला नहीं थी। माता ने एक दिन प्यारल से बछड़े चराने के लिए कहा। माता की आज्ञानुसार प्यारल गाँव के पोखरे के किनारे बछड़े चराने को चली गई। सांयकाल जब प्यारल अकेली घर में लौटकर आई तो माता ने पूछा, बेटी, बछड़े पीछे क्यों छोड़ आई। गऊ आने का समय हो गया, चूंग जाँयगे न। वापिस जाकर बछड़े घेरला, शीघ्रता कर। माता के मुंह से शीघ्रता की बात सुनकर प्यारलदे ने अपनी पंवरी (ओढणी) को फटकारा। फटकारने के साथ ही सारे बछड़े पंवरी से बाहर निकल पड़े और अपने २ स्थान (थान=ठाण) पर जा खडे हुए। माता ने अपनी बेटी के इस चमत्कारिक कृत्य को देखा, और दंग रह गई।

पंचम अध्याय

श्री जसनाथजी की दीक्षा तथा यौगिक चमत्कृति

नाथ सम्प्रदाय के प्रणेता एवं आदि आचार्य श्री आदिनाथ भगवान् विश्वेश्वर शंकर ही हैं। भगवान् शंकर से ही नाथ (सिद्ध) सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ है। श्री सिद्ध मत्स्येन्द्र नाथजी को भगवान् शंकर से ही योग दीक्षा मिली थी। श्री मत्स्येन्द्रनाथ की उत्पत्ति-कथा पुराणों में[1] विद्यमान है। पुराणों में मत्स्यनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ, मीननाथ, सिद्धनाथ, अखिलसिद्धनाथ और आर्यावलोकितेश्वर[2] आदि शुभ नामों का उल्लेख है। नेपाल-राज्य के अधिष्ठात्री देवता श्री गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ही हैं।

आदिनाथो गुरुर्यस्य गोरक्षस्य च यो गुरुः।
मत्स्येन्द्रंतमहंवन्दे महासिद्धं जगद् गुरुम्॥

इस पद्य से नाथ (सिद्ध) सम्प्रदाय की परम्परा का पता लगता है। 'शिवदिन केसरी' के शिष्य मालुनाथ ने भी अपनी रचना में कहा है— 'जो गुणातीत अव्यक्त विद्याविलासी, सृष्टि के मूल और सारे ऐश्वर्य के आदि हैं और जो सदा सच्चिदानन्द की स्थिति में ही रहते हैं, उन आदिनाथ को मेरा नमस्कार है।'

---

(१) स्कन्दपुराण, नागरखण्ड, अध्याय २६२ तथा नारद पुराण, उत्तर भाग वसुमोहिनी सम्वाद, अध्याय ६९।

(२) आर्यों से अवलोकित अर्थात् साक्षात् ईश्वर (प्रज्ञाचिद् प्रज्ञांपनयति) बौद्ध मतावलम्बियों ने श्री मत्स्येन्द्रनाथ को 'अवलोकितेश्वर' रूप से देव पदासीन किया है।

'जो सज्जनों के सुख निधान, योगेश्वरों के विश्राम और परमधाम हैं, निरालम्ब देश में जो अनुपम राजा हैं उन मत्स्येन्द्रनाथ को मेरा नमस्कार है।'

ज्ञानेश्वर चरित्र[1] में लिखा है— महादेव और पार्वती क्षीर सागर के तट पर बैठे ब्रह्म-चर्चा कर रहे थे। महादेव जी कहते जाते थे और पार्वती हुँकारा भरती जाती थी। कुछ समय बाद ब्रह्म-चर्चा में पार्वतीजी इतनी तन्मय हो गई कि उनको समाधि लग गई, तब मत्स्येन्द्र-रूप से भगवान् विष्णु वहां आकर उनके बदले में हुँकारा भरने लगे, पर इस हुँकारे का स्वर कुछ भिन्न जानकर महादेवजी ने पार्वतीजी की ओर देखा। देखा, पार्वतीजी तो समाधि में हैं। तब यह जानकर कि यह काम विष्णु का है, उन्होंने 'अलख' शब्द किया, त्योहीं मत्स्य के उदर से बाहर निकल कर कुमाररूप विष्णु ने 'आदेश' प्रतिशब्द किया। यही कुमार मत्स्येन्द्रनाथ (मच्छेन्द्रनाथ) हैं'।

स्वयं श्री गोरखनाथजी ने भी अपने 'गोरक्षा किमयागार' ग्रन्थ में श्री मत्स्येन्द्रनाथ को 'महा विष्णुसांई' कहा है, इससे यह ज्ञात होता है कि श्री मत्स्येन्द्रनाथ ही विष्णु स्वामी थे अर्थात् सकल सृष्टि के भर्ता भगवान विष्णु थे।

नमः समस्त भूताना मादिभूताय भूभृते ।
अनेक रूप रूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥
यस्मान्मत्स्योद राज्ञातो योगिनां प्रवरोह्ययम् ।
तस्मात्तुमत्स्य नाथोति लोके ख्यातोभविष्यति ॥

गुरु गोरखनाथ—

गुरु-भक्ति जिनसे मूर्तिमती हुई, महासिद्धि जिनसे व्यक्त हुई और जो दीनों के उद्धार के लिए दौड़ते फिरते हैं उन गोरखनाथ को मेरा नमस्कार है।

कतिपय सिद्ध-साहित्य को प्रकाश में लाने व उसमें अभिरुचि रखने वाले विद्वानों ने श्री गुरु गोरखनाथजी का प्राकट्य विक्रम की दसवीं शती

(१) प० लक्ष्मण रामचन्द्र पागारकर अनुवादक लक्ष्मण नारायण गर्दे, पृष्ठ ७१।

के अन्त या ग्यारहवीं शती के आदि में माना है[1]।

आधुनिक इतिहास शोधक 'नाथ सम्प्रदाय' का आविर्भाव काल के निर्णय करने में छठी शती तक पहुँच गए हैं। आदिनाथ भगवान् शंकर के अतिरिक्त इस भूमण्डल पर नाथ सम्प्रदाय के प्रथम आचार्य श्री मत्स्येन्द्रनाथ तथा दूसरे समर्थ आचार्य गुरु गोरखनाथ ही माने जाते हैं।

गुरु गोरखनाथजी के अवतार की कथा पुराणों[2] में भी अंकित है। आप संस्कृत विद्या के प्रकाण्ड विद्वान् थे। अनेकों योगशास्त्र[3] आज भी आपकी गुणगरिमा गारहे है। गुरु गोरखनाथ का पवित्र नाम आज भी भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक वैसा ही प्रसिद्ध है, जैसा कि शताब्दियों

---

(१) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, नाथ सम्प्रदाय, पृ० ९६। स्वर्गीय डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोरखबाणी, भूमिका, पृ० २०। इन विद्वानो ने अपनी विद्वतापूर्ण शोधो के परिणामस्वरूप इस आविर्भाव काल को निश्चित किया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने श्री गोरखनाथ का आविर्भाव काल पन्द्रहवीं शताब्दी माना है। कहा तो यह भी जाता है कि कबीर के भी परवर्ती गुरु नानक के तथा सत्रहवीं शताब्दी के जैन साधु बनारसीदास के साथ भी गुरु गोरखनाथ का वाद विवाद हुआ था।

राजस्थान के महापुरुष वीरवर पाबूजी राठौड के भतीजे झरडोजी ने गुरु गोरखनाथजी के वरदान से ही आततायी खिची जिन्दराव को मार कर अपने चाचा पाबूजी का वैर लिया था. बाद में झरडोजी ने गुरु गोरखनाथजी से योगदीक्षित हुए तथा रूपनाथ नाम से प्रसिद्धि पाई। यह बात वि० स० १३७३ के बाद की है।

(राव शिवनाथसिंह, कूपावत राठौडों का इतिहास, पृ० १५९) पाबूजी का जन्म वि० स० १३१३ तथा स्वर्गवास १३३७ म हुआ।

गोगाजी चौहान के गुरु भी गोरखनाथजी ही थे। वि० स० १३५३ में गोगोजी युद्ध क्षेत्र में लडते हुए वीर गति को प्राप्त हुए।

(डा० महल, राजस्थान के सांस्कृतिक उपाख्यान, पृ० २)

(२) स्कन्द पुराण, भक्त विलास, अध्याय ५१–५२। ब्रह्माण्डपुराण, ललितोपाख्यान, उत्तर भाग, हयग्रीवागस्त्य सम्वाद, स्वर्णमयशाल वर्णन।

(३) सिद्ध सिद्धान्त पद्धति, विवेक मार्तण्ड, गोरक्षसंहिता, दत्तगोरक्ष गोष्ठी और भी अनेकों संस्कृत के योग विषयक ग्रन्थ मिलते हैं। आपकी 'सबदियों' का प्रचार आसेतु–हिमाचल तक है। भारत की समस्त भाषाओं में न्यूनाधिक रूप से 'नाथ साहित्य' पाया जाता है।

पूर्व था। काबुल से कामरूप एवं काठमाण्डू (नेपाल) से सुदूर दक्षिण तक का कदाचित ही कोई प्रदेश, गुरू गोरख के प्रभाव से वंचित हो। महाराष्ट्र एव राजस्थान में सर्व प्रथम 'नाथ सम्प्रदाय' का ही सर्वमान्य प्रभाव रहा है। श्री शकराचार्य के अतिरिक्त इतना प्रभावशाली और महिमान्वित-महापुरुष भारतवर्ष में गुरु गोरखनाथ के सिवाय दूसरा नहीं हुआ। भक्ति आन्दोलन के पूर्व सब से शक्तिशाली धार्मिक आन्दोलन गुरु गोरखनाथ का योग-मार्ग[1] ही था। भ्रमणशील यात्रियों को यदि कहीं खोह, कहीं टीले, कहीं मन्दिर व कहीं कहीं भिन्न भिन्न जातियों तथा संस्थाओं द्वारा इनका स्मरण हो आता है, तो अध्ययनशील पाठकों के सामने[2], सस्कृत, बगला, मराठी, पंजाबी, हिन्दी आदि भाषाओं की रचनाओं के अन्तर्गत, इनकी योगपद्धति, शरीर विज्ञान, कायाकल्प, आत्मनिरीक्षण, शुद्धाचार एव समाज-सुधार सम्बन्धी सिद्धान्तों के अनेक प्रभाव बराबर दृष्टि-गोचर होते रहते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में गुरु गोरखनाथ व उनके पथ वालों की रचनाओं को एक विशेष महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

महाराष्ट्र के ज्ञान-सूर्य श्री निवृत्तिनाथ तथा ज्ञानेश्वर ने नाथपथ से ही दीक्षा प्राप्त की थी। श्री ज्ञानेश्वर के प्रपितामह त्र्यम्बकपन्त को वि० स० १२६४ में स्वय श्री गोरखनाथ ने ही दीक्षा दी थी। अवन्ति राज भर्तृहरि को इन्हीं श्री गुरु गोरखनाथ से योग दीक्षा मिली थी। शालिवाहन के पुत्र 'पूर्णभक्त' के गुरु भी श्री गुरु गोरखनाथजी ही थे।

जब महाराष्ट्र में चागदेव अपने योगवल से १४०० वर्ष जीवित रहे तब गुरु गोरखनाथ जैसे महान् योगी कई शताब्दियों तक इस भूमण्डल में सचार करते रहे हों और आज भी यौगिक बल से विचरण करते हों तो योग की अद्भुत सामर्थ्यशक्ति और सन्तो की सिद्ध-स्थिति की दृष्टि से यह कोई असाधारण बात नही है।

(१) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, 'नाथ सम्प्रदाय'।

(२) नेपाल की स्वर्णमुद्रा तथा रजत मुद्रा में आपका परम पावन नाम अंकित है।

ऋग्वेद में लिखा है—

इन्द्रोमायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शतादश अर्थात् इन्द्र, सच्चिदानन्द परमात्मा, अपनी योग माया शक्ति द्वारा अनेक प्रकार के अनेक शरीरों की रचना कर; अपने भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करते हैं, इसी प्रकार अणिमाद्यैश्वर्य-सम्पन्न योगिराज अपने कायव्यूहकी रचना कर सकता है। महाभारत में स्पष्ट लिखा है—

आत्मनो वै शरीराणि बहूनि भरतर्षभ।
योगी कुर्याद् बलं प्राप्य तैश्चसर्वैर्मही चरेत्॥
प्राप्नुयाद् विषयान् कैश्चित् कैश्चि दुग्र तपश्चरेत्।
संक्षिपेच्च पुनस्तानि सूर्यो रश्मि गणानिव॥

अर्थात् हे भरतर्षभ! युधिष्ठिर! अणिमादि सिद्धि-सम्पन्न योगीश्वर (काय-निर्माण-योगकला द्वारा) अपने एक आत्मा मे ही अनेक शरीरो की रचना कर लेता है। उन विभिन्न शरीरों मे से कोई तो राज्यादि विषयों में ही उलझ जाते हैं, और कोई तपादि साधनो में ही तत्पर हो जाते हैं। जब इस योगी के मन में कुछ तरंग उठ खडी होती है तो जैसे सूर्य भगवान् अपनी रश्मियों को इकट्ठाकर अस्ताचल पहाड़ के उस पार छिप जाते हैं, वैसे ही योगी भी अनेक शरीरों से एक बनकर चुपके से किसी निर्जन कन्दरा की गुफा में निर्विकल्प समाधि स्थित हो जाता है। गुरु गोरखनाथ के सिद्धियोगके चमत्कारों की चर्चा भारतवर्ष मे ही नहीं अपितु विश्व के अनेकों देशों में प्रचलित है। "नाथलीलामृत" के पांचवे अध्याय मे लिखा है.—

'इस काल में पाताल में जाकर योग-साधन करना श्री गोरखनाथ से ही बन पड़ा। वहाँ से वे भूमण्डल पर आये और चिरंजीव स्थिति को प्राप्त हुए। उनकी पलके नहीं गिरती थीं, श्वासकी गति नीचे की ओर नहीं होती थी। वह रहते थे पृथ्वी पर, पृथ्वी को स्पर्श किये बिना, और उनकी छाया भी नहीं पड़ती थी'। इस प्रकार की अपार महिमा वाले गुरु गोरखनाथ को यह मानना कि अब वे इस पृथ्वी पर नहीं हैं, हृदय इस बात पर विश्वास नहीं करता, बुद्धि चाहे इतिहास के पृष्ठों पर कुछ भी सोचती रहे। सोलहवीं

शताव्दी और सत्रहवीं शताव्दी के राजस्थान के भी के अपने ऐसे ही अनेकों उदाहरण हैं जिससे यह सिद्ध होना है कि गुरु गोरखनाथ ने समय समय पर प्रकट हो, अपने श्रद्धालु भक्तों को दर्शन देकर कृतार्थ किया है। वि० स० १५४२ में जाम्भोजी को और संवत् १७०० के प्रारम्भ में जसनाथ सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध सिद्ध रुस्तमजी को गुरु गोरखनाथ ने दर्शन देकर उन्हें सिद्धि-सम्पन्न वनाया था। भारत में घटित ऐसे सभी उदाहरणों को इकट्ठा किया जाय तो एक वहुत वडा ग्रन्थ तैयार हो सकता है। गोरखपन्थी लोग शिव गोरक्ष (शिव गोरख) मन्त्र का जप करते रहते हैं, भगवान शंकर का ही सौम्य रूप गुरु गोरखनाथ हैं। ज्ञानेश्वर चरित्र मे गोरखनाथजी की उत्पत्ति इस प्रकार लिखी है—

"एक वार श्री मत्स्येन्द्रनाथजी घूमते-घामते अयोध्या की ओर 'जयश्री' नाम के नगर में पहुँचे। उस समय वहाँ विजयध्वज राजा राज्य करता था। इस नगर में सद्बोध नामका एक पवित्र ब्राह्मण अपनी सद्वृत्ति नाम की स्त्री के साथ धर्माचार पूर्वक रहता था, इसके कोई सन्तान नहीं थी। इसके द्वार पर एक दिन भिक्षा-निमित्त श्री मत्स्येन्द्रनाथजी पहुंचे। ब्राह्मण-स्त्री ने इन्हें तेजस्वी जानकर बड़े आदर के साथ इनकी झोली में भिक्षा डाली।

श्री मत्स्येन्द्रनाथजी उस स्त्री के सतीत्व का तेज देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उसके कोई सन्तान न होने से उसके तेजस्वी मुख-मण्डल पर उदासी की एक रेखा खिंची हुई दिखाई देती थी। मत्स्येन्द्रनाथ ने उदासी का कारण पूछा, उसने नि सकोच भाव से उत्तर दिया- 'सन्तान न होने से ससार फीका जान पड़ता है'। मत्स्येन्द्रनाथ ने झोली से विभूति (भभूत) निकाली और अभिमन्त्रित कर उस सती को दी और कहा कि इसे खालो ! इससे तुम्हारे पुत्र होगा, यह कह कर मत्स्येन्द्रनाथ चले गये।

एक पाड़ोसिन ने उस ब्राह्मणी से कहा कि 'न जाने कहाँ का जोगड़ा था। ऐसों पर कभी विश्वास मत करना। ये कनफटे वैरागी हैं ऐसा मन्तर फूंक कर देते हैं कि कोई खाले तो उसकी सुध-बुध खो जाय और कुत्तिया वन कर उनके पीछे पीछे चले।'

पड़ोसिन की यह बात सुनकर ब्राह्मण स्त्री की श्रद्धा विचलित हो गई और उसने वह भभूत गड्ढे में फैंक दी। इस घटना को हुए बारह वर्ष बीत गए। पुनः बारह वर्ष पश्चात् श्री मत्स्येन्द्रनाथजी उस ब्राह्मण के घर आये और 'अलख' कहकर खड़े होगए। उन्होंने उस स्त्री को बारह वर्ष पहले की बात याद दिलाई और कहा कि अब तो तेरा बेटा बारह वर्ष का होगया होगा। देखूँ तो वह कहां है? यह सुनते ही वह स्त्री घबरा गई और उसने सब हाल कह दिया। मत्स्येन्द्रनाथ उसे साथ ले उस गड्ढे के पास गए। 'अलख' कह कर उन्होंने आवाज दी जिसे सुनते ही 'आदेश' कह कर बारह वर्ष का एक तेजपुंज बालक वहां से बाहर निकला और मत्स्येन्द्रनाथ के चरणों पर अपना मस्तक रखा। यह देख कर उस ब्राह्मण स्त्री को बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि ऐसे सिद्ध पुरुष के प्रसाद की मैंने ऐसी अवमानना की। दैव ने दिया पर कर्म ने छीन लिया। पुत्र मिला पर मैंने खो दिया। यह सोचकर वह अत्यन्त दुःखी हुई। मत्स्येन्द्रनाथ उस बालक को अपने साथ ले गए। यही बालक हमारे गोरखनाथ हैं। मत्स्येन्द्रनाथ ने अपनी सारी विद्या अपने इस श्रद्धालु और विरक्त शिष्य को देकर कृतार्थ किया। गोरखनाथ योग विद्या में पूर्ण हुए। स्वानुभव से उन्होंने योग-साधना का और भी उत्कर्ष किया। योग-साधना और वैराग्य में गोरखनाथ गुरु से भी बढ़कर हुए।

उन्हीं के कहने से मत्स्येन्द्रनाथ ने उस ब्राह्मण दम्पत्ति पर पुनः दया की और उनके पुत्र हुआ जिसका नाम गोरखनाथ ने 'नाथ वरद' रखा"।

यही श्री गुरु गोरखनाथ वि० सं० १५५१ आश्विन शुक्ला सप्तमी[1] को श्री जसनाथजी के परम गुरु हुए। सिद्धेश्वर श्री जसनाथजी ने अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर गुरु गोरखनाथजी का महत्व प्रकट किया है। 'जलमभूलरों' के निर्माताओं की निम्न पंक्तियों से स्पष्ट सिद्ध है कि श्री जसनाथजी के परम गुरु श्री गोरखनाथजी थे.

---

[1] सम्वत् पनरै इकावनै, आसोजी सुद पाय।
वा दिन गोरखनाथ सू, जसवन्त जोग पटाय।

(जसोनाथ पुराण, पृ० ३३)

जियोजी सांखला—'भागथळीगुरु गोरख मिलिया, जिण जोगी भरमाया'।
लालनाथजी— 'गुरु चेलां आळोच रचायो, दोनू आया थळी मंझार'।
चोखनाथजी— 'जूना जोगी परगट्या, भागथळी ओतार'।
सवाईदासजी— 'काना कुंडळ गळ'ज कन्था, गोरख आ बतळावे'।
लिख कर उपर्युक्त बात का समर्थन किया है।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की आयु का आज ११ वर्ष १० महीना २६वां दिन पूरा हुआ था। उस दिन बालक जसवन्त ने कतरियासर से चार कोस उत्तरस्थ भागथळी नाम के जगल में प्रवेश किया और वहीं योगाचार्य श्री गुरु गोरखनाथजी ने पधार कर बालक जसबन्त को योग दीक्षा दी। कथा इस प्रकार है—

महाभाग्यशाली हमीरजी का जीवन धन्य है कि जिनके घर में युक्तयोगी बालक जसवन्त ने विविध बाल क्रिड़ाओं एव बालजन्य आमोद-प्रमोद सहित ऊपर लिखे समय तक पुत्र-रूप में निवास किया, जैसा जियोजी साखला ने लिखा है—

ना'ना सूँ हर मोटा हुआ, बरस बा'रै बोळाया।

यह पहले बताया जा चुका है कि हमीरजी का घर धनधान्य से परिपूर्ण था। उनके अनेकों टोळे (ऊँट ऊँटनियों के झुंड) तथा गायों के अनेकों बाग (गोधन) थे।

सुदूर जगलों में हमीरजी के टोळे स्वछन्दतापूर्वक विचरण करते रहते थे। विधिवशात् हमीरजी का एक मुख्य टोळा विचरण करता हुआ जंगल में बहुत दूर निकल गया, जो प्रयत्नशील राईको (ऊँटों के चरवाहों) के जी जान से खोजने पर भी नहीं मिला। अच्छी नश्ल के टोळे के रूप में अतुलित सम्पत्ति खो जाने से हमीरजी को कुछ क्षोभ होना स्वाभाविक ही था। क्षोभाकुल पिता की मनोदशा देख कर बालक जसवन्त ने कहा- "पिताजी! आप इतने चिन्तित क्यों हैं? यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं टोळे को ढूढने भागथळी की ओर जाऊँ।"

हमीरजी अपने प्राणप्रिय पुत्र जसवन्त को निर्जन [illegible]

आज्ञा कैसे दे सकते थे। पर बालक जसवन्त ने आग्रहवश अपने पिता से टोळा खोजने को वन में जाने की आज्ञा प्राप्त करली। जियोजी सांखला ने इस सम्बन्ध में ऐसा उल्लेख किया है —

'चूर चूरमा फड़कै बान्ध्यो, हितकर माय जिमाया।
रिण विजण में हेड़ चरन्ती, सोधण नै मुकळाया'।

सवाईदासजी ने लिखा है— 'पांच सात दोवां दसा मे सांड्याँ सोधण जावैं'। माता रूपादे ने कुमार जसवन्त को प्रेम से भोजन करवाया तथा रास्ते के लिए उनके पल्ले मिष्ठान्न बान्ध दिया और सांडों (ऊँटनियों) के समूह को ढूंढने जगल मे भेज दिया। बालक जब उत्तर दिशा की ओर टोळे को ढूंढता हुआ जंगल में काफी दूर चला गया तब हमीरजी को अपना खोया हुआ टोळा दक्षिण की ओर से आता हुआ दिखाई दिया। सांडो का टोळा जब स्वतः ही दक्षिण दिशा की ओर से घर आगया, तब हमीरजी ने बालक जसवन्त को वापिस बुलाने के लिए उनके पीछे आदमी भेजा, तब तक कुमार जसवन्त 'भागथळी' तक पहुँच चुके थे। कुमार जसवन्त के इस जागृत एवं पुण्यभूमि में पदार्पण करते ही शिवावतार योगाचार्य श्री गुरु गोरखनाथ ने जसवन्त को सम्बोधित किया, जैसा सवाईदासजी ने लिखा है—

'काना कुण्डळ गळ्ळंज कन्था, गोरख आ बतळावै'

बाल स्वभाव से, अलौकिक दिव्य देह गुरु गोरखनाथ को देखकर जसवन्त कुछ सशंकित हुए— 'स्वामी देख्य'र संको आण्यो, गुरु धीरज बन्धाया' अर्थात् शिष्टाचार से बालक जसवन्त ने लज्जित नेत्रों से गुरु के चरण कमलों की ओर ही देखा। गुरु गोरखनाथ ने बालक जसवन्त को धैर्य बन्धाते हुए उनके सिर पर वरदहस्त रख कर 'सत्य शब्द' का[1] उपदेश दिया, जैसा जियोजी

(१) होया दरसण अतर भिन्निया वचन सिधारा नार सुफलिया।
पड़िया पग्गो मे चरणोदक लिया, गुरु भूजा तो सिर ऊपर दिया।
गोरखनाथजी गुरु मन भाया, शिक्षा गुरां री सबद सुणाया।
दीवि परचा सीस निवाया, दीवि परमार्थी भाजन पाया।
दीवि आसीसो ग्यान सुणाया, आप गा गुरुजी भला हि आया।
भगवें चोले रा दरसन पाया, सेली सींगी सुन नाद वजाया।

ने लिखा है— 'काना फूंक सीस पर पंजो 'सत' रो 'सबद' सुणाया'। बालक जसवन्त ने गुरु चरणोदक लेकर श्रद्धा-युक्त विनीत भाव से श्री गुरु गोरख-नाथजी को करबद्ध 'ॐ नमो आदेश' किया तथा विविध प्रकर से गुरु की मन-वचन से स्तुति की[1]।

जियोजी सांखला के 'जलमभूलरा' में लिखा है—

'चेलै रै फड़कै भोजन होंतो, गुरु चेलै रळ पाया।
गुरु री डीबी पाणी होन्तो, 'चेलो कर हर पाया'।

गुरु द्वारा उपदिष्ट जसवन्त ने जो उनके पल्ले भोजन बन्धा हुआ था, वह

दिया हुकम सो वचन पठाया, जसनाथ ही नाव दिराया।
भूरी जटा धर सिर पर बानों, पगे खडाऊ दरसण मानो।
निरमळ ग्यान सो दियो छै थानो, सबद सिद्धां रा सही कर मानों।
गुरु चेलो मिल कतरियासर आया, धोरै कतरियासर रै पांव धराया।
गुरु चेलैरै हरख सवाया, धरम सनातन गोरख फरमाया।
भगवी टोपी छै काळो जी धागो, सत गुरु देव रै पाये जी लागो।
साधु सता री आहि सैनाणी, आदि ज्युगाद जोगी निरवाणी।
शिव पारवती गणपत नै ध्याया, सुरनर देवता सुरगां सै आया।

आदेस करुं गुरुदेवकूं, तांकूं नित परनाम।
सतगुरु के सरणागते, सदा परम निज धाम।
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वर।
गुरुदेव परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नम।
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्ज शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितयेन तस्मै श्री गुरुवे नम।
ध्यानमूल गुरोर्मूर्ति पूजामूल गुरो पद।
मत्ररूप गुरोवाक्य मोक्षमूल गुरो कृपा।

(१) 'शब्द का अभिप्राय 'वेद' से ही है, तथापि वेदो का रहस्य जो शास्त्र पुराण और सन्त-वचन बतलाते हैं उनका भी समावेश इस 'शब्द' में हो जाता है। अर्थात् 'शब्द' से वेद, शास्त्र, पुराण, सन्त-वचन, भव बन्ध-मोचक शब्द साहित्य मात्र ग्रहण करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि शब्द का आश्रय किये विना जीव को स्वहित का मार्ग मिलना दुर्घट है। इस पवित्र शब्द-साहित्य से जीव को प्रवृत्ति निवृत्ति, विधि निषेध, बन्ध मोक्ष का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है और अपने मूल का पता लगता है।

गुरु-समर्पण कर दिया तत्पश्चात् प्रसाद-रूप से गुरु-शिष्य ने मिल कर भोजन किया। गुरु गोरखनाथजी के कमण्डलु में जो पानी था वह गुरु गोरखनाथ ने जसवन्त को शिष्य बनाकर पिलाया।

समस्त सामर्थ्य से युक्त गुरु गोरखनाथ ने बालक जसवन्त का योगपट (नाम) जसनाथ रखा। जैसा सवाईदासजी ने अपने जलमझूलरा' में उल्लेख किया है—

'गिरै त्याग गिरवर नै चाल्या, जसवन्त 'नाथ' कहावै'।

किम्वदन्ति है कि गुरु गोरखनाथ ने जसवन्त के कानों पर करद (छूरी) भी चलाई थी, कहते है जसवन्त के कानों में रक्त न बहकर दूध की धारा निकली तथा जसवन्त के कानों पर छूरी का कोई असर नहीं हुआ। गुरु गोरखनाथ ने इस चमत्कृति को देख कर बालक जसवन्त को और भी अनेकानेक सिद्धि-युक्त होने का वरदान दिया।

गुरु गोरखनाथ तथा शिष्य जसनाथ ने भागथली में बैठकर आध्यात्मिक एवं धर्म के विषय में चर्चा की। जसनाथजी ने गुरु गोरखनाथजी से प्रार्थना की— 'महाराज ! मरुस्थल भूमि को पवित्र करने के हित ही आपका शुभागमन हुआ है, अत: कृपा कर कतरियासर पधारिये।' शिष्य की सादर विनय सुन कर गुरु गोरखनाथजी जसनाथजी के साथ कतरियासर ग्राम की ओर अग्रसर हुए तथा वर्त्तमान में जो श्री जसनाथजी की बाड़ी एवं गोरखमालिये का स्थान है, वहां तक आए। जैसा जियोजी सांखला ने कहा है—

'गुरु अर चेला रळमळ चाल्या, नगर नेड़ै रै आया'।

अर्थात् गुरु और शिष्य दोनों मिल कर साथ साथ कतरियासर के पास जो धोरा है, वहा तक आये।

गोरखमालिये की स्थापना—

श्री जसनाथजी ने पूज्यपाद गुरु गोरखनाथजी की आज्ञा एवं आशीर्वाद पाकर, वहाँ अपना अडिग आसन जमा लिया। सिद्धेश्वर श्री जसनाथजी के हाथ में जो जाळ वृक्ष की टहनी (छड़ी) थी, उसको जमीन में गाड़ कर पल्लवित की, जो आज लता वृक्ष की भाँति फैल कर बाड़ी के अनेकों

मयुरादि पक्षियों को अपने शीतल सुखद वक्षस्थल में स्थान दे रही है तथा बीते युग का पांचसौ वर्ष पुराना इतिहास बता रही है। गया के 'बोद्धि वृक्ष' की भाँति कतरियासर के गोरखमाळिये की यह 'जाळ' (पीलू) समस्त जसनाथी समाज के लिए परम पवित्र दर्शनीय वृक्ष है।

गोरखमाळिया श्री गुरु गोरखनाथजी के चरण-चिह्नों का स्मृति-स्थान है। भागथळी से गुरु गोरखनाथजी जसनाथजी के विशेषानुग्रह से यहाँ तक पधारने की कृपा की थी तथा जसनाथजी को अपने लक्ष्यप्राप्ति एवं तपः साधना के लिए इस स्थान को उपयोगी बताया था। इसीलिए 'जसनाथी-साहित्य' में अनेकों जगह 'धरा-धाम' कहकर इसकी प्रशंसा की गई है—

"धिन बाड़ी धिन देवरा, धिन आसण धिन जाळ।
धिन'स धियाड़ो धरतरी, बैठा जहँ किरतार।"

पुण्यभूमि गोरखमाळिये की महत्ता अनिवर्चनीय है। पांचसौ वर्ष पश्चात् आज भी उस 'स्थान' के दर्शनार्थ वर्ष भर में तीन बार लाखों लोगों का आगमन प्रत्यागमन होता रहता है। 'कतरियासर कळऊपन्यो रम्यो'ज कवल्यो कान। जाळ बगीची देवरा, छेतर किया धाम'। अर्थात् कतरियासर में तो स्वयं श्रीकृष्ण निष्कलक भगवान् जसनाथजी के रूप में लीला कर गए हैं, इसी के परिणामस्वरूप कहा है— 'गुरु दुवारो सेवँताँ जाणे गंगा को न्हाण' फिर इस गुरु-द्वारे से बढकर दूसरा पवित्र तीर्थ और कौन हो सकता है?

'मार पलाथी तपस्या बैठा, सूरज सूँ लिव लाया' जियोजी के 'जलमझूलरा' की इस पक्ति से भी यही आशय निकलता है तथा यही आशय लालनाथजी के 'जलमझूलरा' की इस पंक्ति से है—

'मार पलाथी तपस्या बैठा, जाप जप्यो वाँ ओंकार'।

श्री जसनाथजी ने इसी स्थान पर बैठ कर, ॐ का अनादि जाप जपना प्रारंभ कर दिया।

सद्गुरु श्री गोरखनाथ ने श्री जसनाथजी को संसार हित के लिए अनेकों निर्देश दिये। यशोनाथ पुराण में लिखा है— कि गुरु गोरखनाथ ने

श्री जसनाथजी को भगवान् शंकर की भक्ति[1] करने का विशेष रूप से आदेश दिया था। श्री जसनाथजी ने अपने गुरु की समस्त आज्ञाओं को शिरोधार्य किया एवं इसी स्थान पर पद्मासन लगा कर बैठ गये।

हमीरजी ने जिन व्यक्तियों को श्री जसनाथजी को वापिस लौटाने के लिए भागथळी की ओर भेजा था, वापिस लौटते समय इन व्यक्तियों को श्री जसनाथजी इस टीबे पर बैठे हुए दिखाई दिये। उन्होंने देखा कि श्री जसनाथजी ध्यानावस्थित यौगिक निगूढ़ मुद्रा में बैठे हैं। उन्हे अपार आश्चर्य हुआ। उन्होंने गाँव में आकर हमीर जी को यह सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

लालनाथजी ने अपने "जलमझूलरा" में कहा है—

"मात पिता कळपै दुःख पावै, सोच करै सारो परिवार।
थे तो बाळक भोजन जीमो, लाडू, पेड़ा, खीर, खसार।"

यशोनाथ पुराण में उल्लेख है—

"खबर परत हमीर सु आया, जसवन्त जोग की सचिद्र पाया।
कौन योगी तुमको भरमाया, घर सब त्याग बनवास पठाया।
माखन जिमायो प्रेम सूं, बाळपणै कै मांय।
अब बनवासी हो गये, माता पिता बिसराय॥"

---

(१) शिव भक्ति बिन कोय न तारे, व्रत तीरथ नर फिर फिर हारे।
जहँ तक शिवजी कृपा न कराई, तहँ तक नरक वास भुगताई॥
शिव-कृपा अधम तिर जावैं, शिव शिव करत परम पद पावैं।
गर्भवास पुनि कोई न आवैं, सायुज्य मोक्ष सोहि नर पावैं॥
शंकर पूजन राम कराई, थाप रामेश्वर सेतु बंधाई।
रावण मार विभीषण थाई, शिव-प्रताप सीता घर आई॥
शिव कल्याण रूप नित भाई, सरणागति सुख देत महाई।
यति, सति, सिद्ध, साधक गाई, ताके चरण पूज सुभदाई॥
शिव मन भक्ति सुं गोरख गावै, गुरु परताप परमपद पावै।
श्री गुरु गोरखनाथ सुणावै, श्री जसनाथ सदा गुण गावै॥
वाणी श्री गुरुनाथ की, भाखन्ते जसनाथ।
श्री गुरु गोरखनाथजी, धरया सीस पै हाथ॥
(यशोनाथपुराण, पृ० ३१)

हमीरजी के एकमात्र पुत्र के विरक्त हो जाने के कारण उनके हृदय पर वड़ा आघात हुआ। वे अधीर और व्याकुल मानस से जसनाथजी के पास आये तथा उनसे घर चलने का अनुरोध किया।

इस पर श्री जसनाथजी ने ससार की असारता को दर्शाते हुए कहा—

"मिलत गुरू मम ज्ञान लखाया, जगत तणा सुख दाय न आया।
ब्रह्म सदासुख रूप सुहाया, ये सत वायक नाथ सुनाया ॥
जगत् विषय सुख भोगवै, खर, सूकर, अरु श्वान।
भगति करो भगवान की, वृथा खोय मति प्रान ॥"

परन्तु मोह-ममत्व में लिप्त सांसारिक प्राणी पर, भक्ति-भाव से परिपूर्ण उक्त कथन का क्या प्रभाव पड़ सकता था ?

"कहत हमीर बहुत दु ख दीना, वृद्ध पिता सुत योग सु लीना।
सुत घर त्याग गया बन जोई, चूक रया भगति मम कोई ॥"
कहत हमीर सुन लीजिये, वृद्ध पिता मत छोड़।
वचन पिता का मानिये, सतगुरु को कर जोड़ ॥"

इसी प्रकार माता पिता तथा स्वजनों ने श्री जसनाथजी को अनेक प्रकार से घर चलने के लिए विनम्र विनय की, पर उनको जिनके अंतस् में वैराग्य और भक्ति-भाव हिलोरे ले रहा था- यह गार्हस्थ्य-जीवन कब पसंद था ? वे तो धरा के भार को हटाने के लिए ही इस नाशमान जगत में प्रादुर्भूत हुए थे। परम पिता परमात्मा ने उन्हें सासारिकता के चगुल मे बद्ध प्राणियों की मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए ही भेजा था। फिर वे इस दुख मूलक और क्षणिक भोग-सुख में अपने उच्च जीवन को कैसे भरमाते ? उनकी दृष्टि अपने लक्ष्य पर टिकी थी। उस लक्ष्य तक कौनसी राह से पहुँच होगी ? इसका उन्हें पूर्ण ज्ञान था। वे आगे बढे। सफलता उनके सम्मुख नत होकर आई।

श्री जसनाथजी ने पिता से कहा—

"सुरग लोक सुख नाश दिखाई, गजदत मुख में फेर न जाई।
दूध पलट दही होय जावै, दही को दूध फेर नहीं पावै ॥"

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की आध्यात्मिक युक्तियों के सामने हमीरजी की एक न चली।

लालनाथजी ने अपने "जलमझूलरा" में कहा है—

"लेय विसन्नर होमरा बैठा, घिरत मंगायो देव दुवार।
विरमा जाप जप्या जुग जूना, सुरग मंडल में गई महकार।
सुर तेतीसूं हुया सुवाया, सुरपत इन्दर मेघ मलार।
पांच'स पाण्डु दस दिगपाळा सिध चोरासी दस ओतार।
धरती धवळ शेस रिख वासक, साध सती को अन्त न पार।
नव नाथाँ गुरु गोरख आया, नाद बजायो ओंकार॥"

श्री जसनाथजी ने गुरु-पद-चिह्नों पर संस्थापित गोरखमाळिये पर यज्ञ आरंभ कर दिया। उस यज्ञ की मोहक सुरभि से, स्वर्गस्थ समस्त देवतागण संतुष्ठ हुए।

ग्रामाधिपति हमीरजी के अलौकिक शक्ति से युक्त पुत्र के वैराग्य धारण करने का समाचार मरुधर की चारों दिशाओं में फैल गया। अनेकानेक ज्ञान-पिपासु जन सिद्धाचार्य के दर्शनार्थ एवं उनकी अमृतमयी वाणी का रसास्वादन करने के लिए गोरखमाळिये पर आने लगे।

चोखनाथजी ने अपने "जलमझूलरा" में लिखा है—

"बैठा 'गोरखमाळिये' झळकन्ते दीदार,
तिलक चन्दरमा झळके शीस मुकट गंगधार।
सदा हजूरी देवरी पाडु पोळ दुवार।"

मर्यादासजी ने लिखा है—

"सो जुग आवै, सीस निवावै, पूजा देव चढावै।"

हारोजी का आगमन—

जियोजी ने अपने "जलमझूलरा" में लिखा है—

"थसलू नूं सिद्ध हरमल हुआ, सेव गुराँ री आया।
हरमल हर री सेवा कीनी, पार गुराँ रा पाया।"

चोखनाथजी ने ऐसा प्रकट किया है—

"हरमल पंड सरधेनो, कीती पोहन च्यार।"

"जलमझूलरों" तथा "सवदों" (पद्यों) में हारोजी का नामोल्लेख अनेकों स्थलों में हुआ है। निश्चयात्मक रूप से यह तो नहीं कहा जा सकता कि सर्व प्रथम हारोजी ने ही सिद्धाचार्य की सेवामें उपस्थित होकर शिष्यत्व ग्रहण किया हो। किन्तु सिद्धाचार्य के अन्य शिष्यों का "सवदों, में नाम नहीं आता, अतः ऐसी मान्यता रखना उचित ही है कि हारोजी सिद्धाचार्य के प्रथम शिष्य थे।

हरमल कठ सरेवॅतॉ, बीती पोह न च्यार, अर्थात् हारोजी को गले लगाने में चार पहर का समय भी न लगा। यदि इस पंक्ति का यही उचित आशय है तव तो हारोजी ही सिद्धाचार्य के प्रथम-शिष्य सिद्ध होते हैं।

हारोजी का जन्म वि० सं० १५३० को बमलू ग्राम में उदोजी कूकणा (जाट) के घर हुआ था। हारोजी अपने भाइयों में सबसे छोटे थे। प्रकृति-स्वभाव से नितांत सरल होने के कारण घर वालों ने हारोजी को 'रेवड़' चराने का काम सौंपा। गाँवों में प्राय देखा जाता है कि जो लड़का भोलापन लिए हुए होता है उसे अधिकतर पशु, ढोर या रेवड़ चराने का कार्य सौंपा जाता है।

सिद्धाचार्य की पुण्यभूमि कतरियासर से हारोजी की जन्म भूमि बमलू केवल चार कोस ही है। हारोजी प्राय कतरियासर की तरफ ही अपने रेवड़ को चराने ले जाते थे। यदा कदा वे गोरखमाळिये के समीप भी आ जाते तो श्री जसनाथजी के पुण्य-दर्शन कर लेते। तपस्या में लीन देख उन्हें विस्मय होता। उनके मन पर अजीब-सी हरकत होती। वे अपने रेवड़ चराने के विचार से दूर हो कर, सिद्धाचार्य के पास बैठ जाते। एक अपूर्व शान्ति और सुख की अनुभूति उन्हे होती। धीरे धीरे हारोजी का विस्मय तपस्वी श्री जसनाथजी के प्रभाव से श्रद्धा में परिणित हो गया। सिद्धाचार्य भी हारोजी को उपदेश का सुयोग्य अधिकारी जानकर, कल्याणप्राप्ति का उपदेश देने लगे। समय के आगे बढने वाले हर कदम के साथ दोनों मे गुरु-शिष्य का पावन नाता सुदृढ होने लगा। शान्ति और सुख के इस वातावरण में रह कर भी हारोजी के मुख पर चिंता की एक मलीन रेखा खिंची रहती थी। सिद्धाचार्य ने एक दिन हारोजी से इस अकुलाहट का कारण पूछ ही तो लिया।

हारोजी ने पूर्ण-भक्ति भाव से नम्र होकर कहा—"महाराज ! मैं आपके उपदेशामृत को सुनने के लिए बड़ा लालायित रहता हूँ। मैं आपसे भिन्न हो कर सुखी नहीं हो पाता। क्या करूं ! मुझे रेवड़ की चिन्ता हर वक्त डसे रहती है। बिना रखवाली के रेवड़ को हिंसक जानवरों के मार कर खा जाने का भय रहता है। रेवड़ भी चरता-चरता बड़ी दूर में फैल जाता है, जिससे बाद में मुझे उसे एकत्रित करने मे काफी कठिनाई उठानी पड़ती है।"

हारोजी की परेशानी को सिद्धाचार्य भली भाँति समझ गए। उन्होंने हारोजी से कहा— "हरमल ! 'गुरु' का नाम लेकर, जितनी दूरी में चाहो रेवड़ के चारों ओर 'कार' लगा दिया करो। फिर रेवड़ उस परिधि को लांघकर कहीं भी न जा सकेगा, और न कोई हिंसक पशु ही उसमें प्रवेश कर रेवड की हानी कर पायेगा।"

महाराज की इस युक्ति ने हारोजी की बांछे खिलादी। अंधे को क्या चाहिए? दो आंखे ! यह चिन्ता उनकी दिनचर्या की एक अंग बन गई। वे 'कार' लगाकर रेवड़ को जंगल में सूना छोड़ देते, एवं स्वयं सिद्धाचार्य के उपदेश-श्रवण के साथ ही उनकी सेवामें रत रहने लगे। उनका यह क्रम एक लम्बे अर्से तक चला। उनके पवित्र मानस-पटल पर वैराग्य और भक्ति-भाव की लकीरें उज्ज्वल होकर उभार पाने लगी।

प्रकृति की बनावट कुछ ऐसी है कि जब कोई पवित्र कार्य का समारभ होता है तो वह उसमें उसकी परीक्षार्थ बाधाएं डालने का श्री गणेश करती है। अपनी चिर-परिचित यह आदत उस ने हारोजी के साथ भी बरती।

हारोजी के साथ कुछ अन्य गवाले भी रहते थे। उन्हें इस बात से बड़ा आश्चर्य हुआ कि हारोजी रोज रोज ही रेवड़ को जंगल में सूना छोड़ किधर सरक जाता है? यदि कभी रेवड़ को कोई जंगली जानवर खा गया तो उदोजी का बड़ा नुकसान होगा ! इस मे हारोजी का क्या बिगड़ेगा? बड़ा मूर्ख है। यह विचार कर सभी ने एक दिन चुपचाप वह कहां जाता? क्या करता है? सब जान लिया। ये सब समाचार उदोजी से जाकर कह सुनाए।

हारोजी के पिता उदोजी ने हरमल की सब गतिविधि जान कर बड़े

व्यथित हुए। पर उन्हें एकाएक अपने पुत्र की बातों पर विश्वास न हुआ। स्वयं ने गुप्त रूप से इस विषय में छानबीन की तो गवालों की एकएक बात सत्य थी। अब उनके मन में विचार उठा— "हरमल को रेवड़ चराने के कार्य से हटा लेने में ही भला है। सभव है उसके भोले मन में हमीरजी के लड़के के संसर्ग से घर छोड़ने की धुन न समाजाये। क्योंकि हरमल बाल-बच्चेदार है।"

उदोजी ने यथाशीघ्र हारोजी को रेवड़ से हटा कर गृहकार्य में लगा दिया, तथा खुद उस पर कड़ी निगरानी रखने लगे। हारोजी को यह बधन बड़ा अखरता था। पर करते भी क्या? उनकी बड़े भाइयों व पूजनीय पिता के सम्मुख एक भी न चलती थी। चूंकि उनके भाइयों व पिताजी को जैसा कि पहले भी वर्णन हो चुका है— जसनाथजी से तनिक भी संपर्क रखना खटकता था। विवश होकर हारोजी को अपने मन में भक्ति और वैराग्य की अनुरक्ति के उमड़ते भावों को अवरुद्ध करना पड़ा। संसार के विषाक्त बांधको वे तोड़ने को आकुल थे पर अज्ञात शक्ति ने कुछ समय के लिए यह कार्य रोक दिया। सिद्धाचार्य में हारोजी की श्रद्धा-भक्ति से परिचित बमलू ग्राम तो था ही कतरियासर के निवासी भी पूर्ण परिचित थे।

एक दिन हारोजी की बारी, अपने ग्राम का कूआ जोतने की आई। रात भर कूआ जोत कर पानी निकालने में लगे थे। हारोजी कीली[1] निकालने का कार्य कर रहे थे।

हारोजी "लाव" को जोत कर सारण में जा रहे थे। जब वे सारण के ठीक मध्य में पहुँचे, उसी वक्त दैवात् कतरियासर की ओर से आने वाले कतारियों ने ऊँची व्यग्यात्मक आवाज में पुकार कर कहा— "हरमल! तुम्हें नाथजी ने इसी समय कतरियासर के गोरखमाळिये पर बुलाया है।"

कतारियों की इस व्यगमय उक्ति के द्वारा अज्ञात शक्ति ने हारोजी की मनोकामना पूर्ण करने की ठानी। उन्होंने आव देखा न ताव, बीच में ही 'कीली' निकाल कर, कतरियासर की ओर द्रुतगति से दौड़े। इधर बीच में

(१) लाव को बैलो के जुए से सयुक्त करने के लिए लकड़ी की चिकनी नोकदार कील।

ही जब हारोजी ने कीली निकाल दी, तो जल से भरा हुआ चड़स कूए में जा गिरा। चड़स के इस तरह कूए मे अकस्मात् गिरते ही बहुत जोर से धमाके की ध्वनि हुई। जिसे सुन कर गाँव के तमाम लोग कूए पर एकत्रित हो गये।

जसनाथी सिद्धों में यही कथा निम्नाङ्कित रूप से भी प्रचलित है—
"हारोजी श्री जसनाथजी के निर्देशानुसार एक दिन 'रेवड़' के "कार" (सीमा-रेखा) लगाना भूल गये और आप सिद्धाचार्य के पास सत्संग-लाभ के लिए बैठे रहे। कुछ समय बाद जब उनको रेवड़ का स्मरण हुआ, 'कार' न लगाने की बात याद आई, तो वे सिद्धाचार्य के सत्संग से बीच ही मे चिंतित मुद्रा से उठ कर रेवड़ की ओर चल पड़े। रेवड़ उन्हें अपने स्थान पर न मिला। तब रेवड के पद-चिह्नों के आधार पर गाँव की ओर गया देख, वे भी उस ओर दौड़े। किन्तु तब तक रेवड़ बमलू ग्राम के कूए पर पहुँच चुका था। हारोजी के पिता उदोजी को इस प्रकार रेवड को सूना देख कर बड़ा क्षोभ हुआ। कुछ देर बाद जब हारोजी वहाँ क्लान्त मन से दौड़ते हुए पहुँचे, तो उदोजी ने क्रोध से उनके सिर पर दो धोबे (अंजलि) धूल डाली तथा 'लाव' के तने (पोछड़ी) से उनकी पीठ मे भला-बुरा कहते हुए जोर से मारी। इस तरह हारोजी अपने पिता द्वारा तिरस्कृत व दण्डित होने पर बड़े लज्जित हुए और बिना कुछ बोले वे कतरियासर की ओर भाग चले।"

हारोजी को कतरियासर की ओर इस प्रकार दौड़ते देख कर उदोजी को अपने पुत्र के प्रति श्री जसनाथजी की ओर खिंचाव की बातों पर विश्वास हो आया और वे एक साथ उन दोनों (हारोजी व श्री जसनाथजी) पर क्रुद्ध हुए और बोले—

"हरमल के परिवर्तन का मूलकारण यह कतरियासर के हमीरजी का बेटा है। जिसे हमीरजी ने बड़े लाड-चाव से पाला, पोषा, बड़ा किया था। वह अब अपने जादू के करिश्मों से सबको वश में किये हुए है। बेचारे हमीरजी की सारी मधुर आशाओं पर पानी फेर रहा है और अब हरमल को भी अपने ही रंग में रंगकर मेरे घर को डुबाना चाहता है। किन्तु नहीं। मैं ऐसा नहीं होने दूंगा, मैं अभी इसी समय उसका इलाज करता हूं।" इतना कह कर

उदोजी उसी समय आवेश में एक बडा मा लट्ठ लेकर, अपने कुछ ग्राम-वासियों के साथ कतरियासर की ओर रवाना हो गये। कतरियासर बमलू से चार कोस की दूरी पर होने से उन्हे वहाँ पहुँचने मे अधिक समय नहीं लगा होगा ?

हारोजी ने गोरखमाळिये पर पहुँचते ही महाराज को "ओ३म् नमो आदेश" कह कर अभिवादन किया। सिद्धेश्वर ने हारोजी को निर्भयात्मक आशीर्वाद दिया।

हारोजी आज उल्लास के अथाह सागर में तैर रहे थे। उनकी मनो-कामनाएँ पूर्णसिद्धि पाने को उतावली हो रही थी। उनका जीवन सार्थकता की ओर क्रमश अग्रसर होने लगता था। मनकी वृत्तियाँ ससार से उदास हो गई। हारोजी स्वेच्छा से अनायास एक अज्ञात आकर्षण की तरह सिद्धेश्वर के चरणकमलों मे आ गिरे। उनकी आँखों मे कुछ था तो केवल श्री जसनाथजी की कमनीय मुस्कुराती प्रतिमा। अनिष्ट को विस्मृति के गहनान्धकार में डाल कर वे इष्ट की पावन प्राप्ति चाहते थे।

हारोजी के वहाँ पहुँचने के कुछ ही समय बाद कोलाहल के साथ कुछ व्यक्ति गोरखमाळिये की ओर आ रहे थे। वे 'ढळान्त" (उतार) मे होने के कारण स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे। लोगों की गुनगुनाहट को सुन कर सिद्धाचार्य ने कहा— "कौन है ?"

उदोजी ने कहा— "मैं हूँ उदा।"

सिद्धेश्वर ने कहा—"उदा! हो जा सीधा।"

ऐसा कहने के साथ ही उदोजी जो वृद्धावस्था के कारण कमर से झुक गये थे, सीधे हो गये। एव हारोजी के इधर दौड़ आने के कारण उनके मन में जो क्रोधोन्माद व्याप्त हो रहा था, वह सिद्धाचार्य के इस चमत्कार से विल्कुल शान्त हो गया। अब वे तन, मन दोनों से विल्कुल सीधे हो गये। पूर्ण प्रभावित होकर वे अपने आप श्री जसनाथजी की ओर झुक गये और बोले—"महाराज! मैंने आपके प्रति दुर्भावना रखकर ऐसा कार्य किया है।"

उदोजी की ये बातें सुन कर सिद्धेश्वर बोले ' उदोजी, आपने जो कुछ किया, मैं उसको भुगत चुका हूँ।' ऐसा कहकर उन्होंने अपने सिर के केश दिखाये "जिनमें धूल पड़ी थी।" पीठ दिखाई ' जिस पर चोट के निशान थे।" देखकर उदोजी अचंभित हुए और हारोजी तथा श्री जसनाथजी की एकात्मता पर उन्हें महान् आश्चर्य हुआ और उनके मन में एक प्रकार की पीड़ा होने लगी। वे आँखों में आँसू भर कर बोले—

"मैं आज तक आपकी इस अतुलनीय सिद्धि और महिमा का आभास न पा सका था। अन्यथा मैं मेरे मन को दूषित न होने देता। यह पुत्र मैं अपनी ओर से भी आपकी सेवामें समर्पण करता हूँ।"

सिद्धाचार्य ने कहा— "उदोजी! आप व्यथित न हों। यह हरमल तो राम सेवक हनुमान की तरह सदैव मेरे साथ रहने वाला मेरा सेवक—शिष्य है। अच्छे पुण्य-प्रताप से इसने आपके घर में जन्म लिया है।"

उदोजी मन में अभिमान की कलङ्कित भावना लेकर कतरियासर गये थे। पुण्य-भूमि गोरख-माळिये के निकट पहुँचते पहुँचते उनके मन पर पावनता अङ्कित होने लगी। यह है एक विलक्षण योगी का प्रभाव! पारस के स्पर्शमात्र से नगण्य धातु लोह अपने कुरूप को छोड़ कर बहुमूल्य स्वर्ण बन जाता है। इसी तरह सिद्ध-पुरुषों के प्रभाव मात्र से ही कुटिल जीव सत्-प्राणी होकर अपने जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति करले तो क्या आश्चर्य ?

सब दोषों को भूल कर उदोजी ने महाराज की शरण में अपने पुत्र को समर्पित कर, स्वयं भी सदैव के लिए सिद्धेश्वर के सेवक बन गये।

हारोजी को सिद्धेश्वर ने नियमानुसार योग-दीक्षा दी। "सत्य शब्द" को सुनकर अब हारोजी "कीट" से "भ्रमर" बन गये। एक परिवार की परिधि में सीमित न रहकर सारे संसार के हो गये।

उदोजी की कमर का कुबड़ापन दूर हो गया, यह चमलू ग्राम के सभी व्यक्तियों ने देखा। वे बड़े प्रभावित हुए। चमलू ग्राम का सब परिवार एक ही दादा की संतान होने के कारण 'जसनाथी' बन गया।

जियोजी को तत्त्वज्ञान—

जियोजी ब्राह्मण की चर्चा "जसनाथी-साहित्य-सबदां" (पद्यों) में कई बार आती है। इन 'सबदों' के अध्ययन से विदित होता है कि स्वयं श्री जसनाथजी ने इस विद्वान् ब्राह्मण को 'सबदों' द्वारा जगत् पिता परमेश्वर की प्राप्ति का आध्यात्मिक मार्ग बताया था।

जियोजी के विषय मे सिद्धाचार्य के प्रथम-दर्शन की कथा "जसनाथ-सम्प्रदाय" में इस प्रकार प्रचलित है—

"एक बार जियोजी अपने ग्राम लालमदेसर से किसी वैवाहिक कार्य के लिये काळू ग्राम जारहे थे। कतरियासर रास्ते में पडता था। चलते २ जब वे कतरियासर आये तो उन्हें प्यास लगी। उन्होंने पानी के लिये किसी से कहा— लोगों ने उन्हें ग्राम से उत्तर दिशा की ओर स्थित 'आसण' (आश्रम) में जाने की सलाह दी और कहा— "महाराज! आपको वहीं उपादेय पवित्र जल मिल सकेगा।"

जियोजी उस "आसण" की ओर चले। आसण परिधि में प्रवेश करते ही उनकी मानसिकवृत्तियों पर विस्मयकारी प्रभाव होने लगा। जिसे उन्होंने अपने जीवन में प्रथम बार अनुभव किया। लोक-जीवन में रमी हुई अभिलाषाओं के मध्य, आध्यात्मिक भावनाओ का उदय होते देख, उनका मायानिष्ठ विश्वास विचलित होने लगा। वे गोरखमाळिये की ओर बढ़ ही रहे थे कि उनकी दृष्टि सहसा उपर उठी और उन्होंने ठीक सामने एक दिव्य आभा से परिपूर्ण मुख-मण्डल वाले ऋषिरूप बालक को पद्मासन से आसीन देखा।

विद्वान् जियोजी को यह निश्चय करते हुए अधिक समय न लगा कि यह दर्शनीय महान्-विभूति अवश्य ही ईश्वर द्वारा लोक-कल्याणार्थ प्रेरित

---

(१) यह ग्राम बीकानेर से दक्षिण पश्चिम में है। इसको 'मगरेवाल लालमदेसर' भी कहते है। इस ग्राम में जसनाथजी की वाड़ी भी है।

एवं प्रेषित है। इनका किन शब्दों द्वारा अभिवादन करना चाहिए? इन्हीं विचारों में उलझे जियोजी श्री जसनाथजी के समीप पहुँच गये। स्वतः ही जियोजी के मुख से अभिवादनार्थ "आदेश" शब्द निकल पड़ा।

सिद्धाचार्य ने प्रत्युत्तर में कहा—"आदेश! आदेश!!"

जियोजी आनन्द विभोर मुद्रा में विनीत भाव से सिद्धेश्वर के निकट जाकर बैठ गये। वे मन ही मन कहने लगे—"मेरे मुख से तो स्वतः ही स्वाभाविकरूप से "आदेश" शब्द निकल गया था, परन्तु सिद्धेश्वर ने "आदेश! आदेश!!" दो बार क्यों कहा? मैं तो गृहस्थी हूँ, मुझे प्रत्युत्तर में 'आदेश' कहने की आवश्यकता तो न थी।"

जियोजी की इस मौन शंका को श्री जसनाथजी ने समझ लिया और कहा—

"हे जिया। आत्मदृष्टि से सभी ब्रह्म हैं। ब्रह्म-भाव से गुरु और शिष्य में कोई भेद नहीं। शिष्य ब्रह्म-रूप से ही गुरु को "आदेश" कह कर उसके महत्व को स्वीकार करता है, इसी प्रकार शिष्य भी ब्रह्म-स्वरूप है, तो फिर गुरु भी शिष्य को ब्रह्म मानने में क्यों हिचकिचाये? यही "आदेश" का अर्थ है।"

---

(१) आत्मेति परमात्मेति जीवात्मेति विचारन—
त्रयाणामेक सभूति रादेश. परिकीर्तित. ॥
(सिद्ध-सिद्धान्त पद्धति)

जोगी हुवै सो जुग से न्यारा, पांचू इन्द्री घट में मारा।
रूप रंग जिसमें नहीं जोगी, जिसका नाम कहिये जोगी ॥
ब्रह्म तत्व के रूप नहीं रेख, बोलण हारा आप अलेख।
आओ माता पारवती, आदेश, आदेश !!

गोरख— स्वामी आदेस का कौन उपदेस, मुनि का पद वास।
सबद का कौन गुरु, पूछंत गोरखनाथ ॥

मच्छिन्द्र:— अवधू आदेस का अनुपम उपदेस, मुनि का निरतर वास।
सबद का परचा गुर, कथंत मछिन्द्रनाथ ॥
(डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोरख बानी, पृ० १८७)

जियोजी गद्‌गद्‌ होकर, मनही-मन सिद्धेश्वर का यशोगान करने लगे–

"मेरे मुँह से जो शब्द बिना विचारे स्वतः ही अभिवादन स्वरूप निकला, तथा जिसका अर्थ समझने में शंका उठी। मेरे मन की शका का आभास सिद्धेश्वर को स्वत ही होगया, एव विना पूछे ही मेरे नामसे संबोधन कर दिया। करते क्यों नहीं ? ये त्रिकालज्ञ ब्रह्म–महर्षि हैं। मेरे धन्य-भाग्य हैं। मैं इनके दर्शन पाकर कृतकृत्य होगया। बिना पूर्व जन्म के शुभ सस्कारो के अचानक ही ऐसे "युक्त-योगी" महात्मा के दर्शन दुर्लभ हैं।"

सच्ची आत्मानुभूति–पूरित ज्ञान-वर्षा से जियोजी का दैहिक तथा मानसिक सन्ताप तो शांत होगया। परतु अभी आध्यात्मिक चाह की पूर्ति शेष थी।

सिद्धाचार्य ने जियोजी के साथ स्नेह-सिंचित वार्तालाप किया। प्रसगवश जियोजी ने इधर आने एवं काळू ग्राम की यात्रा का कारण भी कह सुनाया।

सिद्धाचार्य ने कहा—"जियोजी ! आप जिसके विवाह का लग्न ले जारहे हैं, वह लग्न अच्छी तरह से फलादेश करके तो निकाला गया है न ? उसमें कोई दोष[1] तो नहीं ?

जियोजी ने "मेरी दृष्टि में तो कोई दोष नहीं है" कहकर उत्तर दिया। तत्पश्चात् जियोजी महाराज से आज्ञा लेकर, कालू ग्राम के लिए चल पड़े। चलते समय जियोजी से श्री जसनाथजी ने कहा— 'इस लग्न में गड़बड़ है' काळू से लौटते समय इधर होकर ही जाना ?

सिद्धेश्वर की चेतावनी से जियोजी का मन यद्यपि अज्ञात आशका से काँप उठा, किंतु उन्हें उस लग्न में कोई भूल नहीं दीख रही थी। पूर्ण विश्वास

(१) लग्न के दश दोष– १- लात, २- पात, ३- युति, ४- वेध, ५ यामित्र, ६- वृद्धपचक, ७- एकार्गल, ८- उपग्रह, ९ क्रान्ति साम्य, १०- दग्धा-तिथि।

(२) सभव है इस लग्न में वेध दोष था।

के साथ उन्होंने सिद्धेश्वर की चेतावनी को अपने मन से निकालने की चेष्टा की, फिर भी उनके मन में असमंजसता ने घर कर लिया और वे इसी उधेड़बुन में काळू ग्राम की ओर चल दिये।

जियोजी जब काळू ग्राम से एक कोस इधर ही थे, तब उन्होंने गाँव के ग्वालों से गाँव का कुशल-मंगल पूछा। उत्तर में गाँव वालों ने कहा—

'महाराज! और तो सब कुशल-मंगल है, किन्तु रूपाराम चौधरी के लड़के का, जिसका विवाह होने वाला था, देहान्त होगया।"

यह सुनते ही जियोजी मानो आकाश से धरती पर आ गिरे। सिद्धाचार्य की चेतावनी उन्हें बारम्बार स्मरण होने लगी। यजमान-पुत्र की मृत्यु से उन्हें बड़ा शोक हुआ। शोक-सागर में डुबकियां लेते हुए जियोजी ग्राम तक गोरखमाळिये वापिस पहुँचे। वे काळूग्राम न जा सके।

शोक-संतप्त खिन्न-मना जियोजी को जब सिद्धाचार्य ने देखा तो कहा— "जियोजी! यह नाशमान जगत अपने प्रारब्ध संस्कारों से बनता एवं बिगड़ता है। जरा इस बात को गहराई में जाकर सोचो, समझो!" लेकिन जियोजी के अन्तःस्थल में यजमान-पुत्र की मृत्यु के कारण हुई आघात की पीड़ा मिट न सकी। उनकी हालत पूर्ववत ही रही।

श्री जसनाथजी ने जियोजी को इस गम्भीर हालत से उबारने के लिए "सबदों"[1] में उपदेश दिया—

धरती इन्द सिरो जुड़ायो, नित लग नेह सनेहा।
अमी मंडळ में बाजा बाजें बरस सबाया मेहा।
इन्दर बरसै धरती सौसे, ऊँडा बेसैं तेहा।
धरती माता सरब सन्तोखै, रूप छतीसों गेहा।

सदैव स्नेह में रहने वाले धरती और इन्द्र का ही श्रेष्ठ जोड़ा है। (क्योंकि अन्य जोड़े तो खण्डित होते रहते हैं) इन्द्र के रूप में बादल गर्जना करते हैं, सबको सुख देनेवाली वर्षा करते हैं। इन्द्र बरसता है, धरती सोखती है। जल गहरी तह में बैठ जाता है (जिससे बड़ी वनस्पतियों को पोषण मिलता है।) माता पृथ्वी सबको संतुष्ट करके प्राकृतिक छत्तीसों रूपों को धारण करती है।"

---

(१) यह "सबद" श्री जसनाथजी द्वारा विरचित "सबद-साहित्य" में प्रथम रचना मानी जाती है।

काँई रै पिराणी, खोज नै खोजै, खाख हुनै भुस खेहा।
काची काया गळ-बळ जासी, कूँ कूँ वरणी देहा।
हाडाँ ऊपर पून ढुळैली, घण हर बरसै मेहा।
माटी में माटी मिल जासी, भसम उडै हुय खेहा।
हुय भूतळा खाख उड़ावै, करणी रा फळ ऐहा।
घड़ी घड़ी बाइन्दा वाजैं, रच्या न रहसी छेहा।
गावाँ गाडर सै'राँ सुअर, खाड खिणै हुय सेहा।
किये किरत नै जोय पिराणी, दोस न दीज्यो देवा।

कितनों ही की खोजी हुई खोज को (जिसका कि वे कुछ भी पता न लगा सके) हे प्राणी! तू उसी खोज को क्या खोज रहा है? तेरा क्षय होगा, तू जलेगा और जलकर राख हो जायेगा, इसमें किंचित भी सन्देह नहीं। तेरी काच के समान सुन्दर काया, जो कि कच्ची है जिसका कुंकुम वर्ण है। वह कराल-काल की आग मे तपने पर जल जायेगी और गल जायेगी। तेरी चिता के जल जाने पर अग्नि के द्वारा जो धुवाँ निकलेगा, वह पवन के द्वारा कहीं से भी पानी को सोख कर तेरे हाडों के ऊपर मेह बरसाने का कारण बन जायेगा। मिट्टी में मिट्टी तो मिल ही जायेगी। इसमें तो कुछ भी सन्देह नहीं है, क्योंकि वह मिट्टी है। रही भस्मी की बात, वह हवा में मडराती फिरेगी।

तुझे निश्चित ही करणी का फल भोगना पडेगा। तेरे किये हुए पाप कर्म भगुले का रूप धारण कर लेंगे और तेरी धूल को न जाने कहाँ से उठाकर कहाँ फैंक देंगे। तू फिर भी भूला हुआ है। देख! घडी, घडी पर जीवन की झंझावात तुझे सचेत कर रही है। तेरा यह घर (शरीर) जिसको तू अपना समझे हुए है, नाशवान् है। नहीं रहेगा! नहीं रहेगा!! नहीं रहेगा!!!

एक बात याद रख! तू भूल कर भी उस परम-पिता परमात्मा को दोष मत देना। क्योंकि तेरे किये हुए कर्म ही तो तेरे आगे आयेंगे, जिनके द्वारा तू कभी गाँव में भेड बनेगा, शहर में शूकर बनेगा और कभी सेह (एक जानवर विशेष) बनकर गड्ढे खोदेगा।

करणी हीणा नित पिछतावैं, लाधै न गुरु रा भेवा।
जुगाँ छतीसाँ निरँजण बैठा, जिण गुरु री कीज्यो सेवा।
पूरै गुरु नै जोय पिराणी, आवैं पापाँ रा छेहा।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी)।
दीन्हा ज्ञान धरम रा भेवा।

जो कर्म करने से हीन हैं अर्थात् जिन्होंने हीन कर्म ही किये हैं। शुभ कर्म कभी नहीं किये, वे पश्चात्ताप करते हैं और उनको कभी भी अपने सद्-गुरु के द्वारा बतलाए हुए तत्त्व-ज्ञान का भेद नहीं मिल सकता। निराकार निरंजन महाप्रभु गुरुदेव की सेवा में अपना मन लगा, युगों युगों से वह तेरी सब बातों को देख रहा है। तू जग से छत्तीस के अंक की तरह विमुख हो जा। ऐसे ज्ञान से परिपूर्ण गुरुदेव की वाणी का मनन कर, जिससे तुम्हारे पापों का अन्त हो जाय।

श्री जसनाथजी ने गुरु गोरखनाथजी की कृपा से ज्ञान तथा धर्म के भेद का उपदेश दिया।

सिद्धाचार्य के उक्त वचनामृत से जियोजी का मायिक मोहावरण दूर हो गया। बाद में जियोजी ने सदैव के लिए अपना जीवन धर्माचरण करते हुए तपस्या में लीन रहकर व्यतीत किया।

बकर कसाई को अहिंसा का उपदेश—

"श्री जसनाथजी की करामात ने शाह देहली पर इस कदर असर किया कि उनको कुछ जमीन मालासर के पास बगसी गई[1]।"

उक्त कथन में जो "श्री जसनाथजी की करामात" वाक्यांश है, इसका सम्बन्ध निम्नलिखित कथा से है; जो कि श्री जसनाथी सिद्धों में प्रचलित है.—

उस समय सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की पुण्य-भूमि कतरियासर के समीपवर्ती गाँवों से सामूहिक रूप से अनेक मुस्लिम व्यापारियों ने हाँसी, हिसार की वध-शालाओं के लिए बड़ी सख्या में वकरे, मींढे (भेड़ें) आदि पशुओं को खरीदा। व्यापारियों ने रेवड़ को इकट्ठा कर प्रथम विश्राम कतरियासर में "गोरखमाळिये" के निकट ही किया।

एक रात भर विश्राम करने के उपरात जब वे चलने को उद्यत हुए, तब सिद्धाचार्य ने उनसे प्रश्न किया —

'क्यों भाई, ये एक मात्र नर-पशु ही इतनो बड़ी संख्या में किस अभिप्राय से लेजा रहे हो ?'

हिंसा-वृत्तिरत व्यापारियों ने व्यग्यात्मक स्वर में कहा—

"महाराज! आप आश्चर्य क्यों करते हैं। इन सबको बहिश्त में भेजा जायगा।"

श्री जसनाथजी ने गम्भीरता से कहा—'इन जीवों को बहिश्त में भेजना तुम जैसों के हाथ की बात नहीं। खुदावन्द की इच्छासे ही यह सारा संसार गतिमान है। बिना उसकी इच्छा के एक तिनका भी नहीं हिल सकता। उसकी इच्छा मात्र से पत्थर का तैरना भी असंभव नहीं। अत. मुझे स्पष्ट दीखता है कि इन जीवों की अवधि अभी बहिश्त या जहन्नुम में

(१) मुन्शी मोहनलाल साहिब, तवारीख राज श्री बीकानेर, पृ० ४६। कतरियासर आदि ग्रामों की भूमि तब से अब तक सिद्धो के अधिकार में है। सिद्धो में ऐसा कोई विवरण नही मिलता कि स्वयं श्री जसनाथजी ने भूमि ग्रहण की हो।

जाने की नहीं आई है और न अब यह बात तुम्हारे अधिकार में ही रही कि तुम इनको यहाँ से ले जा सको।"

निरंतर इस क्षेत्र में घूमते रहने के कारण इन मुस्लिम व्यापारियों से यह बात छिपी नहीं थी कि सिद्धाचार्य में क्या सामर्थ्य है। अतः अधिक वाद-विवाद में लाभ न देखकर उन्होंने अपने रेवड़ को टोर (हांक) कर चलने की शीघ्रता की।

श्री जसनाथजी ने जब उनके चलने की तत्परता देखी तो अविलम्ब यह कहा—"यदि ये जीव वास्तव में तुम्हारे ही हैं तो इन्हें टोर कर तुम ले जाओ; अन्यथा ये सब बिना किसी संकेत के मेरे पीछे चलेंगे।"

मुस्लिम व्यापारियों ने बड़ी सावधानी से रेवड़ को हाँका, ललकारा, पुचकारा तथा पानी पीने के संकेतों का भी बड़े आकर्षक ढग से प्रयोग किया, पर सब निष्फल। एक भी पशु अपनी जगह से नहीं हिला।

सिद्धाचार्य ने पुनः व्यापारियों से कहा—"तुम्हें और प्रयत्न करना हो तो करलो। कोई उपाय बाकी न छोड़ना। यह निश्चित है कि ये सब पशु बिना किसी प्रयत्न के मेरा अनुसरण करेंगे।"

व्यापारियों ने भरपूर कोशिश की कि रेवड़ को लेकर वे अपने गन्तव्य-स्थल की ओर प्रस्थान करें। पर अन्त तक वे विफल ही रहे। आखिर में सभी ने मिलकर कुढ़ते हुए मन से सिद्धाचार्य से कहा— "देखें, आप कैसे इन पशुओं को अपने पीछे चलायेंगे ?"

जब सिद्धाचार्य ने अपने श्रीचरण-कमल 'गोरख माळिये" की ओर बढाये, सारा रेवड़ उनके पीछे चल पड़ा।

श्री जसनाथजी के इस महान चमत्कार का प्रत्यक्ष में अनुभव कर सभी व्यापारी व साथ के अन्य काजी, मुल्ला दंग रह गये।

विधर्मियों ने इस अभूतपूर्व शक्ति का अनुभव पाकर भी कुछ शिक्षा ग्रहण न की। उन्होंने रेवड़ को ले जाने की हठधर्मी दिखाई, पर सफलीभूत न हो सके। अपने धर्म और हजरत मुहम्मद की दुहाई देते हुए

उन सभी ने कहा –

"महाराज ! कुरान एवं हजरत मुहम्मद की आज्ञा के अनुसार इन पशुओं को हलाल करने में कोई पाप नहीं। यदि पाप है तो व्यर्थ हत्या करने में।"

श्री जसनाथजी ने दुर्बुद्धि-युक्त उन व्यापारियों को निम्नलिखित "सबद" से उपदेशामृत पिलाकर समझाया

कोटक सूना सरबै ऊजड़, देस कुबुद्धि राई।
गाँव रो ठाकर सरबै ऊजड़, लोभ पड़्यो लुटाई।
घर रो मांझी सरबै ऊजड़, पूत कुळछनी माई।
वळदाँ हाळी सरबै ऊजड़, लुभगर खड़ियो ताई।
पुरख'ज करळो सरबै ऊजड़, तीखी वार'ज धाई।
खेतां राठी सरबै ऊजड़, पर चीनो हरियाई।
गाय न गोखी शीसो सुअर, न चीनो हरियाई।
बै बिमुणा विमुख हांडै, कण बिन कूगस गा'ई।

उस देश के सभी दुर्ग उजड़े हुये हैं, जिस देश का शासक कुबुद्धि हो और उस ग्राम के ठाकुर को भी सब प्रकार से उजड़ा हुआ ही समझो, यदि वह लोभ के वशीभूत होकर प्रजा को लूटता हो।

वह गृह-संचालक भी सब प्रकार से उजड़ा हुआ है; यदि उसकी माँ कुलक्षणां में में प्रवृत हो और बैलों को जोतने वाले उस किसान को भी सब प्रकार से उजड़ा हुआ ही समझो, यदि वह लोभ के वशीभूत होकर बैलों से अधिक परिश्रम लेता हो।

वह पुरुष भी उजडा हुआ ही है, यदि अपने ऊँट को बहुत तेज चलाता है, और उस खेत के मालिक को भी उजडा हुआ ही समझो, यदि वह दूसरों के खेतों की हरियाली को देखकर जलता हो।

जिसने हरि को नहीं पहचाना, वह गाय, गोहरा, खरगोश व शूकर की तरह पशु ही है। वे लज्जाहीन पुरुष–जो विपरीत मार्ग पर भटकते हैं, बिना अन्न के फूफस की तरह नि सत्व व थोथे हैं।

रण में पंछी तिस्यो मरियो, ओसर चूको डाई।
साँभळ मुल्ला, साँभळ काजी, साँभळ बकर कसाई।
किण फरमाई बकरी बिरदो, किण फरमाई गाई।
गाय गोरख नैं इसी पियारी, पूत पियारो माई।
फिर चरि आवै, सांझ दुहावै, राख लेवै सरणाई।
थे मत जाणो रुळी फिरै है, चान्दो सूरज गिवाळी।
दस दरवाजा लोह जड़िया, ऊपर ताक जड़ाई।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) सुणाई।

जो समय पर अवसर चूक जाता है, वह जंगल के उस पत्ती की तरह है जो बिना जल के ही अपने प्राणों को दे देता है। इसलिये हे मुल्ला, हे काजी और हे बकर कसाई। तुम सँभलो।

तुम किसकी आज्ञा से बकरी और गाय का वध करने की ओर प्रवृत्त हुए हो। गाय तो गोरखनाथ को ऐसी प्यारी है, जैसे माता को अपना पुत्र प्यारा होता है।

गाय घूम-फिरकर-चरकर शाम को घर आती है और दूध देकर हम सब का पालन करती है। अपनी शरण में रखती है। तुम यह मत समझो कि इन गायों का कोई रक्षक नहीं है। चन्द्रमा और सूरज इनके रखवाले है।

ऐसा पाप-कर्म करने वालों को लोहे के फाटकों से युक्त दस द्वारों के भीतर बन्द कर दिया जायगा तथा ऊपर से भी कोई ऐसा मार्ग नहीं होगा जहाँ से वे निकलने की चेष्टा कर सकें। गुरु श्रीगोरखनाथजी के प्रसाद से श्रीदेव जसनाथजी ने यह उपदेश दिया।

इसके पश्चात् भी जब उन व्यापारियों द्वारा बारम्बार हजरत मुहम्मद का नाम लिया गया, तब सिद्धाचार्य ने पुनः दूसरे "सबद" द्वारा कटु सत्य का प्रवचन किया -

मैंमद, मैंमद, मतकर काजी, मैंमद बिखम बिचारी ।[1]
मैंमद पीर हलाळी होंता, तुम काजी मुरदारी ।
मैंमद हाथ करोती होंती, लोह घड़ी ना सारी ।
(मैंमद पीर जिम्या कर खाई, कर सरजीत बहुळ चराई ।)
मैंमद पीर निवाज गुदारी, अलख तणी दरबारी ।
मैंमद पीर पैगम्बर सीधा, इक लख अस्सी हजारी ।[2]

हे काजी ! तुम मुहम्मद मुहम्मद मत करो मुहम्मद के विचार बड़े गहरे थे । उनको तुम नहीं समझ सकते । पैगम्बर मुहम्मद तो दूसरे के बुरे विचारों को मार कर हलाली बने, किन्तु तुम तो-काजी, मुर्दा हो ।

मुहम्मद के हाथ में जो करोत थी वह लोहे की नहीं थी न ही धारदार थी । मुहम्मद ने यदि कभी कोई भक्षण भी किया तो उसने पुनः उस प्राणी को जीवित कर दिया । वह सामर्थ्य तुम में कहां ?

उसने अलख के दरबार से अपनी आराधना का सम्बन्ध जोड़ा । उसी आराध्य के सामर्थ्य के बल पर एक लाख अस्सी हजार जीवों का उद्धार किया ।

---

(१) यही पाठ रुपान्तर भद से गोरखवाणी में इस प्रकार प्रकित है—

"महंमद महमद न करि काजी, महमद का विषम विचार ।
महंमद हाथि करद जे होती, लौहै घड़ी न सार ॥

हे काजी ! "मुहम्मद मुहम्मद" न करो । (क्योंकि तुम मुहम्मद को जानते नहीं हो । तुम समझते हो कि जीव हत्या करते हुए हम मुहम्मद के मार्ग का अनुसरण कर रहे हे) परन्तु मुहम्मद-का विचार बहुत गम्भीर और कठिन है । मुहम्मद के हाथ में जो छुरी थी वह न लोहे की गढी हुई थी न इस्पात की, जिससे जीव हत्या होती है ।

पीताम्बरदत्त वडथ्वाल, गोरखवाणी, पृ॰ ४.

(२) महंमद महंमद न करि काजी महंमद का वौहोत विचारं ।
महमद साथी पैगम्बर सीधा ये लष अजी हजार ॥

वेळू भींत पौन का थम्भा, नीर भर्यो जळ झारी।
पारी फूटी नीर अछूटै, ओ धन खाम खमारी।
नव दाणूं आगै निरदळिया, अब काळंगरी वारी।
काळंग मारा कुळ वरतावाँ, निकळंग नांव नेजारी।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) विचारी।

यह जो शरीर है, एक प्रकार से बालू की दीवाल है, जो पवन रूपी स्तम्भ के आधार पर टिकी हुई है। जैसे झारी में जल भरा रहता है। हाण्डी फूटने पर जैसे उसका पानी बिखर जाता है, उसी प्रकार तुम्हारे इस धन की गति होगी। पूर्वकाल में होने वाले अवतारों ने जैसे नौ आततायी राक्षसों का नाश किया था; उसी प्रकार भविष्य में होने वाले "काळंग" राक्षसों का नाश होगा।

"काळंग" राक्षस को मार कर कलियुग को समाप्त करने से ही हमारा निष्कलंक नाम सार्थक होगा। गुरु गोरखनाथजी के प्रसाद से श्री देव जसनाथजी ने यह उपदेश दिया।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के मुख से इन उपदेशों को सुनकर उन व्यापारियों को कुछ बोध हुआ। "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना" के अनुसार उनमें से एक ने कहा—

"महाराज! जब आप दातुन तोड़ कर करते हैं तो क्या आपको ईश्वर के आगे हिसाब नहीं देना पड़ेगा?"

प्रत्युत्तर में सिद्धेश्वर ने कहा—

"दांतुण को सांई लेखो मांगै, गळ काट्याँ किम छाडैगी?"

सोधा = साधना के लिए यत्न किये, पच मरे। हजारों लाखों अथवा एक लाख अस्सी हजार। निरजन पुराण में भी एक लाख अस्सी हजार पीर पैगम्बरों का उल्लेख हुआ है।

पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, गोरखबाणी, पृ० ७२

संभव है ये पद इस प्रसंग से संबंधित होने के कारण ही इसे 'जसनाथ-सम्प्रदाय' के अनुयायियों ने ग्रहण किया हो।

अब आगे प्रतिवाद करने का साहस किसी में नहीं हुआ। सभी उस शक्तिशाली महात्मा में व्याप्त सत्ता के समक्ष नतमस्तक थे। सबने श्रद्धा के साथ विदा मागी।

सिद्धेश्वर ने मुस्कराती मुद्रामें आशीष देते हुए कहा—

"बकर कसाई, काजी, मुल्ला सभी का मंगल हो।"

सिद्धाचार्य के द्वारा हिंसक से अहिंसक बनाये गये मुस्लिम व्यापारियों के इस काफिले ने 'शाह दिल्ली'[1] को भी इस महान् आत्मा की महिमा, दिल्ली पहुँचने पर कहसुनाई। सुनाने का क्या प्रभाव हुआ ? इसका उल्लेख इस प्रकरण के आरंभ में ही किया जा चुका है।

(१) उस समय दिल्ली के सिंहासन पर 'लोदी वंश' का अधिकार था, देखिये— अध्याय, ३

लोहापांगळ का मानमर्दन—

राजस्थान में लोहापांगळ नाम का एक पाखण्डी, तान्त्रिक और वाममार्गी साधु होगया है। वह अपने १२० शिष्यों के साथ रहता था। इन्द्रियोंको वश में रखने के अभिप्राय से वह एक ताला बन्द लोहे का लंगोट लगाये रहता था। इसलिये उसका नाम लोहापांगळ पड़ा। तत्कालीन किसी राजा से उसने 'परवाना' प्राप्त कर लिया था कि वह जिस गाँव में भी जाय, उस गाँव के निवासी उसे भौमिया भैरव की भेंट के लिये बकरा मेढ़ा आदि दें।

लोहापांगल घूमते-घूमते एक वार सिद्धेश्वर श्री जसनाथजी की पुण्य-भूमि कतरियासर में आ पहुँचा और उसने वहाँ अपनी मण्डली सहित तम्बू तान दिये[1]। प्रत्येक साधु अपने कमण्डलु सहित धूनी लगाकर बैठ गया।

कतरियासर वाले श्री जसनाथजी के उपदेशानुसार, वध करने के लिये बकरा मेढ़ा देने को सहमत नहीं हुए। फल-स्वरूप विरोध खड़ा होगया।

इतनी बड़ी जमात की बात एक छोटे से गाँव के साधारण लोग निर्भयता के साथ अस्वीकार कर दें? यह लोहापांगळ के लिये सह्य नहीं था। क्योंकि उनके जमात के आगमन की बात सुनते ही गाँव का अधिपति चौधरियों (ग्राम के मुखिया) सहित स्वागत-समारोह में जुटकर उसकी सेवा करने में अपना अहो-भाग्य समझता था। अन्यथा उस गाँव के मालिक की खाल नोचली जाती। उसका घर बार तान्त्रिक-विद्या के बल पर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया जाता। नागा-जमात की अवहेलना करना उस समय साक्षात् काल को निमंत्रण देने के बराबर था[2]।

---

(१) कतरियासर में जिस स्थान पर लोहापांगळ ने तम्बू ताने थे, उसके पास वाली जाळ को अब तक 'भूतिया जाळ' कहते हैं।

(२) प्राचीन समय में ऐसी अनेकों जमातें घूमती थी और उनका आतंक उस समय के जन-मानस पर भयंकर रूप से अंकित था। इस बात की पुष्टि लोक-गीतों से भी होती है—

''सात वीरां री सोनळचाई जोगीड़ा भरमाई रै।
जोगिड़ा भरमाई॥

सात भाइयों की सोने जैसी बहिन को साधुओं ने भरमा लिया है।

लोहापागळ कतरियासर वालों के इस व्यवहार पर बड़ा क्षुब्ध हुआ, और अपने शिष्यों से बोला –

"मुझे देखना है कि इस गॉव के लोग मेरी शरण आने में कितना विलम्ब करते है ? एक साधारण 'नव दीक्षित' छोटे से छोकडे के उपदेश से गॉव के लोग इतने इतरा गये। देखे ! कैसा है यह सिद्ध ? जिसने हमारी भिक्षा-प्राप्ति में बाधा उपस्थित की है।

गाव वालों को लोहापागल के क्रोध का ज्ञान हुआ, वे भय से व्याकुल होकर सगठित रूपसे बाल-योगी सिद्धचार्य के सन्मुख नम्र-निवेदन करने गये, और बोले–

'प्रभो ! गाँव के टाडे (कूए के पास का मैदान) में जमाती लोहा-पांगळ ने तम्बू तानकर हमारे लिए सकट उपस्थित कर दिया है। वह हमें हिंसा के भागी बना, धर्मच्युत करने पर उतारू है।"

श्री जसनाथजी यह सुन केवल मुस्कुरा कर रह गये। दूसरे दिन वे लोग पुनः सिद्धाचार्य की सेवामें उपस्थित हुए और कहा—

"प्रभो ! ग्राम की "थाट" (पशुशाला) में से आज प्रात काल जमातियों ने दो बकरों की गर्दन तोडदी और कहा है कि यदि तुम्हारे गुरु में कोई सिद्धि है, तो इन्हें जीवित करले जायें। इस प्रकार प्रतिदिन बकरों की गर्दन तोड तोड कर तो ये जमाती खा जायेंगे।"

परमदयालु सिद्धेश्वर ने अपने शिष्य हारोजी को जाकर बकरों को सजीवित करने की आज्ञा दी। आज्ञानुसार हारोजी ने थाट के बकरों को गुरु कृपा से जीवित कर लिया, एव पुन थाट के ग्वालों के सुपुर्द कर दिया। परन्तु गॉव वालों को शान्ति कहाँ ? वे फिर विनीत भाव से निवेदन करने लगे –

"सिद्धेश्वर ! वह जब तक योग-बल-सिद्धि से चमत्कृत न होगा, तब तक अपनी हठ-धर्मी से बाज नही आयेगा। कुछ भोले भाई उसके रौद्र नेत्रों में अपने को समाप्त हुआ समझ रहे हैं। हे देव ! गॉव का जन-जीवन आपसे त्राण की कामना करता है।"

गाँव वालों के निवेदन पर श्री जसनाथजी ने हारोजी को जमातियों के पास भेजा। हारोजी वहाँ गये और उन्होंने मांस-मदिरा में मस्त लोहा-पांगल को देखा। श्री हारोजी ने जाकर "आदेश"[1] कहा जिस पर कोई कुछ नहीं बोला, क्योंकि लोहापांगळ 'आदेश' का उत्तर न देने के लिए अपने शिष्य-मण्डल को सूचित कर चुका था। हारोजी जमातियों का निष्ठुर व्यवहार देखकर लौट आये तथा श्रीदेव के सामने सारी स्थिति का स्पष्टीकरण कर दिया। सिद्धाचार्य ने कहा—

"हरमल! (हारोजी) एक बार पुनः जाकर जमातियों को आदेश करो, यदि इस पर भी कोई कुछ न बोले तो धूणा-पानी को आदेश देना, तुम्हारे स्वागत के लिए सब धूनी व कमण्डलुओं में से आदेश की ध्वनि निकलेगी।"

गुरु-आज्ञानुसार हारोजी ने जाकर जमातियों को पुनः आदेश दिया पर वे क्यों बोलने लगे! उन्होंने तो समझ रखा था कि बस! दो बकरों को जीवित करने तक ही इनकी सिद्धि सीमित है।

इस पर श्री हारोजी ने धूनी-पानी को आदेश दिया। कहते हैं कि सिद्धाचार्य की महिमा के कारण धूनी एवं कमण्डलुओं में से आश्चर्यकारी ध्वनि उठी "सिद्धाचार्य को आदेश" "आपको आदेश" विलक्षण आवाज सुन कर लोहापांगळ घबराया और उठकर चलने की तैयारी करने लगा। किन्तु 'गोरखमाळिये' पर स्थित सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी अपनी अन्तर्दृष्टि से देख रहे थे कि, लोहापांगळ घबरा गया है और अब उठ कर जाने की सोच रहा है। तब उन्होंने वहीं से एक मन्त्र पढकर कहा—'अपने किये का प्रसाद तो लेता जा' और अभिमन्त्रित भभूति (विभूति) उठाकर लोहापांगळ के लंगोट को लक्ष्य करके फेंकी, जिससे लोहापांगळ का लोहे का लंगोट तपने लगा। प्रखर ताप से सन्तप्त होकर लोहापांगळ लंगोट के ताले को खोलने का उपक्रम करने लगा, परन्तु वह उसमें भी सफल न हो सका और चाबी पिघल गई।

(१) गोरखपंथी (नाथ-संप्रदाय) के साधु जब मिलते हैं तो 'आदेश' कहकर परस्पर अभिवादन करते हैं।

यह सब चमत्कार हारोजी वहीं खड़े खडे देख रहे थे। संतप्त होकर लोहापांगळ हारोजी के पैरों में आ गिरा। किन्तु हारोजी के पास इसका क्या उपाय था? अन्त में लोहापागळ को गोरखमाळिये पर आकर प्रार्थना करनी पड़ी। उस समय श्री जसनाथजी ने मन्त्र-सम्पुटों से युक्त १२० कड़ियाँ (छंद) कही[1]। जिससे लंगोट का पानी होकर पीठ की ओर से सिर के ऊपर से नीचे आकर गिरने लगा। इस चमत्कारिक क्रिया से लोहापांगळ की आत्म-शुद्धि होती गई और साथ साथ उपदेश भी मिलता रहा।

सिद्धाचार्य के प्रत्यक्ष चमत्कारों को देख कर यद्यपि लोहापांगळ अत्यधिक प्रभावित हुआ, पर सहज ही अंत करण की पवित्रता प्राप्त करना सरल नहीं था। श्रवण, मनन और निदिध्यासन की दृढ़निष्ठा से ही हृदय के मल, विक्षेप तथा आवरण की निवृत्ति होती है[2]। हृदय शुद्ध एवं सरल होने में भले ही समय लग जाय किन्तु सरल हृदय में दैवी-सम्पदा के गुणों का प्रवेश अविलम्ब होता है।

लोहापांगळ के अहङ्कारी मस्तिष्क में यह सोचने को कहाँ स्थान व समय था कि यह दम्भ उलटा मेरे ही गले में आ पड़ेगा। वह तो अपने स्वय के चमत्कारों से सिद्धाचार्य को प्रभावित कर अपनी मण्डली में शिष्य रूप में सम्मिलित करने की भावना रखता था, परन्तु हुआ इसके विपरीत।

---

(१) पूर्व अनुमान से इन 'कडियो' की उपलब्धि में सन्देह था किंतु अब यह निश्चय हो चुका है कि "पाँचला सिद्धो का" गाव (मारवाड़) के आसण (श्री जसनाथजी का मंदिर) में ये मिल सकेंगी। कामदारी आको (अक्षरो) में तो कतरियासर के ठाकुर मंदिर के पुजारी श्री रामचद्रजी दायमा के पास इस लेखक ने अपनी आँखो से देखी हैं, किन्तु समयाभाव के कारण वह उन्हें नही लिख सका। इन 'कडियो' को अब भी गाँठ आदि रोगो पर मन्त्रोपचार के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

(२) कान सुणै ज्यू सुरत पडै। अर्थात सुनने ही से कुछ सुरति—स्मृति होती है, तभी तो वेद को श्रुति कहा है। 'सुरत नुरत' पद भी सन्त वाणी में अनेको जगह आते हैं।

वह श्री जसनाथजी के उपदेशों व चमत्कारों से प्रभावित होकर पश्चात्ताप के स्वर में कहने लगा—

"प्रभो! मुझे अभयदान दीजिये। मैंने आपको सामान्य व्यक्ति समझ कर आपका अपमान करने की कुचेष्टा की, जिस का दुष्परिणाम भोग चुका हूँ। श्री नाथजी महाराज! आप तो सिद्धेश्वर, पूर्ण महात्मा हैं। मैं आपके चरणों की शरण में पडा अतुलनीय कृपा की भिक्षा माँगता हूँ।

यह सुनकर श्री जसनाथजी ने कहा— "हे लोहापांगळ! यह तेरी मूर्खता है, जो एक लिङ्गेन्द्रिय को तो लोहे का ताला लगा कर बन्द कर रखा है और अन्तःकरणादि तेरह इन्द्रियां विषयों में लिप्त हो रही हैं[1]। मूढ़मति! पाखण्डाचारी!! तू व्यर्थ ही योगी का मिथ्या वेश बनाकर पृथ्वी पर भार-स्वरूप बना घूमता है। वेद विरुद्ध विद्याविहीन छद्मी! तुम यहाँ कैसे, क्यों और कहाँ से आये हो? तुम हो कौन?"

लोहापांगळ ने उत्तर में कहा— "महाराज! मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, और गोरखपंथी योगी हूँ।"

सिद्धाचार्य को लोहापांगळ का गोरखपंथी योगी बनना बहुत अखरा। उन्होंने ऐसे आकारधारी दम्भी योगियों की भर्त्सना करते हुए सच्चे योगियों के लक्षणों का इस 'सबद' से प्रतिपादन किया—

जत सत रै'णा कूड़ न कै'णा, जोग तणी सहनाणी।
मनकर लेखण तनकर पोथी, हर गुण लिखो पिराणी।
अमी चवै मुख इमरत बोलो, हालो गुरु फरमाणी।

सत्य और संयम से रहना तथा मिथ्या भाषण नहीं करना ही योग का लक्षण है। हे प्राणी! मन रूपी लेखनी से शरीर रूपी पुस्तक पर भगवान् के गुण लिखो। मुख से ऐसे मधुर शब्द बोलो, मानो अमृत चू रहा है और गुरु के आदेशानुसार चलो।

---

(१) कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

[गाय'र गाडर भैंस'र छाळी, दुय दुय पिवो पिराणी ।
सिरज्या देव अमीरा कूंपा, गळवी काट न खाणी ।
जे गळ काट्याँ होत भलेरो, अपरो काट पिराणी ।
कांटो भागाँ थरहर कांपो, पर जिवड़ो यूँ जाणी ।]
कुंडा धोवै करद पलारै, रगत करै मदमाणी ।
से नर जाणे सुरगे जास्याँ, कोरा रह्या अयाणी ।
झूठाँ ने जमदूत धवैंला, भाड़ धवै ज्यूँ धाणी ।
वळ बाकळ भैरूंरी पूजा, गोरख मना न माणी ।
साधाँ नै इन्द लोके वासो, देव तणी देवाणी ।
साधु हंियर हिंडोळै हींडा, पुंता सुरग विवाणी ।
भूखाँ नै गुरु भोजन मेळै, तिसियाँ पावै पाणी ।
लोहापांगळ भरमै भूल्यो, जोग-जुगत ना जाणी ।
गुरुपरसादे गोरख वचने (श्रीदेव) जसनाथ (जी)
असली ज्ञान वखाणी ।

हे प्राणी ! गाय, भैंस और बकरी का तो दूध ही पीना चाहिए। परमात्मा ने इन पशुओं को अमृत का भण्डार बनाया है। इन्हें गला काटकर नहीं खाना चाहिए। हे प्राणी ! यदि गला काटना अच्छा है तो अपना ही गला क्यों नहीं काटते ? अपने पैरों में जरा-सा कॉटा चुभते ही तुम थर थर काँपने लगते हो। पर पीड़ा को भी इसी प्रकार समझना चाहिए।

तुम कुण्डा धोते हो, छुरी को धार देते हो और रक्त की महिमा बखानते हो। ऐसा कर्म करने वाले भी यदि यह सोचे कि हम स्वर्ग जायेंगे तो वे निरे अज्ञानी ही रहे। मिथ्याचारियों को यमदूत इस प्रकार सतायेंगे, जिस प्रकार भाड़ धान को भूनता है। मास-मदिरा से भैरव की पूजा करना श्री गोरखनाथ को अच्छा नहीं लगता था।

सच्चे साधुओं को इन्द्र लोक में निवास तथा देवताओं का मंत्रित्व मिलेगा। साधु लोग हाथी घोडों के हिंडोलों पर झूलेंगे और विमान में बैठकर स्वर्ग पहुँचेगे। भूखों को गुरु भोजन भेजता है और प्यासों को पानी पिलाता है। हे लोहापागळ ! तुम भ्रम में भूलते हो, योग की युक्ति नहीं जानते। गुरु की कृपा से गोरखनाथजी के उपदेशानुसार श्री जसनाथजी ने यह कहा।

सार रूप से जैसे साधुओं को अपना जीवन यापन करना चाहिये, सिद्धाचार्य ने वता दिया और लोहापांगळ भी यह भली भाँति समझ गया कि इस अक्षय भण्डार में किसी भी वस्तु की कमी नहीं है।

मधुर वाणी में प्रदत्त यह हृदय-स्पर्शी सदुपदेश लोहपांगळ के लिए आदर्श एवं भव-बंधन-मोचन के लिए सबल अवलम्बन था।

फिर भी, धर्म की अनभिज्ञता के कारण सिद्धेश्वर से लोहापागळ ने पूछा –

'महाराज। आप कौन हैं; और क्या विचार रखते हैं। मेरा गोरख पंथी होना आपको बुरा क्यों लग रहा है ?'

सिद्धाचार्य ने अब पुन. दूसरे 'सबद' मे योगी और योग के आदर्श उसको समझाये।

हम दरवेश निरंजन जोगी, जुग जुग रा अगवाणी।
जाँ सूँ जैसा ताँ सूँ तैसा, और न बोला वाणी।
फिर फिर भाव दुनी रो देखाँ, कुण बोलै के वाणी।
सरवा सरवी यूँ रळ चालाँ, ज्यूँ रळ चालै पाणी।
बिरमा बिस्न महेसर जोगी, जोगी पोन'र पाणी।

हम तो दरवेश हैं। निरञ्जन योगी (सात्विक एवं सत्त्वमय) हैं। प्रत्येक युग के आध्यात्मिक क्षेत्र में नेतृत्त्व कर, समय समय पर उपस्थित समस्याओं का समाधान अगुआ होकर किया है। जिन प्राणियों की जैसी जैसी प्रकृति होती है, तत् तत् प्रकृति के अनुसार हम उन्हें अपनाकर वाणी द्वारा सदुपदेश देकर सन्मार्ग का पथिक बनाते हैं. उस वाणी में असत्य व आडम्बर का लेशमात्र भी स्थान नही रहता।

दृष्टि विस्तार से संसार के भाव को देखते है कि कौन कैसी वाणी में बोलता है। सीधे सादे ढंग से सब के साथ मिलकर चलते हैं, जैसे पानी सबके साथ मिलकर चलता है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर योगी हैं, और पवन तथा जल भी योगी हैं।

आद्यनाथ गुरु गोरख जोगी, आप हुया पैलाणी।
भूखा भरड़ा कान फड़ावैं, सेवैं मड़ा मसाणी।
कांधै पाछैं मेखळ घातैं, कोरा रह्या, अयाणी।
हिवड़ै भूल्या घर घर हाँडै, बोले अट पट बाणी।
देवळ सूना मठ पिण सूना, सूनी बुध'र बाणी।
पाँच पियाले गोधियाले, दसवैं पीड़ां घाणी।

आदि गुरु श्री गोरखनाथजी योगी हैं। वे सबसे पहले योगी हुए हैं। (योग का प्रतिपादन, प्रचार व प्रसरण श्री गोरखनाथजी द्वारा ही हुआ है) अकर्मण्य होकर भिक्षावृत्ति से ही सुखमय जीवन यापन करने के लिए ही तुमने कर्ण-छेदन किया है अर्थात् मुद्रा पहन लिए हैं। मुर्दे व श्मशान का सेवन करते हो, फिर कधे में मेखला डाल लिया। योगी का वेश करने पर भी निरे अज्ञानी ही रहे।

हृदय से भूले हुए (आत्म ज्ञान से हीन) ऊट-पटांग (ऊल जुलुल) वाणी बोलते हुए कामना रत होकर घर घर घूमते हो। तुम्हारी मूर्ति भी जड़ है, तुम्हारा मठ भी जड़ है, तुम्हारी बुद्धि भी जड है और तुम्हारी वाणी भी जड है[1]। अर्थात तुम भावना, ज्ञान, विवेक और विचार से हीन हो।

पाच पियाले .. माण मळे मळ माणी। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इन पच तत्त्वरूपी विषयों को पीकर सन्तोषी बनो। काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा मद इन सब इन्द्रियों को वश मे करो, नहीं तो इन दशों के वशीभूत हुआ प्राणी कोल्हू में तिलों की तरह पिस जायेगा। अर्थात् बारबार काल चक्र पर चढता ही रहेगा।

---

(१) देवल जात्रा सुनि जात्रा तीरथ जात्रा पाणी,
अतीत जात्रा सुफल जात्रा बोलै अमृत वाणी।

देवालय की यात्रा शुम है उससे कोई फल नही मिलता। तीर्थ की यात्रा (निस्फल यात्रा) तो पानी मात्र की यात्रा है। अतीत की यात्रा सुफल है, साधु सन्तो के दर्शन के लिये की जानेवाली यात्रा अमृत के समान है। क्योकि उनके सत्सग और उपदेश-श्रवण से जो लाभ होता है, वह किसी दूसरी प्रकार की यात्रा से सम्भव नही।

पाँच मल्ळे मळ पनरा पूरा, कँवर गोरख रा जाणी ।
आधै आधै आखर राखां, माण मळे मळ माणी ।
अपणै घट री निरत न जाणै, क्यूँ चढसी निरवाणी ।
पै'लें आसण दिढक रहैला, से पूरा परवाणी ।
मळ वाकळ भैरूँ री पूजा, गोरख मना न भाणी ।
या करणी सूँ नरकाँ जास्यो, हुवो प्रेत पिराणी ।
काळँग माराँ कुळ पळटावाँ, जद पूजै सहनाणी ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) वखाणी ।

जो पाँचों विषयों का मर्दन करेगा वही पूर्ण है। उसी को गोरख-पुत्र समझना चाहिये। अभिमानी का मान मर्दन होने में विलम्ब नहीं होता, अतः अभिमान करना अच्छा नहीं।

जो अपने घर के नृत्य (गतिविधि) को नहीं समझ सकता वह निर्वाण पद को कैसे प्राप्त करेगा। पूरा प्रमाणित तो वह है जो पहले अपने आसन पर दृढ रहेगा।[1] मांस-मदिरा से भैरव की पूजा करना श्री गोरखनाथ को अच्छा नहीं लगता था। हे प्राणी ! ऐसा करने से नर्क में जावोगे और प्रेत बनोगे।

राक्षसों को मार कर कलियुग समाप्त करें, तब सहनाणी मिलेगी[2]। गुरु के प्रसाद से श्री गोरखनाथजी के उपदेशानुसार श्री सिद्ध जसनाथजी ने यह कहा।

---

(१) आहार दृढ निद्रा दृढ, आसन दृढ होय।
नाथ कह रे बालका, मरै न बूढा होय।
अष्टांग योग में भी आसन को तीसरा साधन माना है।
आसन प्रत्याहार. प्राणायाम यम नियम हि।
ध्यान धारणा धार. अष्टम योग समाधि यह।

(२) जब हम कलियुग के (हिंसा, असत्य, छल, छिद्रादि) भाव को मारेंगे, तथा अपने परम्परागत नियमों (परोपकार, अहिंसा, सदाचारादि) का पूर्णरूपेण पालन करने से ही हमारा वास्तविक परिचय जन-जन के अन्तस्तल पर अंकित होजायगा।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के ओजपूर्ण सत्य ज्ञानोपदेश से लोहापागळ के कानों की खिडकियां खुल गईं। लोहापागळ के हृदय में कुछ सरलता को अङ्कुरित देख कर कटु किन्तु लाभप्रद उपदेश सिद्धाचार्य ने और दिया—

"हे लोहापांगळ! तुम तो साधु (योगी) का वेश बनाये हुए हो। तुम्हें तो मानवता के धर्म को अपना कर आध्यात्मिक बनना चाहिये था। पर तुम तो अभागे भौतिक वादी ही रहे। साधु को तो आध्यात्मिक शक्ति की महान् विभूति बनना चाहिए, पवित्रता की महान् आत्मा बनना चाहिए। तुम तो योग धारण कर लेने पर भी इन्द्रिय-सुख की परछाई के पीछे दौड़ते हो। यह तुम्हारे लिये उचित नहीं। यह मेदिनी तुम्हारे प्रत्येक दुर्वचन और कुविचार से उद्विग्न हो उठी है। मानसिक दिवालियापन और चारित्रिक विकृति से सुयोगी जन तुम्हारी ओर थूकते भी नहीं। तुम किस सामर्थ्य के बल पर इस पृथ्वी पर कदाचार का प्रसार कर रहे हो। जिस चीज को तुम सत्य मानकर चल रहे हो वह तुम्हें विनाश के गर्त में ढकेल रही है। जीवन का उद्देश्य मरण न होकर कुछ उच्चतर लक्ष्य है। जीवन का अन्त मृत्यु न होकर सत् और महान् को प्राप्ति है। तुम्हें तो जीवन में विनाश के चरणों को रोकने का उपाय जान उस पर चलना चाहिए। मन की शान्ति और वास्तविक सुख पाने का भी साधन जानना आवश्यक है।

मन को पवित्र करने के अनेक साधनों को तुम्हें अपनाना पड़ेगा। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर प्रचुर शक्ति और ओज है, उसका उपयोग जानना तुम्हारे लिए नितान्त आवश्यक है।

हे लोहापागळ! मदिरा और मास-भक्षण में[1] कोई ओज नहीं है। वे तो तुम्हारे विनाश के निमित्त कारण है। साधु को तो मादक द्रव्य से

---

(१) जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन्न।
जैसा पीवे पाणी, वैसी बोले वाणी। (लोकोक्ति)

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्त स्वभाव बोधस्य योगो भवति दुःखहा। गीता, अ० ६ श्लोक १७

रहित सात्विक आहार करना ही श्रेष्ठ है । तभी वह बलवान एवं शक्तिशाली बन सकता है।

हे लोहापांगळ ! साधारण परन्तु सर्व प्रथम इन्हीं बातों पर अधिक ध्यान देने से तुम्हारा मन शान्त होगा और तुम्हें आनन्द की प्राप्ति होगी। मन में कुपथ पर जाने की स्वयं कुटेव होती है। अभ्यास और वैराग्य-साधन से तुम मन पर नियंत्रण पा सकोगे। मुँह से हरिनाम स्मरण कर हृदय से प्रभु-परायण हो जाओ।

हे लोहापांगळ ! तुमने क्यों इन नये नये योगियों को पकड़ कर जमात बना रखी है । क्या ज्ञान हीन आत्म-शून्य होकर भी तुमने इनके कल्याण का ठेका ले रक्खा है ? गीता उपनिषद् आदि धार्मिक ग्रन्थों में स्पष्ट उल्लिखित उपदेशों के अनुसार चलकर अपने जीवन-स्तर को ऊँचा उठाओ। इन्हीं उपायों से तुम्हारा मन ऊर्ध्वोन्मुख होगा। तब मन में कोई विक्षोभ नहीं उठेगा। मन शान्त होने पर तुम्हे सब प्रतीति होने लगेगी।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने लोहापांगळ के प्रति सुधार-साधन के अनेक उपदेश दिये। जिनके सुनने से लोहापांगळ के लोहे की लंगोट की कड़ियाँ जो कमर में ही रह गई थीं, झड़ने लगीं। लोहा पांगळ भी सिद्धाचार्य से विनम्र होकर बार बार प्रार्थना करने लगा—

"सिद्धराज ! भविष्य में मैं कोई पाप कर्म नहीं करूंगा। आप मेरे गुरु व मैं आपका दास हूँ, सेवक हूँ। प्रभु ! मेरा पाप निवारण कीजिये।"

तब श्री सिद्धाचार्य ने स्नेहपूर्ण वाणी में कहा— "हे लोहापांगळ ! इन पापकीटों को समूल नष्ट करने के लिए सत्संग की बड़ी आवश्यकता है। अतः बार बार सत्संग करने से तेरे सब पाप झड़ जायेंगे। देख ! तेरे इस शरीर पर ये जितनी लोहे की कड़ियाँ हैं, इनमें से प्रतिदिन एक कड़ी झड़ जाया करेगी और इसी प्रकार प्रतिदिन सत्संग करने से तेरा समस्त पाप झड़ (नष्ट) हो जायेंगे। यहाँ दक्षिण में एक 'समरास्थल' नाम का धोरा (टीबा, रेत का टीला) है। वहाँ हमारे गुरु-भाई 'जांभोजी' महात्मा

रहते हैं। तुम वहाँ चले जाओ। सरल चित्त से उनके सान्निध्य में रहकर तुम सब कुछ प्राप्त कर सकोगे।

लोहापॉगळ श्री जसनाथजी को 'आदेश' अभिवादन कर एवं आज्ञा लेकर जांभोजी के पास समरास्थल की ओर चला गया। साथ के अन्य साधु सिद्धेश्वर की आज्ञानुसार यथा स्थान चले गये।[1]

लोहापागळ पर निम्नोक्त लेख प्रकाशित हुये हैं —

(१) श्री कन्हैयालाल सहल तथा श्री पतराम गौड, 'सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी तथा लोहापागळ', रास्थान साहित्य, वर्ष १, अक १, पृष्ठ २४।

लोहापिंजर प्रकरणम्, यशोनाथ पुराण, पृ० ७६

उपरोक्त घटना के सम्बन्ध में कोई निश्चित सवत् या व तिथि का कही उल्लेख नही मिलता। किन्तु 'नाथ-सम्प्रदाय' के माननेवालो की किंवदन्तियो के आधार पर यह कहा जासकता है कि यह घटना बकरकसाई की घटना के बाद घटी है।

पंगु का कष्ट निवारण व सारण चौधरी को धर्मोपदेश—

गोरखमाळिये की सुषमा-श्री को देख कर किस का चित्त आकर्षित नहीं होगा ! लाखों पक्षियों को यहाँ चुग्गा प्राप्त होता है। कसाइयों द्वारा वध किये जानेवाले लाखों मींढों, बकरों की रक्षा की जाती है। ध्यानानन्तर सिद्धाचार्य की दिनचर्या इस प्रकार थी— मोरों, कबूतरों, कमेड़ियों और अन्यान्य लघु पक्षियों को दुलार के साथ चुग्गा देना। उनके कोमल, सुन्दर पंखो पर दुलार भरे हाथ फेर कर सुखी करना ।

इस भूभाग में दुर्लभता से प्राप्त जल की बहुलता उन पक्षियों व हरिणादिक पशुओं के लिए रखना । अपाहिज, अबोध पशु-पक्षियों की सहृदयतापूर्वक सेवा, सुश्रूषा करना। इस प्रकार सकल सृष्टि के चराचर प्राणियों से स्नेह-स्निग्ध प्रेम करना, भ्रातृत्व का प्रसार, यज्ञादि कृत्यो का प्रचार और शुभ कर्मानुष्ठान करना ही सिद्ध के जीवन का मुख्य ध्येय था।

जिसके हृदय में प्राणिमात्र के लिये सम्मान हो, कष्ट निवारण की भावना हो, दयार्द्रभाव से जो सकल विश्व को सुखी देखना चाहता हो। जिसका प्रत्येक प्रयत्न लोक-कल्याण के लिए होता हो, और जिसके समग्र साधन एतद्-विषयक होते हों, उस पुनीत महात्मा को सभी लोग अपना सगा-सम्बन्धी समझने लगते हैं । परिणाम-स्वरूप सभी प्राणी प्रेम की विह्वलता से यही दृढ़ अनुमान करते हैं कि, ये मुझे ही सबसे अधिक प्यार करते हैं।

सन्त, दुष्टनिकन्दन, भक्त-भयहारी होते हैं। फिर भला वे कैसे किसी के साथ सम-विषमता का व्यवहार बरत सकते हैं ?

एक दिन पुण्य-भूमि कतरियासर के उत्तर में स्थित 'मालाणिये' का जाट थका-थकाया क्लान्तमना बाड़ी में प्रविष्ट हुआ, और बैठकर अपनी पिपासा-शांति के लिये पानी की याचना की। सिद्धेश्वर के किसी अनुचर ने जल पिलाया। उसे शांति मिली। वह कुछ मुस्काया और फिर श्री सिद्धेश्वर के सन्मुख करबद्ध होकर प्रार्थना करने लगा—

'महाराज ! कई दिनों से मेरा टोळा खो गया है। कई जगह खोज

चुका हूँ, किंतु अभी तक कोई पता नहीं लगा। आप सर्वज्ञ हैं, किस दिशा में मेरा टोळा मिलेगा, कृपया बता कर कृतार्थ कीजिये।"

सुन कर सिद्धाचार्य ने स्वाभावोक्ति से कहा—"बमलू ग्राम के दक्षिण में एक तालाब है, वहाँ तुम्हारा टोळा चर रहा है। जाकर ले आओ।"

वह स्थान कतरियासर से लगभग ५ कोस की दूरी पर है। मोलाणिये का चौधरी वहाँ गया, और अपना टोळा पाकर प्रसन्न हुआ। उसकी सारी क्लान्ति मिट गई।

सन्निकट क्षेत्रों में सिद्धाचार्य के चमत्कारों की चर्चा सदैव ही से सुनी जाती थी, परन्तु आज प्रत्यक्ष में परचा (परिचय) पाकर चौधरी बड़ा प्रसन्न था। मोलाणिये भर में श्रीनाथजी के परचे (परिचय) की चर्चा बराबर होती रही।

कुछ दिनों बाद वह चौधरी अपने सगे-सम्बन्धियों के यहाँ लालमदेसर गया। वहाँ उसने देखा कि उसके सम्बन्धी के लड़के की बहुत ही बुरी दशा थी। उस लड़के के पैर सूख कर लकड़ी जैसे होगये थे। वह कभी कभी इतने जोश में आ जाता था कि बीसों आदमी भी उसे सम्भाल नहीं सकते थे। इसीलिये उसे रात दिन मजबूत श्रृँखला से बाँधे रखना पड़ता था। फिर भी लोगों को भय था कि, कहीं यह श्रृँखला को तोड़ कर गाँव भर को नष्ट न करदे। उसके उत्पातों से सभी लोग सशंकित रहते थे।

लालमदेसर का सारण चौधरी गाँव का प्रमुख व्यक्ति था। धन-धान्यादि से परिपूर्ण होने पर भी वह रात-दिन सत्रस्त रहता था। उसने दूर-दूर के गँडा, डोरा करनेवालों को बुला कर उपचार करने की व्यवस्था की। पर उसके इकलौते पुत्र के स्वस्थ होने की दशा में कोई सफलता नहीं मिली। ज्यों ज्यों उपचार किये गये त्यों त्यों रोग अधिक बढता गया। सभी चिकित्सकों ने एक स्वर से उसमें भयकर दैत्य का प्रवेश बताया था। जब कभी परा कुछ स्वस्थ दिखाई पड़ता था, तो ग्राम में अग्निकाँड, पत्थर वर्षा आदि से उस दैत्य द्वारा बराबर अशांति फैलाई जाती थी।

सारण चौधरी ने अपने पुत्र के स्वास्थ्य-लाभ के लिये कोई कोर

कसर बाकी नहीं रक्खी। किंतु उसे अपने चारों ओर निराशा के सघन अन्धकार के अतिरिक्त प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखाई दी। घर-भर में चिंता और दैत्य के नग्न-नृत्य ने सब की नींद हराम कर रक्खी थी।

आगन्तुक मोलाणिये के चौधरी ने अपने अभिन्न-हृदय सम्बन्धी और उसके पुत्र की ऐसी विचित्र दशा देखी, तो सारण चौधरी से बल देकर कहा—

"आप यदि गोरखमाळिये के सकल जन-कल्याण हितेषु करुणार्णव परम तपस्वी सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की शरण में इस पंगु को लेजॉय तो निश्चय ही इसका कष्ट निवारण होगा।"

कई देर चुप रहने के पश्चात् सारण चौधरी ने मोलाणिये के चौधरी से कहा—"हॉं! कुछ दिन पहले हमारे कुल-गुरु जियारामजी ने भी मुझे ऐसी ही सम्मति दी थी, परन्तु चिंताग्रस्त होने के कारण उनका सुझाव मेरी स्मृति से लुप्त होचुका था, पर अब आपकी साक्षी ने उनकी शरण में जाने के लिये हृदय में अटल विश्वास जमा दिया है।"

दूसरे दिन प्रातःकाल ही सारण चौधरी एक बलिष्ठ बैलों की गाड़ी में पंगु को भली-भॉंति बान्ध कर, तथा पॉंच सात समझदार व्यक्तियों को अपने साथ लेकर कतरियासर की ओर चल पड़ा। वहॉं से कतरियासर कोई २० कोस के अन्तर पर है। लालमदेसर से कतरियासर बीकानेर होकर जाना पड़ता है। जब ये लोग बीकानेर के नव-निर्मित गढ़ (जुनागढ़) के सामने से होकर जारहे थे; उस समय संयोगवश लालमदेशर के चौधरी की राव लूणकरणजी से भेंट होगई। रावजी के पूछने पर चौधरी ने अपने पंगु लड़के में दैत्य-प्रवेश का सारा इतिहास व उसकी चिकित्सा की सारी कहानी ज्यों की त्यों कह सुनाई।

लूणकरणजी के पास उस समय उनके भाई अड़सीजी[1] बैठे थे।

---

(१) बीकानेर के प्रकाशित इतिहास में अटसीजी का कहीं कोई नाम नहीं आया है। हो सकता है यह बीकाजी के दस पुत्रों में से किसी एक का उपनाम हो या कोई सामन्त हो। सरदारशहर तहसील में अड़सी के नाम से एक ग्राम अड़सीसर बसा हुआ है, पास ही घड़सी के नाम पर घड़सीसर भी है सिद्धों में इनका नाम दूसरी कथाओं में भी प्रचलित है।

वे राज्यमद व शारीरिक बल से उन्मत्त थे। उन्हें सारण चौधरी की बातों में विश्वास नहीं हुआ। वे चौधरी से बोले—

"तुम्हारे एकमात्र रक्षक हमीं हैं, फिर व्यर्थ ही क्यों किसी स्वामी, साधु के पास भटकते हो। हमारे भाई घड़सीजी इतने पराक्रमी व बलिष्ठ पुरुष हैं कि भूत, दैत्यादि तो उनको देखते ही भाग जाते हैं।"

घड़सीजी उस समय घुड़सवारी करने बाहर गये हुए थे। थोड़ी देर बाद जब वे आये तब उन्होंने पगु में दैत्य-प्रवेश व श्री जसनाथजी के पास जाकर ठीक कराने की बात सुनी। उन्हें बड़ा कौतुहल हुआ। वे मस्त हाथी की तरह उस गाड़ी के पास गये, और लालमदेसर के सारण चौधरी से सगर्व कहा—

"इसीमें है क्या वह दैत्य? जिसको निकलवाने के लिये कतरियासर जसनाथजी की मनौती के लिये लेजाया जारहा है। इसको तो मैं अभी क्षण भर में ठीक किये देता हूँ।"

घडसीजी ने कठिन रस्सों और मजबूत शृंखला से उस गाड़ी में बंधे हुये पगु पर अपने समस्तबल से "ताजना" (चाबुक) फटकारा। पंगु ने एक हाथ से उस ताजने को पकड़ लिया किंतु प्रबल योद्धा घड़सीजी अपनी सारी शक्ति लगा कर भी उस कृपतनु पगु से ताजने को नहीं छुड़ा सके। तव उन्होंने अपनी लज्जा को छिपाने के लिये खूब-जोर से अपने सांग (शैल) को जमीन में गाड़ दिया, और कहा—

"यदि यह पंगु इस साग (शैल) को उखाड ले तो मैं मान सकता हूँ कि इसमें राक्षस का प्रवेश है, अन्यथा मेरे समक्ष इसकी शक्ति का कोई मूल्य नहीं।"

परम-युद्ध कुशल और महाबली योद्धा घड़सीजी के विषय में सुना जाता है कि वे रुपये को अपनी चुटकी से पीस कर महीन पत्ती-सी बना देते थे। उन्होंने बडे बड़े युद्धों में विजय पाई थी। उनकी इन बहादुरी भरे कार्यों के लिये बीकानेर का इतिहास साक्षी है, किंतु उन्हें क्या पता था कि आज पगु द्वारा उनके समस्त बल कौशल का अपमान होना है।

गाडी में जकड़ कर मजबूती से बँधे हुये उस पंगु ने अपने दूसरे हाथ से उस सांग को उखाड़ लिया और अपने साथ कतरियासर लेगया। घड़सीजी देखते के देखते रह गये।

जब ये लोग कतरियासर में प्रवेश करने लगे तो उस दैत्य ने बैलों को गाँव की सीमा-परिधि से कुछ इधर ही रोक लिया। क्योंकि वह दैत्य कतरियासर की ओरण (जंगल) में नहीं जा सकता था और न उस पंगु को ही छोड़ना चाहता था। ओरण में प्रथम प्रवेश के साथ ही, चाहे वह प्रीति या अप्रीति के किसी भी भाव के साथ आया हो; उसे परचा (परिचय) मिला था, फिर दैत्य की क्या सामर्थ्य कि वह सिद्धाचार्य की क्रीड़ा-स्थली में बिना बंधन या अनुमति के प्रवेश कर सके। बैलगाड़ी बड़ी देर तक ओरण (जगल) के इधर ही खड़ी रही।

सर्वज्ञ संत सिद्धाचार्य अपनी दिव्य-दृष्टि से उस सुदूर दृश्य को गोरखमालिये पर बैठे देख रहे थे। 'सर्वभूतहितेरता' के अनुसार सिद्धेश्वर ने हारोजी से कहा—

"तुम वहाँ सीमा पर जाकर हमारे सेवक को यहाँ लिवा लाओ। प्रच्छन्नरूप से उसको दैत्य यहाँ आने से रोक रहा है। अतएव दैत्य को भी मन्त्र-पाश में आबद्ध करके यहाँ ले आना।"

हारोजी ने सीमा पर सिद्धेश्वर की आज्ञानुसार ही कार्य किया। इस कार्य के लिये सारण चौधरी ने सिद्धेश्वर का बड़ा भारी आभार प्रदर्शित किया और उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि अब मेरे सम्पूर्ण कष्टों के निवारण का समय अति समीप आगया है।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के सन्मुख आते ही पंगु के द्वारा दैत्य बोला – "महाराज! मेरा कल्याण कीजिये, मैं आपके सेवक का पिंड छोड़ दूँगा।" सिद्धेश्वर ने दैत्य को आज्ञा दी – "तुम दूर देशान्त चले जाओ। कालान्तर में हमारे किसी सेवक द्वारा तुम्हारा कल्याण होगा"[1]।

(१) कहते हैं दैत्य ने चार पीढ़ी तक 'उदयपुर राजघराने" के पुरुषों में निवास किया फिर "पांचला सिद्धों का" के प्रसिद्ध सिद्ध रुद्रोजी ने उसका उद्धार किया जिसका वृत्तान्त विस्तृत रूप से आगे अंकित है।

पगु के शरीर से दैत्य का निश्कासन होते ही पगु मरे मुर्दे की तरह हो गया, क्योंकि पगु वर्षों तक दैत्य द्वारा पीड़ित रहने के कारण बहुत दुर्बल हो चुका था। पैर तो उसके पहिले ही सूख कर लकड़ी हो गये थे। वह पराये जोर से ही इतना उन्मत्त हो रहा था। किन्तु अब उसमें पराई शक्ति नहीं रही थी और अब वह गुब्बारे से गैस के निकलते ही जैसे गुब्बारा प्राण-हीन होजाता है वैसे प्राणहीन-सा पगु केवल हड्डियों का ढॉचा मात्र रह गया था।

पगु की यह विचित्र दशा देखकर सारण चौधरी बहुत घबराया, उसने समझा कि अब पगु की जीवन-लीला समाप्त हो चुकी है, भोले ग्राम-वासी को अभी क्या पता कि सिद्धाचार्य की अनिच्छा से स्वय यमराज का भी यहॉ आना कठिन है।

सिद्धेश्वर ने सारण चौधरी को पूर्ण आश्वासन देते हुए कहा—"अब तुम्हें किसी भारी सकट की आशका नहीं करनी चाहिए, यदि तुम्हे विपत्ति ही भोगनी होती तो यहॉ आने का सकल्प ही तुम्हारे चित्त में नहीं उठता। गुरु के भरोसे पर तुम्हें यहॉ पूर्ण निर्भय हो जाना चाहिए।" महाराज सिद्धाचार्य की मर्म-स्पर्शी मधुर वाणी सुन कर सारण चौधरी गद्गद् हो गया।

फिर तरण तारण सिद्धेश्वर ने कहा— "पगु को यहॉ मेरे समीप लाओ" साथ के व्यक्तियों ने पगु को उठाकर, महाराज के श्री चरणों में डाल दिया। शरणागतवत्सल सिद्धेश्वर ने पगु के निष्प्राण शरीर पर सहला सहला कर हाथ फेरना शुरू किया। ज्यों ज्यों महाराज उस पगु के शरीर पर हाथ फेरते जाते थे त्यों त्यों उसमें अमृत-सिंचित लता की तरह प्राण संचरित होने लगे। कुछ ही समय बाद उसके समस्त अवयव यथारीति स्वस्थ हो गए। यह तो मानव था, महाराज तो नित्य ही व्याघातिक पशु-पक्षियों तक की सार-सभाल रखते थे। पर दु ख निवारणार्थ ही तो ऐसे अलौकिक एव विशिष्ट सन्त इस अवनितल पर अवतरित होते हैं।

परमार्थ परम्परा के नूतन प्रेरक सिद्धाचार्य ने पगु के समस्त सकटों को हरण कर लिया। पंगु यह अनुभव करने लगा कि उसके पैरों में इतना अधिक

बल आ गया है कि यदि उसे दौड़-स्पर्धा में भी भाग लेना पड़े तो वह किसी द्रुतगतिमान युवक से पीछे नहीं रहेगा।

सारण चौधरी और पंगु के पास ऐसी कोई वाणी की साधना नहीं थी कि जिसके द्वारा वह सिद्धाचार्य की कृतज्ञता का गुण गान कर सके।

दैत्य-मुक्ति के साथ ही पैरों के ठीक हो जाने से पंगु ने बड़े ही विनीत भाव से महाराज की प्रदक्षिणा की। पंगु को सिद्धाचार्य की परिक्रमा करते देख कर सभी हर्षोन्मत्त हो कर 'जय जय कार' करने लगे। सारण चौधरी और पंगु के भाग्य की सराहना करते हुए साथ के व्यक्तियों ने भी सिद्धाचार्य के दर्शन-लाभ से अपने को भाग्यशाली समझा। मन में कहने लगे—"पूर्व जन्म के पुण्य-प्रताप से ही ऐसे अलौकिक सिद्ध-पुरुषों के दर्शन होते हैं।"

सारण चौधरी ने अपना मनवांछित लाभ करके सिद्धेश्वर श्री जसनाथजी से अपने गाँव जाने की आज्ञा मांगी। सिद्धाचार्य ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। सारण चौधरी इस मौन को समझ गए और वे "होम-सात्यूँ"[1] के सुन्दर अधिवेशन से लाभ उठाने के लिये रुके रह गये। यह उत्सव हर मास की शुक्ला सप्तमी को मनाया जाता था और अब भी मनाया जाता है। जिसमें 'गोरखमाळिये' पर सन्निकट क्षेत्रों से प्रचुर लोगों का जमाव होता था एवं अब भी होता है।

सप्तमी के दिन एकत्रित जनसमुदाय बड़े ही एकाग्र चित्त एवं पूर्ण निष्ठा के साथ सिद्धाचार्य का धार्मिक प्रवचन सुनते थे तथा महाराज के समक्ष आत्म-निरीक्षण करते, नैतिक उत्थान के भावी-जीवन के लिए प्रतिज्ञायें करते और किसी ज्ञात अज्ञात अपराध के लिए "पाँचोळा" विधि से 'चळू' (पंचगव्य) लेकर प्रायश्चित भी करते थे।

---

(१) 'होम-सात्यूं' का अर्थ है— 'हवन सप्तमी' इस दिन यहां (कतरियासर गोरखमाळिये पर) यज्ञ-कर्म सम्पूर्णतया सम्पादित होता था और अब भी होता है।

आगन्तुक श्रद्धालु—भक्तजनों की ऐसी आत्मोन्नति की उच्च क्रियाओं एवं धारणाओं को देखकर सारण चौधरी के हृदय में एक बड़ा ही उच्च विचार उत्पन्न हुआ। उसने देखा मानव-जीवन की सच्ची सार्थकता तो ऐसे कृत्यों में है। मैं तो गिवार (मूर्ख, असभ्य) और उज्जड़ रहकर व्यर्थ ही देव–दुर्लभ मानव-जीवन को पतित बना रहा हूँ। चौधरी ने क्षण भर में अपने जीवन का सिंहावलोकन कर लिया। उसके जीवन का प्रवाह मुड़ गया, उसको अपने पिछले जीवन पर बड़ा ही पश्चात्ताप हो रहा था। अब वह संसृति के कुचक्र से अपनी आत्म–रक्षा करना चाहता था। अब उसे महान् सद्गुरु की प्राप्ति हो गई है। अब वह कर्तव्य–च्युत होकर जीवन नहीं बिता सकता। अब तो उसे कर्त्तव्याकर्त्तव्य का बोध करना ही है।[1]

सारण चौधरी ने विशाल-जन उपस्थिति के सामने ही निसंकोच भाव से सिद्धराज से विनय की – "आप द्वारा मेरे सब कष्टों की निवृत्ति हो गई, मैंने यहाँ पर आने वाले लोगों को देखा है, जिस तरह इन लोगों को आपके द्वारा पवित्रतम सात्विक दिनचर्या बिताने का सौभाग्य मिला है। प्रभु! ऐसे ही सत्संकल्प मैं अपने जीवन में अपने ग्राम और परिवार में मूर्त–रूप से चिरस्थायी देखना चाहता हूँ। अब आप मुझे ऐसा सुपथ बताइये जिस पर चलने से मेरा मेरे परिवार का और ग्राम का कल्याण हो।

सिद्ध-पुरुषों का सहवास यदि किसी का स्वच्छ परिवर्तन न करे तो जगत का कल्याण कैसे हो? सिद्धाचार्य ने पगु के पिता सारण चौधरी को उपदेश दिया। इससे पूर्व सारण चौधरी ने भी 'पाँचोला' में सम्मिलित हो कर "चळू" लेली थी इसलिए भी वह स्वभावत उपदेश-श्रवण करने का अधिकार प्राप्त कर चुका था। सिद्धाचार्य श्री जननाथजो ने सारण चौधरी

(१) श्रुति में कहा है—जो मनुष्य अपने कर्तव्य का पालन न करके मनुष्य जीवन को व्यर्थ खो रहे हैं। अपना अध पतन कर रहे हैं, उनको वहाँ "आत्म हत्यारा" कहा गया है।

(कल्याण, वर्ष २८, अंक ९, पृ० १२८७)

को प्रथम उपदेश निम्नलिखित "सबद" से दिया—

जिण गुरु नैं सिंवर हो पिराणी, जिण आ सिस्ट उपाई।
ओंकारे आप ऊपना, जळ सूँ जोत सवाई।
मार पलाथी तपस्या बैठ्या, जुगाँ छतीसाँ ताई।
कायम राजा फेरी मनो'री, कळ री माँड रचाई।
पै'लाँ पून पाणी परगास्या, चाँद सूरज दो भाई।
त्रिरमा, विस्न महेसर सिरज्या, आद भवानी माई।
इतरा तो गुरु पै'लाँ सिरज्या, पच्छैं सिस्ट उपाई।
नौ ओतार किया नरायण, (ॐ) परता पून रमाई।
मारै, तारै, दैंत सिंघारै, स्यामी वडो सरा'ई।
कोप्या कायम, फैरी मनो'री, मार खळो कर गा'ई।
कळ वीते काळँग' नैं मारै, करसी जुझ लड़ाई।
अड़सठ जोगण चाले वावैं, गैबी चकर चलाई।

हे प्राणी! उस गुरु (ईश्वर) का स्मरण करो, जिसने इस संसार को उत्पन्न किया। निराकार ओंकार से ईश्वर साकार हुए, तत्पश्चात् ईश्वर ने छत्तीस युगों तक तप-साधन किया। ईश्वर ने इच्छा की और सृष्टि की अवतारणा हुई। पहले पवन आदि पंचतत्त्वों को प्रकट किया, तत्पश्चात चंद्रमा, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और आद्यशक्ति का सृजन किया।

इनको तो ईश्वर ने पहले उत्पन्न किया, तदुपरान्त सकल संसृति को। संसार-हित-साधन के लिए ईश्वर ने नव अवतार धारण किए और इच्छित कार्य को पूरा कर अन्तर्ध्यान हो गए।

स्वामी बड़ा सराहने योग्य है। वही मारने वाला है, वही इस भव-सागर से पार लगाने वाला है। और वही दैत्यों का संहार करने वाला है।

सात समुद्र की खाई वाला लंका रावण का गढ़ था। रावण पर ईश्वर ने प्रकोप किया। उसको खलिहान की भाँति ध्वस्त डाला। भविष्य में भी कलियुग में होनेवाले "काळंग" राक्षस को मारने के लिए ईश्वर जूझेंगे! उस समय अड़सठ योगिनियों के आकस्मिक चक्र चलेंगे।

लेय बिसन्नर होम करेसी, फिरसी आण दुहाई।
गुरु परसादे गोरख बचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) वाँच सुणाई।

तदुपरांत अग्नि पूजा के साथ हवन होगा और निष्कलंक भगवान् की आन (मर्यादा) की दुहाई फिर जायेगी। गुरु की कृपा से गोरखनाथजी के बचनानुसार श्री देव जसनाथजी ने सारण चौधरी को ऐसा उपदेश दिया।

जसनाथी सिद्धों में ऐसी धारणा है कि सिद्धाचार्य द्वारा प्रतिपादित छत्तीस धर्म-नियमों का उपदेश सर्वप्रथम सारण चौधरी को ही दिया था।

सवत् १६०५ के हस्तलिखित "गुटके" (प्रति) में ऐसा पाठ अंकित किन्तु धर्म के छत्तीसों नियमों का उल्लेख इस "गुटके" के पाठ में नहीं पाया जाता। पाठान्तर भेद से यही नियम 'यशोनाथ-पुराण" में प्रकाशित हुए हैं।[1] "गुटके" का पाठ ऐसा है—

जो कोई जात हुवै जसनाथी, उत्तम करणी हालौ आछी।
राह चल अपना धर्म रख, भूख मर जीव न भख।
उत्तम केस रखाओ अच्छा, पै'ले नीर अधारै पिछै।
सचक शील सबूरी सूरत, सो मानो भगवानी मूरत।
दाओ देव नहीं कोई दूजो, जोतसरूपी परगट पूजो।
अतरा काम सब ही कीजो, ओठ बिसन्नर फूंक न दीजो।
जळ-पाणी तो छाण्यो पीजो, देही भोम समाधी लीजो।
मोख-मुकत रा मारग जोओ, किन्या द्रव्य न ब्याज बिसाओ।
बित्त सारो ही बिसर्यंत बाँटो, काया लगे नहीं कीड़ो काँटो।
अतरा ले हर दरगे आणी, पँथ बतावै जसनाथ (जी) जाणी।
मूरख हुँता पिंडत कीया, इस करणी गत लाधै भूया।
कुबद्या निंदा न आणों नैड़ी, (गुरु प्रसादे गोरख बचने
श्री देव जसनाथी जी कहैं) इण पँथ चडौ अगम री पैड़ी।

---

(१) जो जसनाथी धरम बरासी, उत्तम करणी राखो आसी।
जीव रक्षा कर भुख न आइये, दूध नीर नित न छाँण रखाइये।
शील स्नान सावरी सुरत, जोत पाठ परमेश्वर मूरत।

सप्तमी-सम्मेलन के अवसर पर एकत्रित हुए, सभी श्रद्धालु-भक्तों ने इन उपरोक्त छत्तीस धर्म-नियमों को सहर्ष स्वीकार किया। सिद्धाचार्य ने कहा— "जो इन धर्म-नियमों का पालन करेगा, उसे किसी प्रकार की सांघातिक क्षति नहीं उठानी पड़ेगी। वह सब प्रकार की सांसारिक पीड़ाओं से मुक्त रहेगा। जो प्राणी "पांचोव्ला" यज्ञवेदी के सामने बैठकर ' चळू" ले लेगा, वह सदा के लिए इस धर्म मे दीक्षित हुआ समझा जायेगा। जो मनुष्य "चळू लेकर" उपरोक्त नियमों के विपरीत आचरण करेगा वह अनेकानेक विपत्तियों से ग्रसित होकर समूल नष्ट हो जायेगा। उस आचरण-भ्रष्ट मनुष्य के बचने के लिए एक ही उपाय है, जैसा कहा है— "दोस हुवै इण जीव नैं कीजे पाचोव्लो, परभु, पडदो दूर कर, अन्तर पट खोलो।" कुल गुरु की मध्यस्थता से प्रायश्चित के लिए यज्ञ करके, धार्मिक-दण्ड स्वीकार करे।

होम जाप अग्नि सुर पूजा, अन्य देव मत मानो दूजा।
ऐंठे मुख पर फूंक न दीजो, निकमी बात काल मत कीजो।
मुख से राम नाम गुण लीजो, शिव शंकर को ध्यान धरीजो।
कन्या दाम कदे नहीं लीजो, ब्याज बसेवो दूर करीजो।
गुरु की आशा विसवंत बाँटो, काया लगे नहीं अग्नि काँटो।
होको तमाखू पीजे नाई, लमन अरि भाग दूर हटाई।
साटिये सोदा वर्जित ताई, बैल बढ़ावन पावे नाई।
मिरगा वन में रखत कराई, बेटा बकरा थाट मवाई।
दया धर्म सदा हि मन भाई, घर आयों सतकार सदाई।
निंदा कूड़ कपट नहीं कीजे चोरी जारी पर हर दीजे।
रजस्वला नारी दूर करीजे हाथ उनीका जल नहीं लीजे।
काला पानी पीजे नाहीं दश दिन सूतक पालो भाई।
कुल की काट करीजे नाई श्री जसनाथ गुरु फरमाई।

नेम छत्तीस हि धर्म के, कहै गुरु जसनाथ।
या विध धर्म सु धारसी, भव सागर तिरजात॥

(वही, यशोनाथ प्रकरण, पृ० ५३ से ५५ तक)

भविष्य में विपरीत आचरण न करने की प्रतिज्ञा करे और पुन "चळू" लेकर दीक्षित होवे।"

सिद्धाचार्य ने पुन सारण चौधरी को सम्बोधित करते हुए कहा—"हे सारण! देवों का प्रिय काम करो। (हवन, पूजन, यजन) ऐसा करने से देव तुम्हारे पर कृपा करेंगे। देव-कृपा से-दैहिक, दैविक और भौतिक तापों का नाश हो जायेगा। देवों को उचित भाग देने वाला मनुष्य, सुखी और स्वस्थ रहता है। उसके शरीर से सब दोष दूर हो जाते हैं।"

सारण चौधरी ने सिद्धाचार्य के प्रत्येक शब्द को अगीकार किया। अब वह भली भाति समझ गया कि मेरे पूर्व काल मे होने वाले कष्टों का यही कारण था कि मैं एकमात्र धन-संचय में ही अपने जीवन का उत्कर्ष समझता रहा। मैंने यदि इन बातों को पहिले समझा होता तो आयु के ये अमूल्य दिन कष्ट और प्रमाद में व्यतीत नहीं होते।

सप्तमी-सम्मेलन के अवसर पर सारण चौधरी ने अपने जीवन का अभूतपूर्व परिवर्तन देखा। वह "सिद्ध-धर्म" में ज्ञान-दीक्षित होकर अथवा सत्य तपादि का उपदेश लेकर सिद्धाचार्य का कृपा-पात्र शिष्य बन गया। उसने अब भावी-जीवन के लिए दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह सिद्धाचार्य के प्रत्येक आदर्श-उपदेशों को अपने जीवन में आत्मसात् करेगा।

सप्तमी-सम्मेलन के सपन्न होने पर, सारण चौधरी ने "ओंनमो आदेश" अभिवादन करके गुरु से विदा ली और अपने ग्राम की ओर प्रस्थान किया।

कतरियासर से बीकानेर पहुँच ने पर सारण चौधरी ने घड़सीजी को वह 'शैल' और 'ताजना' वापिस लौटाया जिसको पगु छीन कर कतरियासर लेगया था। राव घडसी आदि के पूछने पर सारण चौधरी ने कतरियासर की समस्त स्थितियों से उन्हें परिचित किया एव अपने गाँव लालमदेसर चला गया।

---

(१) यह घटना वि० स० १५६१ की है। उस समय बीकानेर पर राव बीकाजी के ज्येष्ठ पुत्र राव नरोजी राज्य करते थे, बीकाजी के अन्य पुत्र लूणकरण, घडसी आदि राज्य के सगरक्षक सामन्त थे और राज्य की प्रत्येक गतिविधि पर सतर्कतापूर्ण दृष्टि रखते थे।

राव लूणकरणजी को वरदान व घड़सीजी का पराभव—

सारण चौधरी के पंगु लड़के ने बीकानेर राव बीकाजी के पुत्र घडसीजी का 'ताजना' व सांग (शैल) जो अपने बल पराक्रम से उनसे छीन कर कतरियासर ले आया था, वह सिद्धाचार्य द्वारा ठीक किये जाने पर पंगु ने लौटते समय उन्हें वापिस किया। लूणकरणजी तथा घड़सीजी ने कतरियासर जाते समय सारण चौधरी के पंगु लड़के की स्थिति को अच्छी तरह से देखा था। "ताजना" वह सांग लौटाते समय वह पूर्ण स्वस्थ अवस्था में दृष्टिगत हुआ। इस चमत्कृति से लूणकरणजी के हृदय में सिद्धाचार्य के प्रति श्रद्धा के भाव जागृत हुए। विपरीत घड़सीजी के हृदय में सिद्धाचार्य के प्रति ईर्ष्या जागृत हुई। बहुधा देखा जाता है कि सिद्ध पुरुषों के आश्चर्य जनक कार्यों को देखकर लोगों के हृदय में उनके प्रति श्रद्धा होती है, किन्तु घड़सीजी के हृदय में तो सिद्धाचार्य के प्रति अधिकाधिक ईर्ष्या के भाव ही उत्पन्न हुए। इस वृत्त को सुनकर परस्पर एक दिन कतरियासर चलने का विचार प्रकट किया गया और निश्चयानुसार विक्रम सं० १५६१ श्रावण कृष्णा अष्टमी[1] को लूणकरणजी, घड़सीजी, अड़मीजी और उनके कामदार अश्वारोही होकर अपने गंतव्य स्थल की ओर चल पड़े।

जब इन अश्वारूढ लोगों ने कतरियासर की परिधि में प्रवेश करना चाहा तो इनके घोड़े वहीं रुक गये, आगे नहीं बढ़ सके[2]। इन्होंने बड़ा प्रयत्न किया, पर घोड़े टस से मस न हुए। निदान इनको घोड़ों से नीचे उतर कर ही, गोरखमाळिये की ओर पैदल चलना पड़ा।

---

(१) यह संवत् "सिद्धचरित्र" के अन्वेषण काल में, सिद्धों के एक गाँव में प्राप्त प्राचीन पत्र में अंकित है, जो हमारे संग्रह में है।

(२) लडसी घडसी जब चाल दये, जसनाथ मिलाप सु जावत्यें।
कतरासर के ढिग आय लये, मन में कपटी कपटाय गये।
निज "ओरण" में हय ठेर गये, पग पैदल से नर चाल दये।
जसनाथ समीप सु देख रये, मन में कुछ दम्भ दिखाय गये।

लूणकरणजी सिद्धाचार्य की "वाड़ी" के बाहर ही अपनी कमर के अस्त्र-शस्त्र खोल कर विनीत-भाव से सिद्धराज के पास गये, श्रद्धा नतमस्तक से 'ॐ नमो आदेश" अभिवादन किया एवं पत्र-पुष्प भेंट कर उनके समीप बैठ गये।

देहाभिमानी घडसी ने उद्दण्डतापूर्ण मनोवृत्ति से उनकी सिद्धाई की परीक्षा करनी चाही। घडसीजी ने पहले से ही चातुर्यपूर्ण ढंग से आधे रुपये खोटे और आधे रुपये सच्चे, एक थैली में भर लिए और वह थैली श्री जसनाथजी को समर्पित की। तब सिद्धाचार्य ने अपने प्रिय शिष्य को संबोधित करते हुए कहा—

"हरा रै हरा, आधा खोटा, आधा खरा।
खोट खोटेडॉ पडसी, राज बीको लूणकरण करसी[1]।

अर्थात् "हरा! अरे हरा!! आधे रुपये खोटे हैं और आधे सच्चे हैं। यह कपट, कपट करने वालों पर पडेगा तथा बीकनेर का राज्य बीकाजी का पुत्र लूणकरण करेगा।"

यह सुनकर घडसी ने आवेश से कहा— "करसी धूड और भाटो।" सिद्धाचार्य ने कहा — धूड़' (धूल, रेत) में धरती और भाटे (पत्थर) में गढ़[1]। सिद्धाचार्य ने लूणकरणजी को राज्य-प्राप्ति का वरदान देते हुए धरती एवं गढ के लाभ का वरदान दिया।

---

(१) घडसीजी सुन लीजिये, तुम से सरे न काज।
सार वचन जसनाथ के, लूणकरण को राज॥
(यशोनाथ पुराण पृ० ४६)

अटमी घडसी दो राजेश्वर आया, ऊपर साया ने मन मे कपटाया।
योगी साचा तो साच फरमावै। राजगादी मम किण दिन आवै।
श्रीजसनाथजी ऐडा फरमाया, करणी कोटे थे जावो रे भाया॥
अडसी घडसी खोटाई पडसी, राज बीकाणै लूणोजी करसी॥
(सिद्धजी रो सिरळोको)

(२) राजस्थानी में धूड रेत को कहते है, एवं भाटा पत्थर को कहा जाता है यहाँ लक्षणा से धूड धरती और भाटो गढ का वाचक है।

चइमीजी को इस वरदान से आश्चर्य होना स्वाभाविक था। क्योंकि उस समय बीकानेर राज्य पर बीकाजी के ज्येष्ठ पुत्र राव नरोजी सिंहासनारूढ थे। किन्तु कुछ ही समय बाद नरोजी का देहान्त होगया और सिद्धाचार्य के वचनानुसार लूणकरणजी को बीकानेर राज्य की प्राप्ति हुई।

राव लूणकरणजी ने सिद्धाचार्य से प्रश्न किया – "महाराज ! हमारा राज्य कितने समय तक हमारे हस्तगत रहेगा ?" सिद्धाचार्य ने उत्तर देते हुए कहा--"आपका राज्य साढे तीनसौ वर्ष तक पूर्णरूप से आपके अधिकार में रहेगा। तत्पश्चात् यहाँ विदेशियों का शासन होगा। उनके सामने समस्त राजपूत जाति नतमस्तक होकर रहेगी।" राव लूणकरण द्वारा विदेशियों के लक्षण एवं कार्यकलाप पूछे जाने पर सिद्धाचार्य ने निम्नांकित "सबद" कथन किया--

काळा बखतर पुरख पचाधा, पूरब दिसां सूँ आवेंला।
उत्तर दीखण पूरब पछिम, चक च्यारूँ निरतावेंला।
देस देस रा माल दिखावें, पई पई खरचावेंला।
जळ में तार प्रजाळ, (पाणी) एको तार लगावेंला।
कोटां ऊपर कोट चिणावें, अपरा हुकम चलावेंला।
रजपूता री रज वट जासी, न कोई कान हलावेंला।
साध घटेंला मेछ वधेंला, एको बाइन्दो बा'वेंला।
थे मत जाणो मील गुमावें, सुर नुर लेग्वे लावेंला।
थळ माथे सिध साधक होसी, ज्हाँ मिलण गुरु आवेंला।
भगवां टोप गळे जप माळा, थळ सर जोत जगावेंला।
पच्छें साध वधेंला मेछ घटेंला, गोरख जोगी आवेंला।
काळ'ग मारें कुळ बरतावें, निकळ'ग आण फिरावेंला।
गुरु परसादे गोरख वचने. (श्रीदेव) जसनाथ(जी)
आगूं वचन सुणावेंला।

इस 'सबद' में श्वेताङ्ग अंग्रेजों का विवरण दिया है। उपरोक्त विवरण के अनुसार भारत पर अंग्रेजों का शासन हुआ और समस्त राजपूत जाति उनके सामने नतमस्तक होकर पराधीन रूप में रही। प्रश्नोत्तर काल में राव लूणकरणजी ने सिद्धाचार्य से भविष्य में होनेवाली अनेकों घटनाओं के विषय में पूछा[1], तथा सामाजिक स्थिति के बारे में भी जिज्ञासा की जैसा "यशोनाथ-पुराण" में अंकित है[2]।

---

(१) इस विषय में "निकळग परवाण" एक स्वतन्त्र रचना है। जिसमे निष्कलक भगवान् द्वारा 'काळग' के वध की कथा है।

(२) निमक हराम करै नर सोई, कूड़ा कपट बिन शब्द न होई।
सब नर शूद्र स्वरूप दिखावे, ऊँच नीच को एक जनावें ॥ १ ॥
धर्म अधर्म सरूप न जाने, अधर्म को ही धर्म कर माने।
ताको फल दु ख पाप कहावे, गुरु चेला सब नरक पठावे ॥ २ ॥
जति सती सत्य रूप न दीसै, नारी दांत पती पर पीसै।
मात पिता को दुर्जन जाने, दुर्जन को निज मिंत पिछाने ॥ ३ ॥
निंदक वेद विरुद्ध चलानी, ताको सब जन पूज करानी।
कलेस अनंत दु ख सब नर पावे, पर ततर सब पाप करावे ॥ ४ ॥
परणी नार'रु पुरुष कु'वारा, सो घर मण्डित करे 'हि विहारा।
वेद विद्या पढे नर नाही, सब नर पशु समान दिखाहीं ॥ ५ ॥
सुहागण विधवा एक सरूपा, विधवा सिणगार करत अनूपा।
रडी की रडी गुरु होवे, ज्ञान प्रयोजन कोय न जोवे ॥ ६ ॥
अन्धे को अन्धा मिल जावे, सो नर वाट किसी विद पावे।
ज्ञानी गुरु विन ज्ञान न आवे, ज्ञान विना मुक्ति नहीं पावे ॥ ७ ॥
करत सकाम सदा सब कोई, ताको तुच्छ फल मुक्त न होई।
आवत कलियुग रोळ मचाई, सब नर नीचि कोटि मिलजाई ॥ ८ ॥
धर्म विपय पर दूर भगावे, पाप विपय पर हाजर आवै।
कोड़ पुरुप में एक सु ज्ञानी, जो जन भेद जगत नहिं जानी ॥ ९ ॥
पाप कर्म जन लोभ अज्ञानी, हृदय कमल मल दोप व छानी।
सिध जसनाथ की जो सुन वानी, या जुगसे रहिये निरवानी ॥ १० ॥

लूणकरणजी ने महाराज से फिर प्रश्न किया— महाराज ! मुझे "राज्य गद्दी" कैसे प्राप्त होगी, मैं तो छोटा हूँ, तब सिद्धेश्वर ने फरमाया—

"बीकपुरॉ सूँ आई वाचा, सीलों सबदाँ रहज्यो साचा।
वर्वे अटारी वर्वे अटारा, लूणकरण सब चाकर थारा।
कुबदा निन्दरा आणो ना काई, ऑख्यॉ अंच्छर देखो भाई[1]।"

कहते हैं घड़सीजी इस वार्तालाप से पहिले ही गोरखमाळिये से उठ कर 'बाड़ी' से बाहर आगये थे। कुछ समय बाद लूणकरणजी भी वहाँ आये तब घड़सीजी ने लूणकरणजी से पूछा— "तुम्हारे सिद्धेश्वर महात्मा ने और क्या वरदान दे डाला"? लूणकरणजी ने कहा— मेरे पूछने पर सिद्धेश्वर ने कहा— "तुम्हारा राज्य साढे तीनसौ वर्ष रहेगा।" तब घड़सीजी ने कहा— "आपको पूछना चाहिए था कि उसके बाद क्या होगा और ऐसा क्या उपाय किया जाय जिससे राज्य हमारे अधिकार में ही रहे। चलिए उन्हें पुनः पूछ लेते हैं।" ऐसा कहकर घड़सीजी लूणकरणजी सहित सबको साथ लेकर महाराज के पास गोरखमाळिये पर गए, तब तक सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ध्यान–समाधि लगा चुके थे। महाराज को इतनी जल्दी ही ध्यान–मुद्रा में देख कर घड़सीजी को रोष चढ आया, वे सिद्धाचार्य पर आग-बबूला हो उठे और अकारण ही सिद्धेश्वर को नीचा दिखाने की युक्ति सोचने लगे। आवेश में आकर घड़सीजी ने कहा— "अब यह पाखण्डी ऐसे नहीं बोलेगा।" यह कर पास में ही रखी हुई 'हवन-वेदी' को सिद्धाचार्य से सटाकर तथा उसमें लकड़ियें डाल कर अग्नि जलादी' तब सिद्धेश्वर ने इनको ऐसे विभत्स कार्य में रत देखकर समाधि को तोड़ते हुए कहा— "जळना बळना सौ बरस और रैंसी"[2] अर्थात् पराधीन रूप में सौ वर्ष राज्य और रहेगा, इसके बाद

---

(१) बीकां बिदां कान्धलां, मुग मालक न रैंसो राज,
अठाण् अदर्ने में जासी ऊपर फिर उदासी व्याज।
राजपूत नौकरी करसी, परदेसी करसी राज।

(२) ऐसी किंवदन्ति भी है कि सिद्धेश्वर ने लूणकरणजी को कहा था कि तुम्हारा राज्य आठों (दिशा) में रहेगा। तब से राज्य के अन्य प्रतीकों (जैसे छत्र, त्रिशूल)

तुम्हारी सन्तान घर बैठ जायेगी। सिद्धेश्वर की यह बात घड़सी तथा उनके कामदारों (मन्त्रियों) को बुरी लगी, कामदारों ने व्यग्यात्मक स्वर में पूछा— 'महाराज! आप इतने बड़े सिद्ध-पुरुष हैं तो बतलाइये हम पूर्व जन्म में कौन थे।" सिद्धेश्वर ने कहा— 'तुम पूर्व जन्म में चमार थे और जूता बनाने का काम करते थे, विश्वास के लिए जाकर देखलो अमुक स्थान पर तुम्हारे जूता बनाने के औजार जमीन में गडे हैं।" कहते हैं खोद कर देखा तो बात यथावत् निकली। इस बात से दुष्टात्मा घड़सी और भी चिढ़ गया और राज्याभिमान में बोला— 'इस धरती के तो हम ही मालिक है अतएव बिना हमारी आज्ञा के तुम्हें यहाँ रहने का कोई अधिकार नहीं हैं।" तब सिद्धाचार्य ने दम्भी घड़सी को सबोधित कर यह 'सबद' कहा—

इण धर राजा इन्द भणीजै, सो म्हाराज कुहाणू।
राणा रावण आगळ हुआ, ज्हाँ हँकार'ज न आणू।
इण धर परछै चकवा हुआ, जाँ कोई गरब न आणू।
गरब कियो उण चकवै-चकवी, रैण विछोड़ो पाणू।

इस धरती का राजा तो इन्द्र कहलाता है वस्तुत महाराजा कहलाने के अधिकारी भी वहीं हैं क्योंकि इन्द्र के द्वारा वर्षा करने से ही तो यह धरती उर्वरा होती है। राजा महाराजा तो इस पृथ्वी पर पहिले भी हुए हैं, पर क्या उन्होंने कभी अभिमान किया था?

इस पृथ्वी पर पूर्वकाल में छै चक्रवर्ती सम्राट हो चुके हैं परन्तु उन्होंने किसी प्रकार का कोई अभिमान नहीं किया। गर्व किया था उस 'चकवे' और 'चकवी' ने जिससे उस पक्षिदम्पति को रात्रि वियोग का दुष्परिणाम भोगना पड़ताहै।

की तरह श्री जमनाथजी के इष्टरूप में जाळ वृक्ष को भी अपना राज्य प्रतीक माना। 'बीकानेरी झण्डे' में तथा 'गगाशाही' रुपये में जाळ वृक्ष अकित है। महाराजा श्री गंगासिहजी ने एक बार फरमान निकाला था कि समस्त सरकारी कार्यालय के मैदानो में जाळ वृक्ष लगाया जाय और इसी उद्देश्य से लालगढ का राजमहल जाळ वृक्षो से घिरे हुए मैदान में बनवाया था।

गरब कियो लंकापत रावण, तोड़्यो सबळ ठिकाणू।
मंदोदर रो कह्यो न मान्यो, जम्भि राज गमाणू।
रावण जाय सताया तपसी, काया अशं'ज ताणू।
पांच किरोड़ पहलादो सीधो, जाँ सिव संकर जाणू।
सात किरोड़ाँ राव हरिचंद, जाँ सतशील बखाणू।
नवां किरोड़ाँ राव जहुठळ, जाँ भगवान पिछाणू।
भगवों बानो हितकर मानो, जुग जुग जसवन्त जाणू।
भगवें सूँ चोळ करी दूरजोजन, जांतें को नांव न जाणू।
गरब करै ना गै'ला घड़मल! ओ थारो राज न जाणू।
राज दियो म्हे लूणकरण नै, गुरु गोरख परवाणू।

लंकापति रावण ने गर्व किया जिसको श्रीरामचन्द्रजी ने मार कर उसके सबल एवं दुर्जेय गढ़ लंका को नष्ट कर दिया। महारानी मंदोदरी ने रावण को बहुत समझाया पर उसने रानी की बात की कोई परवाह नहीं की, इसीलिए रावण को अपने राज्य से ही नहीं बल्कि अपनी देह से भी हाथ धोना पड़ा। रावण ने वनवासी तपस्वी-ऋषिमुनियों को सताया था और उसने उनके शरीर से रक्त निकाल लिया था, इसी रक्तांश के द्वारा उसका सर्वनाश हुआ।

भक्त प्रह्लाद ने राक्षस कुल मे जन्म लेने पर भी कल्याण-स्वरूप भगवान शंकर को पहिचाना, इसीलिए वह पाँच करोड़ प्राणियों को अपने साथ लेकर मोक्ष-धाम को पहुँचा। जिसने अपने जीवन में सदा सर्वदा सत्य भाषण और शील-व्रत का ही अनुसरण किया वे महाराजा हरिश्चन्द्र सात कोटि प्राणियों को साथ लेकर स्वर्ग पहुँचे और भगवान को प्रत्यक्ष पह-चान ने वाले महाराजा युधिष्ठिर ने अपने सत्य-ज्ञान और भक्ति के बल पर नव करोड़ प्राणियों को मोक्ष का अधिकारी बनाया।

प्रत्येक युग में यशस्वी बनने वाले को 'भगवों बानो' अर्थात् वीतराग पुरुष को अपना हितैषी समझना चाहिए। हे पागल घड़सी! अभिमान मत कर यह राज्य तुम अपना मत समझ। गुरु गोरखनाथजी के 'प्रमाण' से यह राज्य हमने लूणकरण को दे दिया है।

ऊनथ नाथाँ अनथी निवावाँ, करो जका मन भाणू ।
तीन लोक रा नाथ भणीजाँ, थळसर रचियो थाणू ।
काळॅग माराँ कुळ बरतावाँ, निकळॅग नावं कुहाणू ।
गुरु परसादे गोरख बचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) असली ग्यान बखाणू ।

तुम्हारे मन में जो विचार उठ रहे हैं मैं उन्हें अच्छी प्रकार पहिचानता हूँ किन्तु तुम यह नहीं जानते कि हम वश में नही आने वालों को भी अपने वशीभूत कर लेते हैं तथा नहीं झुकने वालों को भी झुका लेते हैं, हम इस लोक के ही नहीं अपितु तीनों लोकों के स्वामी हैं पर अभी हमने 'थळी' में ही अपना स्थान स्थापित किया है अत निष्कलंक नाम को सार्थक करने के लिए ही 'काळग' राक्षस को मार कर कलियुग की समाप्ति करेंगे। मैं ऐसा वास्तविक ज्ञान गोरखनाथजी के बचनों में ही कथन करता हूँ।

घडसी के कलुषित हृदय में महाराज की यह बातें कोई परिवर्तन न ला सकीं, विपरीत घड़सीजी को महाराज की इन बातों में गर्वोक्ति ही प्रतीत हुई। घडसीजी ने महाराज से कहा— "अभी तो आपको जन्म लिए ही अधिक समय नहीं हुआ, युवावस्था को तो प्राप्त हुए ही नहीं और तीनों लोकों के स्वामी बनने लगे। इस धरती पर तो एकमात्र हमारा ही अधिकार है, हम ऐसी बातों से प्रभावित होने वाले नहीं हैं, हमारे से कम वयस्क होने पर भी हमें उपदेश देता है।

सिद्धाचार्य ने पुन निम्नांकित 'सबद' से घड़सी को अपना आध्यात्मिक परिचय दिया—

सांभळ राव'र सांभळ राणा, सांभळ हिन्दू मुसळमाणा ।
सांभळ वेद कतेब कुराणा, उमत वावै आद उपाई
सांभळ जुग संसारा ।

हे राव ! सुनो, हे राणा ! सुनो, सर्व हिन्दू मुसलमान सुनलें— वेद, शास्त्र और कुरान सब सुनलें, सारा ससार सुनले— ॐकार रूप पितामह द्वारा ही सारी सृष्टि की रचना हुई है।

जोग छतीसाँ और बतीसाँ, पैलाँ अन्त न पारा।
से नर जाणै तहाँ पर वाणै, परलै धंधुकारा ।
माय न होंती बाप न हुँता, पूत नहीं परवारा।
जामण मरण बिछोह न होंता, ना कोई हेत पियारा।
गिगन मण्डल में छतर न हुँतों, आभ न हुँता तारा।
चन्द न सूर न पून न पाणी, न धरती गेणारा ।
सातु सायर अै न हुँता, नौसे नदी झलारा ।
अठकळ परबत अै न हुँता, बणी अठारै भारा।
तंत न मंत न जड़ी न बूँटी, न दीसँत दीदारा।
चोये चकेनो ये खण्डे इक्कीसे विरमण्डे, एकै बचन उधारा।

छत्तीसों प्रकार के योग और बत्तीसों प्रकार के साधन[1]— अन्त नहीं जा सकते. जिसने आत्मा को जान लिया है वही सब कुछ समझता है, अन्यथा सर्वत्र प्रलयकालीन अन्धकार ही है।

जब माता नहीं थी, पिता नहीं था, पुत्र और परिवार नहीं था, जन्म-मरण और वियोग नहीं था, न कोई स्नेही था न प्यारा, गगन-मण्डल में छत्र नहीं था, नभ में तारे नहीं थे, चन्द्र, सूर्य, पानी, धरती, आकाश इनमें से कोई नहीं था— और ये सातों समुद्र भी नहीं थे, नौ सौ नदियाँ भी नहीं थीं— अष्टकुली नाग और आठों पर्वत नहीं थे, अठारह भार वाली वनस्पतियाँ नहीं थीं, तंत्र, मन्त्र जड़ी-बूटी आदि कुछ भी दिखलाई नहीं पड़ती थी— तब भी चतुर्दिक् नौ खण्डों और इक्कीस ब्रह्माण्डों में ॐकार रूप एक शब्द-नाम ही सबका आधार भूत था।

(१) 'जोग छतीसां (३६+३२) अर्थात् ३६ और ३२ का योग अर्थात् ६८ तीर्थ भी जिसके भेद को नहीं पा सकते, यह भी अर्थ हो सकता है। ३६ (वाम मार्गी) और ३२ (दक्षिण मार्गी) संख्या से इस प्रकार का कूट तात्पर्य भी निकल सकता है।

अबरी घड़सी काँसु बूझै जदरा देवाँ विचारा ।
आप अपंपर फेरी मनस्या, फेर रच्या ओतारा ।
म्हे तो घड़सी जद ही हुँता, बरतन्ता धंधुकारा ।
आप ही करता आपही भरता, आपही इस्ट विचारा ।
बाद वथोड़ समद पड़या है, किण विद लंघसी पारा ।
कळजुग में निकळंगी भणियाँ, थळ माथै ओतारा ।
गुरु प्रसादे गोरख बचने (श्रीदेव) जसनाथ (जी)
असली ग्यान विचारा ।

हे घडसी ! तुम क्या समझ पाओगे— जितने देवता हैं सब विचार कर रह गये— आत्मा अपरम्पार है— उसने इच्छा की और सृष्टि की अवतारणा हुई। हे घडसी ! जब प्रारम्भ में सवत्र अन्धकार था तब भी हम तो थे— आत्मा ही कर्ता, हर्ता और इष्ट है— वाग्जाल अथवा झंझट रूप अथाह समुद्र वीच में पडा है. किस प्रकार तुम पार लगोगे ?

'रावण कै तो बाही भावण" के अनुसार घड़सी के दम्भ भरने की सीमा नहीं रही। घडसी ने सिद्धाचार्य से वाद विवाद करने में सीमोल्लंघन कर दिया। अत सिद्धाचार्य ने घडसी को यह सबद' और कहा—

मकर भूल्या माघ पिराणी, काचै कान्दै गाजु ।
काचो कान्दो है कुमळाणो, ज्यूँ तोड़योड़ो सागु ।
काचो कान्दो गळमळ जासी, वीसर जासी राजु ।

हे प्राणी ! तुम व्यर्थ ही छल और घमण्ड में भूल कर इस नश्वर शरीर से गर्जना करते हो। यह कच्चा शरीर एक दिन अलसा जायेगा जैसे— तोडने पर हरा साग अलसा जाता है । यह नश्वर-शरीर गल या जल कर नष्ट हो जायेगा, तब राज्य को तो भूलना ही पड़ेगा ।

४ गजमल घड़िया बाजा बाजैं, लोह घड़्या चाम मँढाया
डुमा'ज ढोला, म्हारै गुरु रैं, बाजा बाजैं बिन गज घड़ियाँ
बिन गज मँडिया बिन छिणमणियाँ बिन लाकड़ियाँ
घड़सी ! बाजण लाग्या बाजुँ।
परसण' खंड़्या बाजा बाजैं, सुरनर देव धियावो नाहीं
हिन्दू मुसळमान पिराणी, डर डर जिवड़ो काजुँ।
रावाँ रंकाँ खाना खोजाँ, मलक फकीराँ सब गरीबाँ।
इतरा माथैं कुण बसेपो घड़सी, मरणैं रो एको मागुँ।
आवँतड़ो 'जी' के ले आयो, जावँत के ले 'जागुँ।
अवँतड़ा दस मास लगाया, जाँता रतिय न लांगुँ।
पीपळ पान झड़े झड़ जासी, और भलेरा – लागुँ।

हे घड़सी ! तुम लोगों के तो लोहनिर्मित, चमड़े से मढे हुए तथा डोमो के ढोल जैसे बाजे बजते हैं किन्तु हमारे गुरु के तो बिना किसी धातु से निर्मित बिना चमड़े से मंढे हुए, बिना झाँझ, मजीरा और बिना लकड़ी अर्थात् बिना डंडे के बाजे बजते हैं। हमारे वाद्य बादल जैसी ध्वनि करते हैं और उन प्राणियों के हृदय में सिहरन भी पैदा कर देते हैं जो तथाकथित हिन्दू और मुसलमान होने के दावेदार तो हैं परन्तु ईश्वराराधना से बहुत दूर रहते हैं।

हे घड़सी ! राजा, रंक, सामन्त, सेवक, बादशाह, गृहस्थी, साधु, धनी और गरीब इन सबके मरने का एक ही रास्ता है, अर्थात् मृत्यु से कोई भी बच नहीं सकता। यह जीव जन्मते समय कुछ साथ नहीं लाया और न मृत्यु के समय कुछ साथ ले जा सकेगा। जन्म लेने में दस मास का समय लगा परन्तु जाने में क्षणभर का भी विलम्ब नहीं होगा।

पतझड़ में जैसे पीपल के पुराने पत्ते गिर जाते हैं और बसन्त आने पर नये पत्ते प्रस्फुटित होते हैं, ठीक यही गति इस संसार की है।

(१) पाठान्तर— परसण = बादल। (२) [illegible]

केवैं तमेरूँ फिरै मकेरूँ, चोजुग फेरूँ घड़सीजी ओ
पाँतरियाँ बे मागुँ ।
रंगतू रीखूँ सीखो पाँखू[1], थारी काया कुमळाणी ज्यूँ सागुँ ।
कूकर बुगरो साग भणीजै, नागर वेली सागुँ ।
अन्तेव्रर-सा वासक नाग भणीजे, वाँडकियाँ बे नागुँ ।
एक'ज टोळो हँसा (रो) टोळो, बुगलाँ टोळो बागुँ ।
एक राग श्री कानजी रागी, और बे रागै रागुँ ।
एक वी पाग दशासर बान्धी, और वी वान्धे पागुँ ।
एक वी खाग मे'रावण खागी, ओर बे खागे खागुँ ।
एक'ज पाज श्रीरामजी वान्धी, और वी वान्धे पाजुँ ।
हर रा हीड़ा हणमत सारथा, और वी सारे सारूँ ।
एक वी लाज लाखणजी लाजी, निरे निराले निरे निरंजण ।

हे घड़सी ! बोलते हो जब क्रोध से सने हुए बोलते हो और अभि-मान में ऐंठकर चलते हो, ऐसे पथ-भ्रान्त प्राणी कुमार्ग पर ही अग्रसर होंगे । अच्छे गुण और शिक्षा को ग्रहण करो नहीं तो तुम्हारा यह शरीर हरे साग की तरह अलसा जायेगा ।

दुर्गन्धयुक्त विपाक्त कुकर भाँगरा ही जब साग है तो फिर नागरबेल को क्या कहेंगे । अत्यन्त श्रेष्ठ वासुकि नाग ही वास्तव में सर्पराज कहलाने योग्य है फिर विषैले क्षुद्र सापों को नाग क्यों कहा जाय । हँस तो हँस ही रहेंगे बगुलों के झुण्ड चाहे बगीचों में ही क्यों न दिखाई दें ।

श्रीकृष्ण ने जैसी राग गाई क्या ! वैसी राग और कोई दूसरा गाने में समर्थ हो सकता है ? दशानन रावण ने जैसी पगड़ी बान्धी, अभिमान से सर ऊँचा किया । क्या वैसी पगड़ी और भी कोई बान्ध सकता है ? अहिरावण ने जैसी तलवार उठाई थी वैसी क्या ! तलवार और भी कोई उठा सकता है ? श्रीरामचन्द्रजी ने जैसी सेतु वान्धी थी क्या ! वैसी सेतु दूसरा कोई बान्धने में समर्थ हो सकता है ? जैसा कार्य हनुमानजी ने किया क्या ! वैसा कार्य और कोई कर सकता है ?

---

(१) पाठान्तर - रजतू रेतु सेतु पातु ।

एके आसण गोरख आगळ धंधुकारे, जुगाँ छतीसाँ और
बतीसाँ और बी लाजे लाजुँ ।
जम जरवाणू जरा जबर कंस, चंडू रै निरदळिया दाणु
हर रै नावं विना रतिय न रै'लो राजुँ ।
रतिय न रै'लो राज, दाणू दैत सिंघारिया ।
जीतै किसनमुरार, दाणू भोभो हारिया ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी)
असली ग्यान उचारिया ।

लज्जा की मर्यादा का जैसा लक्ष्मणजी ने और सर्वथा निर्पेक्ष एव शुद्ध रह कर गोरखनाथजी ने इस प्रपंचावृत कहे जाने वाले संसार में पालन किया क्या ! लज्जा की वैसी मर्यादा और कोई रख सकता है ?

महाबलशाली यमराज ने जरासन्ध, कंस और चाणूर जैसे बलिष्ठदानवों का वध कर दिया। हे घडसी ! फिर तुम जैसों की तो गिनती ही क्या ! भगवान् के नाम विना रत्तीभर भी राज्य नहीं रह सकता। दानव-दैत्यों का तो संहार ही होगा। मुरारि श्रीकृष्ण की ही जीत होगी दानव तो जन्म जन्मान्तर में परास्त ही होंगे। गुरु गोरखनाथजी की कृपा से श्रीदेव जसनाथजी ने ऐसा ज्ञानोपदेश दिया।

यह सब सुनकर भी घड़सीजी किसी प्रकार का आध्यात्मिक लाभ न उठा सके और वे अपने साथियों सहित बीकानेर चले गए। बीकानेर जाने पर घड़सीजी पागल हो गए— अपने स्थान पहुँचे तब तक उनको कोई सुधि नहीं रही, वे कभी घोड़ों पर जीन कसते कभी पुनः उतारने लगते, यह क्रम कई देर तक चलता रहा। जब उनकी माता को यह सारा वृत्तान्त मालूम हुआ तो वह पुनः घड़सीजी को साथ लेकर कतरियासर आई और सिद्धाचार्य से घड़सी के ठीक होने के लिए प्रार्थना की—"कोड़ गुनाह छाह करैं, मेट करैं मा'रन" हे महाराज ! आप तो पिता के तुल्य हैं यद्यपि घड़सी ने अपराध किया है फिर भी आप मेरी विनीत प्रार्थना पर इसे कृपा पूर्वक क्षमा प्रदान

करें। सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने घड़सी को क्षमा दान दिया, इस घटना से सम्बन्धित जसनाथी सिद्धों में यह 'सबद' प्रचलित है—

देव निकळंगजी परगट्या, जोत जगाई नाथ ।
गोरखनाथ आद का जोगी, जसवन्त धणी सदाई साथ ।
भोळी दुनियाँ फिरै भटकती, आँ घरां सूं बाँधै वाद ।
घड़सीजी नै पटा वा'र ला, (अगस्या) लूणकरण नै दीन्यो राज ।
गढ़ री नींव दीवि नारायण, पुन री बाँधीज्यो थे पाज ।
करणी माता किरपा कर आया, देशनोक में थरप्यो थान ।
करणीजी री सेवा कीज्यो, जसनाथजी रो धरज्यो ध्यान ।
खटदरसण पर दया राखज्यो, आँ वाताँ दरगा पावो मान ।
परजा थारी सुख पावैली, इन्दर दे आवैलो गाज ।
... ... बीका थे जुगजुग करज्यो राज[1] ।

---

(१) किंवदन्ति है कि—सिद्धाचार्य श्रीजसनाथजी ने लूणकरणजी को यह 'सबद' भी कहा था इस 'सबद' में वर्तमान समय का यथार्थ विवरण मिलता है—

राजा न्याव धरम नहीं सूझै, ल्याओ ल्याव लगाई ।
रै'त बिचारी कुणनै पुकारै, कूण करै सुणाई ।
जोर जबर तो चालै नाहीं, नहीं चालै नरमाई ।
सूरवीर पडित व्योपारी, गुणी जन है निकमाई ।
चुगलखोर चुसकर लपटी, तेजी लगी है ताई ।
स्यामी जोगी जती सन्यासी, दण्ड फकीर गुंसाई ।
वन माया की लगी लालसा, करसी पेट भराई ।
विपर कह कोई विरला सीधा, हर पूजैगा नाहीं ।
मन मतवाळ्या भया सब भोपत, एक सूँ एक इदकाई ।
दुनियाँ में कुण धरम चलावै, किणविद हुवै भलाई ।
नीवत धरम भया सब नासत, राजा कपटी भया कनाई ।
. . .. आगूं वांच सुणाई ।

सिद्धाचार्य और जाम्भोजी का सम्मिलन—

एक दिन 'समराथळं' के प्रसिद्ध सिद्ध तपोमूर्ति श्री जाम्भोजी ...राज की प्रगाढ़ इच्छा बाल सन्त सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी से कतरि-सर आकर मिलने की हुई[1]। निश्चित् समय पर दो महान् सिद्ध-सन्तों समागम का समाचार सत्संग-प्रिय जिज्ञासु सज्जनो में सर्वत्र पहुँच गया। नवरत कल्याण के इच्छुक ऐसे सुअवसरों को अपने हाथ से नहीं जाने ने।

---

(१) जम्भेश्वर जसनाथजी, परमहँस वैराग।
सम्वत् पनरे सतावने, मिले सन्त वड़भाग॥

सिद्ध रामनाथ ने आगे लिखा है—

समरास्थल सु जंभेश्वर आये, कतरियासर जसनाथ मिलाये।
मिलत प्रेम रस पार न पाये, दूध नीर सम सन्त सवाये।
वहु जन लोक भये इकठाई, दरसन से अघ दूर भगाई।
धिन धिन भाग साधु मिलताई, ढलती छांया ससि सवाई।
जंभेश्वर कहे सुनो जसनाथी, वहु दिन से मिले मम साथी।
भानु उदेतम दूर भगाती, आशु वूंद मुक्ता कर स्वाती।
सिद्ध जसनाथ हमारे गुरुभाई, रिद्ध सिद्ध धर्म सदा उत्तमाई।
धिन धिन भाग तारि सेवकाई, जो जसनाथ गुरु मिलताई।

जांभो कहे जसनाथ ने, मम गुरु गोरखनाथ।
गुरुभाई हम जानके, ताहि मिलायो हाथ॥

जसनाथ कहे जंभेश्वर भाई, विष्णु धर्म की राह चलाई।
जान जगत मे झूठ दिखाई, कर्म तना फल भोग सदाई।
धर्म ज्ञान मुक्ति के हि दाता, श्रुति स्मृति सन्त सुर गाता।
भगती कर्म कर ज्ञान मिलाना, या विद वेद विधि गुण गाता।
सत गुरु शब्द सुचालते, दुष्ट जीव तरजाय।
जसनाथ कहे जंभेश्वर, भगति दृढ़ करजाय।

पुण्यधाम कतरियासर और तपोधिष्ठान 'समराथळ' में दूरी का अधिक अन्तर नहीं है। यदि हो भी तो भक्तजन कण्टकाकीर्ण वीहड़ मार्ग की लम्बीयात्रा में किंचित् मात्र कष्ट की अनुभूति नहीं करते। मनुष्य-जीवन की वास्तविक सार्थकता की कुंजी एकमात्र सत्संग मे ही तो उपलब्ध होती है। अत दोनों ओर के भावुक भक्तजनों का कतरियासर के पुण्य-क्षेत्र 'गोरख माळिये' पर जमघट लगना प्रारम्भ होगया। गोरख-माळिये के तपोमय आध्यात्मिक शान्त वातावरण में सभी शान्त एव प्रसन्न चित्त दिखाई देने लगे।

सिद्धाचार्य की स्वर्णिम लम्बी लम्बी केशावलि देदीप्यमान मुखाकृति सुगठित शरीर, बडी बडी सुहावनी आँखें और मन्द मन्द मुस्कान देखने वाले को स्वत ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। जाल वृक्ष की सुशीतल छाया में बैठकर जिज्ञासु भक्तजनों के साथ साथ कामी, क्रूर और छद्मी जन भी शान्त तथा निश्चल भाव से मार्मिक होने पर भी प्रिय तथा हितकर प्रवचन श्रवण करते थे। तात्कालिक परिस्थिति में जन-जीवन के अभ्युत्थान के लिए इनके उपदेशों के अतिरिक्त अन्य कोई सुखद अवलम्बन नहीं था।

जिज्ञासु एव विशुद्धान्तकरण वाले भक्तों को यथेष्ट लाभ पहुँचाने के लिए सन्त-हृदय सदा लालायित रहता है। भक्त-भयहारी लोकोत्तर विभूतियाँ इसीलिए इस वसुन्धरा पर अवतीर्ण होती हैं और अपनी सामान्य-मगलकारी प्रतिभा के विलास द्वारा वे मानवों के दुर्गम पथ को आलोकित कर उसे सुगम बनाती हैं।

एक अनुभवी सन्त के बचनों में—"ऐसे दिव्यपुरुष भगवत्-स्वरूप या ईश्वर के प्रतिनिधिरूप में ही अवतरित होते हैं। अत ज्ञान, कर्म तथा भक्ति के वे ही एकमात्र प्रवर्त्तक हैं। जब कर्मों की शिथिलता, ज्ञान का लोप, भक्ति का विनाश और तज्जनित सताप को बढता हुआ देखते हैं तब जहाँ जैसे स्वरूप की जरूरत होती है वहाँ वैसे ही स्वरूप में प्रकट हो कर स्वयं करुणार्णव भगवान् उन दिव्य तत्त्वों को पुनर्जागृत कर, विक्षिप्त एवं संतप्त मानव-मानस को शान्ति प्रदान करते हैं। भगवान् की ये दिव्य लीलाएँ

चिरकाल तक मानव को मानवोचित गुण कर्मों में संलग्न रखती हैं। आगे चलकर ये ही गुण-कर्म मानव संस्कृति के नाम से माने एवं पुकारे जाते हैं और सी सुखद संस्कृति के एकमात्र जनक हैं भगवत्परायण सन्त। उन्हें स्वयं अधिक कुछ भी अभिष्ट नहीं होता, क्योंकि वे सर्वतः परिपूर्ण होते हैं। लोक-कल्याण के निमित्त वे स्वयं आचरण करके लोगों को शिक्षा देते हैं।" इन्हीं उपरोक्त गुणों और कर्मों से समाहित जीवन सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी का था।

श्री जाम्भोजी महाराज तो देशाटन प्रिय भी थे, पर श्री जसनाथजी को एकासनस्थ रहना ही अभीष्ट था। श्री जसनाथजी के "सबदों" में भी 'पै'ला आसण दिढ़ रहैला, से पूरा परवाणी" अर्थात पूरा प्रमाणित तपस्वी तो वही है जो पहिले अपने आसन पर दृढ़ रहेगा। इन्हें घूम घूम कर उपदेश देने की आवश्यकता नहीं थी क्यों कि इनके दिव्य-ज्ञान का प्रभाव स्वच्छाकाश की भाँति सर्वव्यापक था। सिद्धों का प्रभाव-क्षेत्र उनकी मनोवृत्ति पर निर्धारित रहता है। सृजन और दर्शन इन दोनों ही में इनकी सहज गति होती है। ऐसी गति के लिए इन्हें कोई बाह्य प्रेरणा-स्रोत की आवश्यकता नहीं, वे तो स्वयं ही प्रणेता होते है। अस्तु।

श्री जाम्भोजी ने कतरियासर यात्रा के लिए तैयारियाँ आरम्भ करदीं। अधिक समय नहीं लगा, सभी लोग सात्त्विक साज-बाज के साथ तैयार हो गये। गुरु-भक्तों ने विनीत हो आग्रह पूर्वक रथ को सुसज्जित कर महाराज के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। इसी वेला को शुभ मुहूर्त समझ कर श्री जाम्भोजी रथ में विराजमान हो गये। सारथी का काम उनके शिष्य ऊदोजी ने किया। श्री जाम्भोजी के रथ को उत्तम 'नागोरी बैलों' की जोड़ी ने खींचा। सारथी ऊदोजी के चातुर्य ने तो बैलों को द्विगुणित गति प्रदान की। चपल धोरी गोपुत्रों ने अपनी सहज गति से रथ को खींचते हुए दुर्गम रेतीले टीलों, बालू के सुलायम मैदानों, समतल 'डेरियों' सम-विषम विशाल जंगलों और अनेक गाँवों को चलचित्र की भाँति पीछे छोड़ते हुए कुशल सारथी के संकेता-नुसार प्रथम विश्राम 'पसलू' ग्राम में किया।

वमलू ग्राम के निवासियों को जब यह ज्ञात हुआ कि श्री जाम्भोजी महाराज सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी से मिलने के लिए कतरियासर पधार रहे हैं, तो उन्होंने जाम्भोजी महाराज का बडा आदर सत्कार किया। ग्राम वासियों ने संत-मण्डली एव भक्त-समुदाय के लिए यथा विधि भोजन–व्यवस्था की। भोजन और विश्राम कर लेने के पश्चात् समस्त-समुदाय ने बमलू से प्रस्थान किया।

श्री जाम्भोजी ने रथ मे बैठते हुए कहा— ' समीप ही है अभी स्वल्प-काल में ही कतरियासर पहुँच जाते हैं और बाल–मूर्ति के बढते हुए प्रचण्ड-प्रताप को देख लेते हैं।'' किसी एक ने कहा – महाराज! आपके सामर्थ्य के सामने उनकी क्या सिद्धि चल सकेगी? श्री जाम्भोजी ने उत्तर दिया ''हा! यही तो देखना है! अब विलम्ब नहीं करना चाहिए भगवान् भास्कर अस्ताचल की ओर अग्रसर हो रहे हैं। दिन रहते ही हमें वहाँ पहुँच जाना चाहिए, जिससे सन्ध्या काल का अतिक्रमण न हो।

ऊदोजी ने रथ को द्रुतगति से चलाया, कि बात की बात में तीन कोस की दूरी पार की। यहाँ से कतरियासर केवल एक कोस ही है। रेत का ऊँचा टीला होने के कारण कतरियासर सामने स्पष्ट दिखाई पडने लगा। यहाँ आकर थोड़े समय के लिए ये लोग रुक गये। जब पीछे रहे हुए सब लोग इनके साथ मिल गये तो पुन: आगे प्रस्थान हुआ। अभिमानी ऊदोजी ने उत्साह पूर्वक रथ को अति तीव्र गति से हाँका और वह बड़े वेग से चलता हुआ दिखाई पडा मानों आकाश मार्ग से हवा में ही उड़ रहा हो। बैलों की पद–ध्वनि और रथ-कम्पन से तथा बैलों का श्वासोच्छ्वास बढ़ जाने से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि रथ सचमुच तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है, पर था बिल्कुल विपरीत कि रथ अपने स्थान से एक अगुल भी आगे नहीं बढ़ सका। रथ की द्रुतगति, चक्रों का धूरी में घूमते हुए पीछे की ओर धुलि फेकना और बैलों का श्रान्त होना यह सब था एकमात्र भ्रम। यह क्रम काफी समय तक चलता रहा, निदान रास्ते में कोई मोड न देख, वृक्षों, लताओं तथा अन्य दृश्यो के साथ साथ कतरियासर उसी रूप में उतनी ही दूरी पर देखकर

सारथी ऊदोजी का मन आश्चर्य के अथाह सागर में डूबने लगा। उन्होंने रास को खींचते हुए नीचे उतर कर देखा तो रथ निश्चय ही तिल भर भी आगे नहीं बढ़ पाया था।

रथ से नीचे उतर कर श्री जाम्भोजी ने कहा— "मैंने चलते समय वेनोदभाव से ही श्री जसनाथजी की सिद्धि: के परीक्षण की भावनामात्र ही थी, इसी के फलस्वरूप यह अघटित घटना हुई है, जिससे हम सब लोग मर्यादित हो जायं। पुण्य-भूमि गोरखमाळिये के सामने रथादि में बैठ कर चलना हमारा दुराग्रह मात्र था। वास्तव में इस विलक्षण घटना ने हमें उचित स्तर पर ला दिया[1]। और हमारे हृदय पर एक अलौकिक शक्ति की छाप लगादी।

इतने में हारोजी, श्री जाम्भोजी के स्वागतार्थ आगये। हारोजी ने विनय पूर्वक "ॐ नमो नमः" कह कर श्री जाम्भोजी का अभिवादन किया तथा समस्त मण्डली को आदर पूर्वक कतरियासर में लाकर विश्राम करवाया। कुछ समय बाद हारोजी ने पूछा— "आपके लिए कैसी भोजन-व्यवस्था करवाई जाय" प्रत्युत्तर में श्री जाम्भोजी के शिष्य ऊदोजी ने कहा— "हमारे गुरु तो एकमात्र वाताहारी (हवा-भक्षी) हैं। कहिये; आपके गुरु क्या सेवन करते है ?" हारोजी ने सरलता पूर्वक कहा "हमारे गुरु महाराज तो भस्म (विभूति) मिश्रित थोड़ा सा दूध लेते हैं।' ऊदोजी ने मुँह-नाक सिकोड़ते हुए उपेक्षा भाव से कहा— "तब तो कुछ नहीं।" हारोजी को ऊदोजी का यह व्यवहार अच्छा नहीं लगा। अतिथि का यथा-सम्भव आदर सत्कार करना हमारी सनातन संस्कृति है पर वैसे ही अपने सद्गुरु के प्रति उपेक्षा-भाव को न सहन करना भी।

हारोजी ने श्री जाम्भोजी एवं उनकी मण्डली के यथास्थान डेरे लगवा कर स्वयं श्री जसनाथजी की सेवामें उपस्थित हो गये। हारोजी ने सिद्धाचार्य के प्रति सारी बातें निवेदन करदी। बिना किसी भाव परिवर्तन के सिद्धेश्वर ने कहा— "हरमल! कल प्रात तुम्हें ज्ञात हो जायगा कि वे हवा-भक्षी हैं या अन्न भक्षी।

---

(१) यह स्थान अब तक 'जाम्भारड़' के नाम से पुकारा जाता है।

दूसरे दिन प्रात काल जब हारोजी श्री जाम्भोजी के डेरे पर गए[1] तो देखा कि ऊदोजी श्री जाम्भोजी को भोजन करवा रहे हैं। इस प्रकार जाम्भोजी को अन्नोपभोग (भोजन) करते हुए देखकर हारोजी को बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि पहले दिन ऊदोजी द्वारा अपने गुरु को एकमात्र "हवा-भक्षी" बतलाकर श्री जसनाथजी के विभूति-मिश्रित दुग्ध-सेवन की मुँह-नाक सिकोड़ कर बड़ी भर्त्सना की गई थी। आज इस प्रत्यक्ष काण्ड को देख कर हारोजी समझ गए कि ऊदोजी व्यर्थ ही मुझे वैसा कह कर प्रभावित करना चाहते थे किन्तु ऐसा उपोद्घात सन्त-शिष्यों के लिए कहाँ तक शोभनीय है ? कहा नहीं जा सकता। सभव है ये सब कुटिल चालें सिद्धराज की परीक्षा के लिए चली गई हों या कुटिल अहभाव ने ही ऐसा करने के लिए ऊदोजी को प्रेरित किया हो।

हारोजी ने श्री जाम्भोजी को विनीत भाव से गोरखमाळिये चलने के लिए निवेदन किया। "ॐ विष्णु विष्णु" कहते हुए श्री जाम्भोजी गोरख माळिये की ओर चल पड़े। गोरखमाळिये पहुँचने पर राजस्थान की इन दोनों विभूतियों ने परस्पर गल-बहियाँ डाल कर 'ओ३म् नमो नम.' 'ओ३म् नमो आदेश' की ध्वनि के साथ प्रेमालिंगन किया। इस समय के अपूर्व एवं अलौकिक दृश्य का वर्णन करने में चर्म-जिह्वा तथा लौहे की लेखनी समर्थ नहीं। इस भाव-गम्य दृश्य व विरद को मूर्तरूप देना क्लिष्ट ही नहीं, अपितु असम्भव प्रतीत होता है।

---

(१) दन्त कथा के रूप में यही वार्ता इस प्रकार प्रचलित है— सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने हारोजी को बिलाव बनाकर जाम्भोजी के डेरे पर भेजा, उस समय जाम्भोजी जमीन में गड्ढा खोद कर उसमें बैठे भोजन कर रहे थे। "बिलाव रूप" हारोजी ने "माओ! माओं॥ की आवाज लगाई, जाम्भोजी ने ऐसा समझ कर कि बिलाव भूखा है "चूरमें" का एक लड्डू खाने को दिया। वह लड्डू तथा जाम्भोजी के पहनने की धोती बिलाव रूप हारोजी गोरख माळिये पर ले आये। धोती इसलिए लाये कि ऊदोजी के कथनानुसार जाम्भोजी की धोती आकाश में अदृश्य रूप से सूखती थी। समय पर वह लड्डू तथा धोती जाम्भोजी को दिखाई।

दोनों महापुरुषों के उच्चासनों पर विराजने के पश्चात्, यज्ञ प्रारम्भ हुआ। यज्ञ की पुनीत-ज्योति के दर्शनों का लाभ-प्राप्त कर उपस्थित श्रद्धालु-भक्तों का हृदय आनन्द-विभोर हो उठा। श्रद्धालु लोग यज्ञ के निमित्त जो गो-घृत अपने साथ लाये थे उसे एक एक करके यज्ञ-वेदी के निकट संस्थापित घृत-पात्र में उड़ेलने लगे। इस प्रकार अनायास ही मनों घृत एकत्रित हो गया। अपने सद्गुरु के पास गृहस्थी लोग खाली हाथ जायँ यह शास्त्र सम्मत नहीं। 'पत्रं पुष्पम्'' जो उनसे बन पड़ता है, वे प्रेम सहित सात्त्विक भाव से उनके अर्पण कर अपना अहोभाग्य मानते हैं। निस्पृही, वीतराग महापुरुषों के समक्ष सांसारिक पदार्थों की कोई गणना नहीं किन्तु लोकोपकारी कृत्यों के लिए तो उनका प्रेरणास्रोत सदा बहता ही रहता है।

इन ग्रामवासियों के पास निष्कपटता, सरलता, सदाचार और हार्दिक प्रेम के अतिरिक्त है ही क्या? ये कलिक्लान्त कुपथगामी नहीं हैं और अपने एकमात्र प्रेमास्पद गुरु के इङ्गित पर प्राणोत्सर्ग करने को भी तत्पर हैं। सत्संग-सरिता में अवगाहन करते करते ये पूर्णपरिष्कृत हो चुके हैं। सहस्रपुटित धातु के स्थायी चमत्कार की भाँति इनकी अपूर्व आध्यात्मिक-शक्ति भी स्थायी हो गई है। इसी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में भी लाखों लोग इनके धर्म-नियमों का पालन कर, मानव लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

आगन्तुक जन-समुदाय में सबका एक जैसा दृष्टिकोण नहीं है। उनमें कुछ लोग सात्त्विक-भाव से दर्शनार्थ आए हैं। कुछ उनकी पारस्परिक वार्तालाप का आनन्द-लाभ करने तथा कुछ लोग कौतूहल वश ही यहाँ आकर एकत्रित हो गए हैं। जो श्रद्धालु जिज्ञासु हैं उनका ऐसा भाव है—"इस दुस्तर भवसागर से पार होने के लिए एकमात्र सन्त ही तो वे जहाज हैं जो भयंकर झंझावात से संघर्ष करते हुए उस पार, प्रियतम की नगरी के निकट उतार देते हैं, जहाँ की मनोरम-सुषमा प्रियतम से मिलाने के लिए सहस्र हाथ आगे बढ़कर उनका पुनीत स्वागत करती है। इस निष्कंटक साम्राज्य में किसी अन्य का हस्तक्षेप नहीं है। इस सत्यमय स्वच्छन्द-राज्य की शरण में चले जाने के पश्चात् वह स्वयं सम्राट के रूप में परिणित हो जाता है।"

दूसरे दिन प्रात काल जब हारोजी श्री जाम्भोजी के डेरे पर गए[1] तो देखा कि ऊदोजी श्री जाम्भोजी को भोजन करवा रहे हैं। इस प्रकार जाम्भोजी को अन्नोपभोग (भोजन) करते हुए देखकर हारोजी को बडा आश्चर्य हुआ। क्योंकि पहले दिन ऊदोजी द्वारा अपने गुरु को एकमात्र "हवा-भक्षी" बतलाकर श्री जसनाथजी के विभूति-मिश्रित दुग्ध-सेवन की मुँह-नाक सिकोड कर बड़ी भर्त्सना की गई थी। आज इस प्रत्यक्ष काण्ड को देख कर हारोजी समझ गए कि उदोजी व्यर्थ ही मुझे वैसा कह कर प्रभावित करना चाहते थे किन्तु ऐसा उपोद्घात सन्त-शिष्यों के लिए कहाँ तक शोभनीय है? कहा नहीं जा सकता। सभव है ये सब कुटिल चालें सिद्धराज की परीक्षा के लिए चली गई हों या कुटिल अहभाव ने ही ऐसा करने के लिए ऊदोजी को प्रेरित किया हो।

हारोजी ने श्री जाम्भोजी को विनीत भाव से गोरखमाळिये चलने के लिए निवेदन किया। ' ॐ विष्णु विष्णु " कहते हुए श्री जाम्भोजी गोरख माळिये की ओर चल पड़े। गोरखमाळिये पहुँचने पर राजस्थान की इन दोनों विभूतियों ने परस्पर गल-बहियाँ डाल कर 'ओ३म् नमो नम ' 'ओ३म् नमो आदेश' की ध्वनि के साथ प्रेमालिंगन किया। इस समय के अपूर्व एव अलौकिक दृश्य का वर्णन करने में चर्म-जिह्वा तथा लौहे की लेखनी समर्थ नहीं। इस भाव-गम्य दृश्य व विरद को मूर्तरूप देना क्लिष्ट ही नहीं, अपितु असम्भव प्रतीत होता है।

---

(१) दन्त कथा के रूप में यही वार्ता इस प्रकार प्रचलित है— सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने हारोजी को बिलाव बनाकर जाम्भोजी के डेरे पर भेजा, उस समय जाम्भोजी जमीन में गड्ढा खोद कर उसमें बैठे भोजन कर रहे थे। "बिलाव रूप" हारोजी ने "माओ! माओं!! की आवाज लगाई, जाम्भोजी ने ऐसा समझ कर कि बिलाव भूखा है "चूरमें" का एक लड्डू खाने को दिया। वह लड्डू तथा जाम्भोजी के पहनने की धोती बिलाव रूप हारोजी गोरख माळिये पर ले आये। धोती इसलिए लाये कि ऊदोजी के कथनानुसार जाम्भोजी की धोती आकाश में अदृश्य रूप से सूखती थी। समय पर वह लड्डू तथा धोती जाम्भोजी को दिखाई।

दोनों महापुरुषों के उच्चासनों पर विराजने के पश्चात्, यज्ञ प्रारम्भ हुआ। यज्ञ की पुनीत-ज्योति के दर्शनों का लाभ-प्राप्त कर उपस्थित श्रद्धालु-भक्तों का हृदय आनन्द-विभोर हो उठा। श्रद्धालु लोग यज्ञ के निमित्त जो गो-घृत अपने साथ लाये थे उसे एक एक करके यज्ञ-वेदी के निकट संस्थापित घृत-पात्र में उड़ेलने लगे। इस प्रकार अनायास ही मनों घृत एकत्रित हो गया। अपने सद्गुरु के पास गृहस्थी लोग खाली हाथ जायँ यह शास्त्र सम्मत नहीं। 'पत्रं पुष्पम्" जो उनसे बन पड़ता है, वे प्रेम सहित सात्त्विक भाव से उनके अर्पण कर अपना अहोभाग्य मानते हैं। निस्पृही, वीतराग महापुरुषों के समक्ष सांसारिक पदार्थों की कोई गणना नहीं किन्तु लोकोपकारी कृत्यों के लिए तो उनका प्रेरणास्रोत सदा बहता ही रहता है।

इन ग्रामवासियों के पास निष्कपटता, सरलता, सदाचार और हार्दिक प्रेम के अतिरिक्त है ही क्या? ये कलिक्लान्त कुपथगामी नहीं हैं और अपने एकमात्र प्रेमास्पद गुरु के इङ्गित पर प्राणोत्सर्ग करने को भी तत्पर हैं। सत्संग-सरिता में अवगाहन करते करते ये पूर्णपरिष्कृत हो चुके हैं। सहस्रपुटित धातु के स्थायी चमत्कार की भाँति इनकी अपूर्व आध्यात्मिक-शक्ति भी स्थायी हो गई है। इसी के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में भी लाखों लोग इनके धर्म-नियमों का पालन कर, मानव लक्ष्य की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

आगन्तुक जन-समुदाय में सबका एक जैसा दृष्टिकोण नहीं है। इनमें कुछ लोग सात्त्विक-भाव से दर्शनार्थ आए हैं। कुछ उनकी पारस्परिक वार्तालाप का आनन्द-लाभ करने तथा कुछ लोग कौतूहल वश ही यहाँ आकर एकत्रित हो गए हैं। जो श्रद्धालु जिज्ञासु हैं उनका ऐसा भाव है—"इस दुस्तर भवसागर से पार होने के लिए एकमात्र सन्त ही तो ये जहाज हैं जो भयंकर झंझावात से संघर्ष करते हुए उस पार, प्रियतम की नगरी के निकट उतार देते हैं जहाँ की मनोरम-सुषमा प्रियतम से मिलाने के लिए सहस्र हाथ आगे बढ़कर उसका पुनीत स्वागत करती है। इस निष्कंटक साम्राज्य में किसी अन्य का हस्तक्षेप नहीं है। इस सत्यमय स्वच्छन्द-राज्य की शरण में चले जाने के पश्चात् वह स्वयं शासक के रूप में परिणित हो जाता है।"

जसनाथी सिद्धों में यह कथा इस प्रकार प्रचलित है कि "हमीरजी ने श्री जाम्भोजी को आग्रहपूर्वक निवेदन किया कि वे कतरियासर आकर उनके इकलौते पुत्र (श्री जसनाथजी) को समझायें। क्योंकि वे परिवार त्याग कर विरागी होगये है। श्री जाम्भोजी का कतरियासर आने का यही अभिप्राय था।" किन्तु यह बात निःसन्देह रूप से स्वीकार नहीं की जा सकती। क्योंकि "सिद्ध रामनाथ" ने इनके मिलने का समय विक्रम स० १५५७ में निश्चित किया है। यदि यह समय सही माना जाय तब तो सिद्धाचार्य को दीक्षित हुए सात वर्ष का लम्बा समय व्यतीत हो जाता है। इस काल में सिद्धाचार्य द्वारा अनेकों अलौकिक चमत्कृतियाँ प्रकट की जा चुकी थीं तथा इनका सुयश और ख्याति का आलोक मरुधरा के दशों दिशाओं में देदीप्यमान हो चुका था। ऐसी स्थिति में उक्त प्रसग इस प्रकार हुआ हो यह जचता नहीं। किन्तु इस प्रसग की सर्वथा उपेक्षा भी नहीं की जा सकती क्योंकि इस घटना से सम्बन्धित सिद्धाचार्य द्वारा निम्नांकित 'सबद' श्री जाम्भोजी के प्रति प्रश्नोत्तर रूप में कथन किया गया है। श्री जाम्भोजी ने श्री जसनाथजी से अनेकों प्रश्न किये तथा ऐसी गर्वोक्ति भी प्रकट की कि 'मैं स्वयं श्रीकृष्ण हूँ" ऐसा भाव इस 'सबद' से प्रकट होता है।

वेदान्त सिद्धान्तानुसार प्राणीमात्र ईश्वर का स्वरूप है। फिर विशिष्ट सन्त-पुरुष तो साक्षात् नारायण स्वरूप हैं ही। अत श्री जाम्भोजी तथा सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी साक्षात् भगवत-स्वरूप हैं, किन्तु समकक्ष सन्त के समक्ष श्री कृष्णावतार होने की गर्वोक्ति प्रकट करना श्री जाम्भोजी के लिए कहाँ तक उचित था? कहा नहीं जा सकता। जाम्भोजी श्री कृष्ण है तो क्या सिद्धाचार्य श्रीकृष्ण स्वरूप नहीं है? एक ही श्रेणी के तथा एक समान धर्म सिद्धान्तों के प्रतिपादक पारस्परिक मिलन के मध्य ऐसी गर्वोक्ति निरा अहंभाव ही तो प्रकट करती है। इसका समाधान वक्रोक्ति द्वारा ही हो सकता था यही आभास सिद्धाचार्य के इस 'सबद' से प्रकट होता है।

सरब सिनानी सुरनर भणिये, देव री सीस जटा मुकळाई ।
मेळ मिलागर गढ़ उदियागर, गढ़ छै लॅक विलॅका चक
चोफेरी खाई ।
गोरखनाथ जुँगा लग बाबो, मनस्या नितलग माई ।
जापत आप चतुरभुज ईसर, देवजी ! जुग २ री गैं'लाई ।
गैं'लें होय'र ईसर बाबैं, घणी घणी बरताई ।
हू लटियाळो कान गिंवाळो, जिण आ सिष्ट पपाई ।
बुध हुँता पांचू पाण्डु राख्या, कैरू किया छाँई ।
जो जम्भेसर कान कुहावो, खतियाँ केश मुँडाई ।

• सदा शुद्ध निर्मल रहने वाले तो बड़े २ देवता और जटाधारी मुनि जन हैं, और आपके तो सिर पर जटा भी नहीं है। मलयाचल, उदयाचल जैसे उच्च गिरिशिखरों और विलक्षण गहरी खाइयों से आवृत लंका जैसे दुर्भेद्य गढ़ों के समान ब्रह्मरन्ध्र में आत्मा के साथ मनोवृत्तियों का समाधि द्वारा ही मेल अर्थात् निवास होना संभव है और ऐसा करने वाला ही वस्तुतः नित्य स्नानी कहलाने का पूर्ण अधिकारी है। आप चतुर्भुज विष्णु का जप करते हैं और मैं शिव का, जो युग युगों तक सृष्टि के प्रत्येक काल में व्यापक हैं। सभी युगों में रहने वाले अविनाशी इष्टदेव गोरखनाथ ही मेरे बाबा हैं, उन्हीं में मेरी नित्य मनोवृत्ति लगी रहती है।

मेरे आराध्यदेव सदा शिव भोले भण्डारी हैं जो लोगों पर बहुत बहुत कृपा करते रहते हैं और श्रीकृष्ण की क्या महिमा गाऊँ वह सुन्दर बालों वाला है, जो केशव के नाम से भी प्रसिद्ध है, गोपालक है और इस सृष्टि का रचयिता है।

उन्होंने बुद्धिमान् और धर्मपरायण पाण्डवों की रक्षा कर पापी कौरवों का नाश किया। आप यदि वही श्रीकृष्ण हैं तो मैं आपकी क्या नमाजना कर सकता हूँ। परन्तु हे जम्भेश्वर। आप सचमुच ही श्रीकृष्ण कहलाते हैं तो फिर आपने सिर क्यों मुंडवा लिया? श्रीकृष्ण तो 'लटियों' वाले केशव हैं।

कानजी (रै) साथै राई रुखमण हुँता, ज्याँनै कठै गमाई।
भाँजो काया जोत जगावो, (तो) थानै देवाँ वड़ाई।
एकण हुँता अणत उपावो, अणतो अणत उपाई।
काळँग मारां कुळ वरतावाँ, निकळँग नाव कुहाई।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी) सुणाई।

श्री कृष्ण के साथ तो महारानी रुक्मणी रहती हैं। उनको आप कहाँ छोड आए? भगवान् कृष्ण तो जैसे एक से अनेक हो जाते हैं, दृश्य से अदृश्य हो जाते हैं और जहाँ सघन अन्धकार छाया हुआ रहता है वहाँ दिव्य प्रकाश फैला देते है उसी प्रकार आप भी अपनी क्षण-भङ्गुर काया का मोह न रखते हुए अद्भुत ज्योति जगादें तब आप प्रसंशा योग्य हैं।

श्रीकृष्ण एक होते हुए भी अनेक जगह प्राप्त होते हैं, अनेकों रूप धारण करते हैं और अणु से अणु अर्थात् सूक्ष्म से सूक्ष्म बन जाते हैं। काल को मारने वाले हैं, प्रत्येक स्थान में व्यापक है और निष्कलङ्क कहलाते हैं आप भी ऐसे ही श्रीकृष्ण बनो तब आपकी प्रसशा है।

श्री जाम्भोजी पूर्णतया समझ गए कि श्री जसनाथजी जन्मजात योगेश्वर हैं। अब जाम्भोजी और उनकी मण्डली की छिद्रान्वेषणी मनोवृत्ति ध्वस्त हो गई। श्रद्धा और सौहार्द के स्वच्छ गगन मे गुण-गरिमा की विस्तृत उडान भर भर कर सभी सुख का अनुभव करने लगे।

आगन्तुक भक्त-मण्डली भी यज्ञ-दर्शन, सन्तोपदेश-श्रवण कर तथा सिद्ध-सन्तों को नमस्कार कर अपने अपने गन्तव्य स्थल की ओर चल पड़ी।
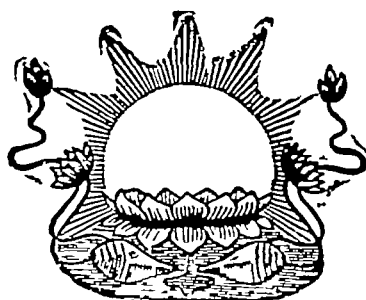
षष्ठ अध्याय

सिद्धाचार्य एवं महासती काळलदे का समाधिस्थ होना

एक दिन 'गोरख माळियै' पर बैठे हुए सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने हारोजी से कहा– "हरमल ! अब मेरा समाधिस्थ होने का समय आगया है। जिस कार्य-सिद्धि के लिए मैं इस पृथ्वी पर अवतरित हुआ था वह कार्य प्रायः इस देह से सम्पन्न हो चुका है। अब मुझे अधिक समय प्रकट रूप में नहीं रहना है।[1] इसलिए तुम चूडीखेड़ा जाकर महासति काळलदे[2] को मेरा यह सन्देश पहुंचादो।"

सिद्धाचार्य ने हारोजी को साक्षी रूप 'माला' देते हुए कहा– "इसे देख कर सती काळलदे तुम्हारे साथ यहाँ आ जायेगी।"

परम गुरु सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की आज्ञा शिरोधार्य कर एवं उन्हें 'ओनमो आदेश' अभिवादन कर हारोजी चूडीखेड़ा की ओर चल पड़े[3]।

---

(१) सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी इस समय तक अपनी आयु के २३ वर्ष ११ महीने और कुछ दिन व्यतीत कर चुके थे।

(२) सिद्धाचार्य का सती काळलदे से १० वर्ष की अवस्था में ही 'सगाई-सम्बन्ध' हो चुका था। सिद्धाचार्य के योगी होने पर भी सती काळलदे ने अन्य सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया, इसी प्रकार सती काळलदे की बहिन सती प्यारलदे का किसी के साथ 'सगाई सम्बन्ध' भी नहीं हुआ। इन सतियों की आश्चर्यजनक चमत्कारों की चर्चा सर्वत्र फैली हुई थी। अतः इनके साथ सम्बन्ध करने का दुस्साहस भी कौन कर सकता था ! काळलदे जैसी सती के लिए सिद्धाचार्य जैसा वर ही उपयुक्त था।

(३) यह घटना 'सिद्धों री सिरळोको' की निम्नलिखित कड़ियों में भी वर्णित है:—

चूड़ी खेड़े में सती विराजै

इस घटना से संबन्धित जसनाथी सिद्धों में 'कडा' नाम के पद्य प्रचलित हैं। जिनसे इस विषयक इतिहास का बोध भली प्रकार होता है —

हरमल हीड़ै हालिया, मेल्या निकळंग पात ।
हरख उमावो मन वस्यो, हरमल हाल्या जात ॥
हुकमी गुरु जसनाथ रा, अलख गुरां री छाप ।
पवन सरूपी हुय चल्या, (हरमल) जाय पहूँता आप ॥
हरमल (नै) परतक देखतां, परसण काळल मात ।
सतियां सेवग ओळख्या, मस्तक मेल्या हाथ ॥
कहो सै'नाणी हरा देवरी, कहो कायम री बात ।
किण पारे हरा रम रह्या, कहो हरा ! कुसळात ॥

निष्कलक पति (श्री जसनाथजी) का भेजा हुआ हरमल उनके आदेश की पूर्ति के लिए चला। हारोजी हर्ष से उमगित हो, चले जा रहे हैं।

हारोजी गुरु जसनाथजी के आज्ञाकारी हैं (उन पर) अलख गुरु की छाप लगी है। हारोजी पवन-स्वरूप हो, अर्थात् पवन गति से वहा (चूडी खेडा) जा पहुचे।

हारोजी को प्रत्यक्ष देखकर मातेश्वरी काळलदे बहुत प्रसन्न हुई और हारोजी को पहिचान कर सती ने सेवक (हारोजी) के सिर पर (आशीर्वादात्मक) हाथ रखा (और) पूछा, हे हारा! देव (श्री जसनाथजी) की निशानी (पहिचान) कहो, मेरे अराध्य देव की बात कहो।

नाम काळलदे सनमुख साजै
श्री गुरुनाथ रा हुकम'ज आया
श्री जसनाथजी दया दरसाया
सुणतां सतीजी सीस नंवायो
मेरै नाथ रो सनेसो आयो
प्राणपति रो नॉव सुणायो
आज कासब सुत सोनै रो उगो
मोरै सायब रो सनेसो पूगो

हे हरमल! वे कौन से सुरम्य तट पर क्रीड़ा कर रहे हैं अर्थात् उनके ज्ञानयोग की क्या स्थिति है, उनकी कुशल-मंगल कहो।

तब हारो जी ने सती के समक्ष निवेदन किया:—

एका आसण माता! देव जी, भजन करैं दिन रात।
बैठा गोरख माळियै, भळकंतै दीदार।
तिलक चनरमाँ भळहळै, सीस मुकुट गँगधार।
सदा हजूरी स्याम रै, पाँडु पोड़ दुवार।
दरसण आवैं देवता, ईसर रै दरबार।
सिद्ध चौरासी, नाथ नौ, गोरख जोग विचार।

हे माता! श्री देव (जसनाथ जी) 'गोरख माळियै' पर एकासनस्थ हो निरन्तर भजन करते हैं. (उनकी मुखाकृति) तपोतेज से देदीप्यमान हो रही है, (उनके ललाट पर) चन्द्रमा के समान तिलक चमक रहा है और सिर पर जटा-मुकुट गंगा की धारा के समान सुशोभित है अर्थात वहां ज्ञान-गंगा बह रही है। पाण्डव उनके द्वार पर पहरा दे रहे हैं। ईश्वर (श्री जसनाथ जी) के दरबार (गोरख माळियै) में देवता लोग (उनके) दर्शनार्थ आते रहते हैं। नवनाथ, चौरासी सिद्ध (एवं) गुरु गोरखनाथ जी (वहां) योग का विचार करते रहते हैं।

सारै संतॉ नै आसीसाँ दीवी
भला नाथजी किरपा मन कीवी
जती सती रो अवचळ जोड़ो
सत छूटॉ तो पड़ैलो फोड़ो
मेरू थांग थे रथ सिणगारो
कतरियासर में प्रगट किरनारो
छोटी बैन मिल प्यारलदे आई
पकड़ी भुजा नै रथ में बैठाई
नर्नी सेवग नै करै उपदेसा
रथ होक्या है सुर पवन ज्यूं वेगा

इस घटना से सबन्धित जसनाथी सिद्धों में 'कडा' नाम के पद्य प्रचलित हैं। जिनसे इस विषयक इतिहास का बोध भली प्रकार होता है —

हरमल हीड़ै हालिया, मेल्या निकळंग पात ।
हरख उमावो मन वस्यो, हरमल हाल्या जात ॥
हुकमी गुरु जसनाथ रा, अलख गुरां री छाप ।
पवन सरुपी हुय चल्या, (हरमल) जाय पहूँता आप ॥
हरमल (नै) परतक देखतां, परसण काळल मात ।
सतियां सेवग ओळख्या, मस्तक मेल्या हाथ ॥
कहो सै'नाणी हरा देवरी, कहो कायम री वात ।
किण पारे हरा रम रह्या, कहो हरा ! कुसळात ॥

निष्कलक पति (श्री जसनाथजी) का भेजा हुआ हरमल उनके आदेश की पूर्ति के लिए चला। हारोजी हर्ष से उमगित हो, चले जा रहे हैं।

हारोजी गुरु जसनाथजी के आज्ञाकारी है (उन पर) अलख गुरु की छाप लगी है। हारोजी पवन-स्वरूप हो, अर्थात् पवन गति से वहा (चूडी खेडा) जा पहुचे।

हारोजी का प्रत्यक्ष देखकर मातेश्वरी काळलदे बहुत प्रसन्न हुई और हारोजी को पहिचान कर सती ने सेवक (हारोजी) के सिर पर (आशीर्वादात्मक) हाथ रखा (और) पूछा, हे हारा! देव (श्री जसनाथजी) की निशानी (पहिचान) कहो, मेरे अराध्य देव की बात कहो।

नाम काळलदे सनमुख साजै
श्री गुरुनाथ रा हुकम'ज आया
श्री जसनाथजी दया दरसाया
सुणतां सतीजी सीस नंवायो
मेरै नाथ रो सनेसो आयो
प्राणपति रो नॉव सुणायो
आज कासब सुत सोनै रो उगो
मोरै सायब रो सनेसो पूगो

हे हरमल ! वे कौन से सुरम्य तट पर क्रीड़ा कर रहे हैं अर्थात् उनके ज्ञानयोग की क्या स्थिति है, उनकी कुशल-मंगल कहो !

तब हारो जी ने सती के समक्ष निवेदन किया:—

एका आसण माता ! देव जी, भजन करैं दिन रात ।
बैठा गोरख माळियै, भळकंतै दीदार ।
तिलक चनरमाँ भळहळै, सीस मुकुट गँगधार ।
सदा हजूरी स्याम रै, पाँडु पोड़ दुवार ।
दरसण आवैं देवता, ईसर रै दरबार ।
सिद्ध चौरासी, नाथ नौ, गोरख जोग विचार ।

हे माता ! श्री देव (जसनाथ जी) 'गोरख माळियै' पर एकाग्रमनस्थ हो निरन्तर भजन करते हैं. (उनकी मुखाकृति) तपोतेज से देदीप्यमान हो रही है, (उनके ललाट पर) चन्द्रमा के समान तिलक चमक रहा है और सिर पर जटा-मुकुट गंगा की धारा के समान सुशोभित है अर्थात वहां ज्ञान-गंगा बह रही है। पाण्डव उनके द्वार पर पहरा दे रहे हैं। ईश्वर (श्री जसनाथ जी) के दरबार (गोरख माळियै) में देवता लोग (उनके) दर्शनार्थ आते रहते हैं। नवनाथ, चौरासी सिद्ध (एवं) गुरु गोरखनाथ जी (वहां) योग का विचार करते रहते हैं।

सारै संतों नै आसीसाँ दीवी
भला नाथजी किरपा मन कीवी
जती सती रो अवचळ जोड़ो
मत छूटो तो पड़ेला फोड़ो
मेरू बाग थे रथ सिणगारो
कतरियासर में प्रगट किरतारो
होटो बैन मिल प्यारलदे आई
पकड़ी भुजा नै रथ मे बैठाई
ननी बेदग नै करै उपदेसा
रथ होक्या है सुर पवन ज जैसा

सै अै'नाणें ओळख्या, सतियाँ सुण्यो विचार ।
सतियाँ भायाँ नै बूझियो, बीरा वात विचार ।

सतियों ने जब हारोजी से ऐसा कथन सुना तब वे हारोजी के बताये हुए चिन्हों से मानो प्रत्यक्ष रूप में (श्री जसनाथजी को) पहिचान गई। (काळल एव प्यारल) सती ने (अपने भाइयों से कहा) हे भाइयों! कतरियासर जाने के विषय में अपने विचार कहो।

भाइयों ने सतियों से पूछा: –

'सपनाँ मिल्या'क सॉपरत, कायम किसन मुरार ।

हे बहिनों! (आपको कतरियासर जाने का) स्वप्न आया है या प्रत्यक्ष में मिल कर भगवान् (श्री जसनाथजी) ने आपको कुछ कहा है?

हुई परभातॉ कतरियासर आया
हरियै बागॉ में आसण दिराया
आया सतीजी गुरॉ रै चरणॉ
वचन सतगुरु रो धारण करणॉ
सती सनमुख जती रै आई
दरसण किया नै सरब सुख पाई
दूध-नीर ज्यूँ मिल्या एकताई
मिलतॉ परगट जोत सवाई
श्री गुरु बोल्या छै सुणो सेवकाई
उत्तम धरम चलाओ भाई
धरम सनातन राखो मन ताई
सत गुरु सायब रै सदा सरणाई
नेम धरम सतगुरु फरमाया
जिण दिन जसनाथजी पथ चलाया
सती प्यारलदे मालासर माँई
सिद्ध पॉच परगटिया ताँई

(यशोनाथ पुराण, उत्पत्ति प्रकरण, पृष्ठ १३-१५)

यह घटना विक्रम सम्वत् १५६३ के सम्भवत आश्विन शुक्ल पक्ष की है, क्योंकि जसनाथी सिद्धों की मान्यता के अनुसार आश्विन शुक्ला चतुर्थी को सती काळलदे यहाँ (कतरियासर) आ गई थी।

सतियों ने अपने भाइयों से कहा:—

> हरमल आया हेत सूँ, माळा दीनी हाथ।
> स्याम सनेसो मोकळ्यो, चेतै किया'ज नाथ।

हारोजी यहां बड़े ही प्रेम से आये हैं (और उन्होंने साक्षी के रूप में सिद्धाचार्य की) माला दी है। माला को देखकर मुझे विश्वास हो गया है कि श्री श्याम (श्री जसनाथजी) ने सन्देश भेजा है, श्री नाथजी ने मुझे याद किया है।

जब सती काळलदे और प्यारलदे ने अपनी मां से भी निवेदन किया कि उन्हें कतरियासर जाने का आदेश दे। तब माता ने सती को टूटे हुए रथ तथा बाल बछड़ों की ओर संकेत करते हुए कहा— "अभी कतरियासर जाने का कोई साधन नहीं है। अगर तुम्हें जाने की इतनी ही शीघ्रता है तो इन रथ में इन बाल बछडों को जोत कर जा सकती हो।"

सती काळलदे ने माता की यह बात सुनकर उसी टूटे हुये रथ को सँवारा और बाल बछड़ों को जोत लिया।

> साहण वाहण सोहना, रथ लिया सिणगार।
> बाळ लुवारों जोड़िया, रथ लिया ललकार।
> काळल प्यारल ऊमवा, बहना हेत पियार।
> मन हरख्यो मेळू कहै, घड़ी न लावो बार।

सती काळलदे ने अपने यौगिक चमत्कार से टूटे हुए रथ को सँवार लिया तथा बाल बछड़ों को बैलों के रूप में परिणित कर लिया। दोनों बहिनें रथ पर सवार हो गईं और रथ चलने को उद्यत हुआ।

काळल और प्यारल उमंगित हो रही थीं (क्योंकि दोनों ही) बहिनों के अन्तर में करितयासर जाकर श्री नाथ के दर्शनों के लिए प्रेम उमड़ रहा था। प्रसन्न मन से भाई मेळू ने भी कहा:— "चलने में अब तनिक भी विलम्ब न करो।"

माता ने जब देखा कि दोनों सतियाँ करितयासर जाने के लिए रथ पर चढ़ कर तैयार हो गई हैं तब उन्होंने सतियों को रोकते हुए विनय पूर्वक

कहा– "मैं तुम्हें इस रूप में कतरियासर नहीं भेज सकती, क्योंकि तुम दोनों अविवाहित हो, अविवाहित कन्या को उसकी सुसराल भेजना माता पिता के लिए शोभाजनक नहीं होता। विधिपूर्वक विवाह करके ही तुम्हें कतरियासर भेजेंगे।"

माता के मुँह से विवाह की बात सुन कर सती काव्ळदे ने कहा–

जद म्हे परण पधारस्याँ, काळँग दाणू मार।
सती भणै माता सुणै, जुग चौथै री वार।
मीठो लागै माहुओ, इमरत हर रो नाँव।
सोरा राखो सेवगाँ, जलम-जलम सुख थाव।

हे माता! काळँग राक्षस को मार कर ही मैं विवाह करने के लिये पधारूंगी, इससे पूर्व मेरा विवाह नहीं हो सकता और काळँग राक्षस को मारने का समय चौथे (कलि) युग के अन्त में आयेगा (इस समय तो) माधव (श्री जसनाथ जी) ही मीठे लगते हैं, हरि का नाम ही अमृततुल्य है, इसलिए प्रार्थना है कि वे सेवकों को प्रसन्न रखें। जन्म जन्मान्तर में उनको सुख की प्राप्ति रहे।

कलियुग के अन्त में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी एव सती काव्ळदे अधर्म का नाश करने के लिए अवतरित होंगे, उस अवसर पर ही उनका विवाह सस्कार सम्पन्न होगा, जैसे सती ने कहा है–

सायब बांधै सेवरा, बीन बणै जसनाथ।
विद्ध बनोरो पूरसी, माँझी गोरखनाथ।
सुरनर जान पधारसी, पांचू पांडू साथ।
भींव बधाई आवसी, अलवल अरजण पात।

श्री जसनाथजी सेहरा बाध कर दुल्हा बनेंगे। ब्रह्माजी विनायक की स्थापना करेंगे, गोरखनाथजी प्रत्येक कार्य की मध्यस्थता करेंगे। पांचों पाण्डवों के साथ देवता और मनुष्य बरात बनाकर आयेंगे। भीमसेन बधाई देने वाले का कार्य करेगा। अति बलशाली अर्जुन पत्तियों की वन्दनवार बांधेगा।

दल (में राव) जद्दूठल मानसी, खरच खजानो हाथ।

तोरण हीरा भलहलै, थामा रतन जड़ाव।

मांग भरी जग मोतियाँ, कालल करै वणाव।

चन्नण चौंक पूरावसी, मंगळ गावै नार।

सोवन तकत् रचावसी, हीराँ रतन जड़ाव।

कायम पाट पधारसी, तीन भवन रा राव।

वह सारा दल (बारात) राजा युधिष्ठिर के नेतृत्व में चलेगा तथा धन-राशि को खर्च करने का अधिकार युधिष्ठिर के हाथ में रहेगा।

हीरों का चमकता हुआ तोरण होगा (और विवाह वेदी के स्थान पर) रत्नों से मँढा हुआ मण्डप होगा। सती काळलदे जगमगाहट करते हुए मोतियों से मांग भर कर शृंगार करेगी और चन्दन की चौकी पर बैठेगी स्त्रियाँ मंगल गीत गायेंगी। हीरे आदि रत्नों से जड़ित स्वर्ण के पाट पर तीनों भवन के स्वामी (श्री जसनाथजी) विराजमान होंगे।

माता ने बीच ही में पूछा—

कुण थारी चँवरी रोपसी, कुण थानै वेद भणाव।

पुत्री, तुम्हारे विवाह की चँवरी कौन रोपेगा और कौन तुम्हे विवाह के वैदिक मन्त्र पढ़ायेगा?

सती काळलदे ने कहा—

सैंदे चँवरी रोपसी, विरमा वेद भणाव

जद म्हे परण पधारस्या............

पाण्डव सहदेव चँवरी रोपेंगे तथा ब्रह्माजी वेद पढ़ायेंगे तब मैं विवाहित होकर पधारूंगी! अभी मुझे जाने दो।

कर मेळो परिवार सूँ, माता द्यो आसीस।

जद (म्हे) ओतार रचावस्याँ, आसा पूरण ईस।

हे माता! मुझे विदा दो. यदि तुम्हें मुझे विदा देने में कोई झिझक हो तो परिवार के लोगों से पूछ और उनकी राय लेकर मुझे विदाई स्वरूप आशीर्वाद दो। मेरा विवाह तो जैसा मैंने आपसे बताया है, उसी प्रकार होगा. उस समय मैं अवतार लूंगी, यह एकान्त सत्य है। उस समय ही मुझे निष्कलंक (श्री जसनाथजी) वर की प्राप्ति होगी जो आशा की पूर्ति करने वाले स्वयं ईश्वर ही हैं।

कळू बीताँ पो'रो फुरै, काटों काळँग सीस ।
मेछ मळण हर आवसी, हुय निकळँग ओतार ।
पूंग पलाणै सेतळै, लीला तुरी तरखार ।
उतर दिखण दळ देव रा, हालै हुकम हजार ।
छपन कोड़ दळ आवसी, मांझी लखण कुँवार ।
जद म्हे...... .. सुख थाव ।

कलियुग के व्यतीत होने पर समय बदल जायेगा, उस समय भगवान् 'काळँग' राक्षस का वध करेंगे। भगवान (श्री जसनाथजी) म्लेच्छों का नाश करने के लिए अवतरित होंगे।

पवन गामी श्वेत घोड़े पर जीन कसकर भगवान् उस पर आसीन होंगे। उनकी फौज में अनेकों नीले रंग के घोड़े होंगे। उनके साथ उनके आदेश पर चलने वाले हजारों सैन्यदल होंगे। जो उत्तर से दक्षिण तक फैल जायेंगे। देवताओं के इन छप्पन कोटि दलों का नेतृत्व लक्ष्मणजी करेंगे।

सती के ऐसे निर्भीक एवं स्वाभिमानपूर्ण वचन सुनकर—

मात पिता मन हरख हुवो, मे'ळू मेल्यो साथ ।

माता, पिता और भाइयों को बड़ा हर्ष हुआ।

काळलदे की माता ने उनको कतरियासर जाने की आज्ञा दे दी और साथ ही अपने पुत्र को भी आदेश दे दिया कि वह बहिन के साथ जाय।

सती को प्रस्थान करते देखकर परिवार के एक मुखिया ने हँसा से कहा—

हँसा, रथ आगळ खड़ो, गवण करो दिन रात

हे हँसा! अपने रथों को भी सजाओ और सती के रथ के आगे आगे लिए चलो, रात-दिन साथ चलना स्वीकार है पर सती का साथ नहीं छोड़ेंगे।

रथ खड़िया है हुकम सूं, काळलदे रै साथ ।
साँझ पड़ी जद चालिया, वरती माँझळ रात ।
पो फाटी पगड़ो भयो, (आ) भेंट्या निकळँग पात ।

फिर क्या था, देखते-देखते परिवार के लोग उमड पड़े। सन्ध्या होते होते सती के रथ के साथ-साथ सजी हुई १२० गाड़ियाँ कतरियासर की ओर चल पड़ीं, जिन्हें वहाँ पहुँचने में सारी रात व्यतीत हुई।

वैल थमाओ भाइयाँ, हरमल जाओ हजूर।
हुकम धण्याँ रै हालणाँ, वाचा वरतै नूर।
वाचा चान्दो सूरज वन्धिया, वासो छपन पियाँळ।
वाचा धवळो वन्धियो, सींग सेंवै धर भार।
वाचा मोटै स्याम री, आसण दिढ़क अधार।
मूरत मोटै स्याम री, निरखाँ निजर पिसार।
निकळंग रूप सरेवताँ, कळ दसवें ओतार।
जद म्हे परण पधारस्याँ,...... सुख थाव।

कतरियासर की सीमा में प्रविष्ट होते ही सतीजी ने अपना रथ ठहरा दिया और हरोजी से कहा—

हे हरमल! जाओ, सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की सेवा में उपस्थित होकर मेरे आने का समाचार दो और निवेदन करो कि अब हमें क्या आज्ञा है? क्योंकि बिना उनकी आज्ञा के उनकी सीमा में प्रविष्ट होना ठीक नहीं है। अब तो आगे उनकी आज्ञा से ही चलना होगा।

स्वामी के वचनों से बँधे चन्द्र और सूर्य के रथ अपने समय के अनुसार ही आकाश-मार्ग में विचरण करते हैं। वचनों से बँधा हुआ ही वासुकि नाग पाताल में निवास करता है और वचनों से बँधा हुआ नन्दीश्वर अपने शृंग पर पृथ्वी के भार को सम्भाले हुए है। दृढ संयमी समर्थ प्रभु की आज्ञा शिरोधार्य करके ही हमें आगे चलना है और उनकी मन मोहिनी मूर्ति को नजर भर कर देखना है। निष्कलंक प्रभु के रूप की आराधना करती हूँ, जो दसवें अवतार हैं।

इस प्रकार मुक्तकण्ठ से सिद्धाचार्य के वास्तविक गुणों की प्रशंसा करने पर महासती काळलदे के सतीत्व का तेजपुञ्ज मानो पृथ्वी पर अमितः प्रसरित हो चला और आसपास की भूमि के कण दिव्याभा से अनुप्राणित हो गये। (आगे सती के पूजा का स्थान भी यहीं स्थापित होगा)।

महासती काळलदे के श्रद्धामय विचार सुनकर हारोजी वहाँ से 'गोरख माळिये' पर पहुँचे। लेकिन सिद्धाचार्य वहाँ न मिले। उनका आसन

खाली पड़ा था। हारोजी ने महाराज की प्रतीक्षा की—इधर उधर खोज की, शालीनता पूर्वक सम्बोधन किया परन्तु सिद्धाचार्य की स्थिति का कोई अनुभव न हुआ।

हारोजी ने 'गोरखमाळियै' के पास इधर उधर बहुत देखा, पर कहीं सिद्धाचार्य न मिले। ज्यों ज्यों सिद्धाचार्य से मिलने में देर हो रही थी, त्यों त्यों हारोजी के मन की व्यग्रता बढ़ रही थी। चारों ओर से निराश होकर हारोजी सोच विचार करने लगे—अब क्या किया जाय? माता काळलदे के सामने कैसे मुँह दिखाऊ? वे मन मे क्या सोचेंगी? किस मुँह से जाकर उनसे कहूँ, माता! सिद्धाचार्य मिले नहीं! उन्हें ऐसे वचन सुनकर कितना दु:ख होगा?

हारोजी ने अन्त मे यही निश्चय किया कि जो कुछ भी हो, मुझे चलकर माताजी से सारी वस्तुस्थिति का निवेदन कर देना ही चाहिए।

हारोजी उदास मुख, अश्रुप्लावित नेत्र, कम्पित गात्र माता काळलदे के पास आये

नैण झुरै, झुर पींजर झुरै, पींजर नैण झुराय।
उन्नण बूठा काळै मेह ज्यूँ, घण बाँध्यो बूठाय।
(श्रीसूरज बाप सदेशड़ो, बाँच कह्यो हरमाल)।

रोते रोते उनके नेत्र चुँधिया गये हैं, आँखों की लालिमा पीतिमा में परिणित हो गई है। काले बादलों की तरह उनके नैत्र अविरल झरते ही जा रहे हैं।

जैसे ही महासती काळलदे ने हारोजी से सुना कि सिद्धाचार्य 'गोरखमालियै' पर नहीं है तो वे स्वय परिवार सहित 'गोरखमालियै' पर आ उपस्थित हुईं और असीम श्रद्धा से सिद्धाचार्य के आसन का दर्शन किया।

उस समय हारोजी ने सिद्धाचार्य के आसन की ओर इंगित करते हुए विरह-विह्वलता से कहा —

अठै माता काळलदे! कानड़ होन्ता, अठै होन्ता गुरु आप।
सैंदे गुराँ सूं भेटियो, गयो गुराँ (रै) पायै लाग।
(श्रीसूरज बाप संदेसड़ो, बाँच कह्यो हरमाल)।

हे मातेश्वरी काळलदे ! मैं सूर्य को साक्षी करके कह रहा हूँ कि यहाँ श्री कानड़—कन्हैया अर्थात् श्री जसनाथजी थे। मैं स्वयं प्रत्यक्ष गुरुदेव से भेट कर तथा उनके श्रीचरणों में अभिवादन कर आपके पास (चूडीखेड़ा) गया था।

कान तणा चौरासिया, टूटी पींग तणाय।
देवलो भळकै बावै सोवनो, मन राखो नेठाव।
छुरी, कटारी सालवै, ज्यूँ सालै है घाव।
(श्री सूरज बाप संदेसड़ो, बाँच कह्यो हरमाल)।

हे माता ! मैं सच कहता हूँ, सूर्यदेव की साक्षी देकर कहता हूँ, मेरे तो एकमात्र आधार गुरुदेव ही थे। उनके बिना मेरी गति रस्सी (तने) टूटे हुए झूले की-सी हो रही है। गुरुजी के उपदेश रूपी झूले में झूलता हुआ मैं परमसुखी था किन्तु उनके अदृश्य होने पर मेरी स्थिति झूला झूलते हुए और अकस्मात् झूले की रस्सी टूटने पर उस व्यक्ति की-सी हो रही है। हृदय ऐसी प्रेरणा देता है कि धैर्य रखो, तो भी विरह की यह असह्य वेदना छुरी (कटारी) की तरह चुभ रही है—मर्मान्तक पीड़ा दे रही है।

हारोजी की निश्छल बातें सुनकर और सिद्धाचार्य की आँख-मिचौनी देखकर मातेश्वरी काळलदे को महान् आघात लगा। वे विलाप करने लगीं। ये विलाप के पद्य 'जसनाथी-साहित्य' में झुरावा' के नाम से प्रसिद्ध हैं[1]।

---

(१) माता काळलदे के 'झुरावा' के साथ साथ उनके साथ आये हुए कुलगुरु देवपालजी पाण्डिये ने भी सिद्धाचार्य से प्रकट होने की प्रार्थना करते हुए निम्नोक्त "सिलोक" पाठ किया—

जाग-जाग जसनाथ, जाग जुग चोथो आयो।
भय मान्यो भूपाळ (कोई) फळ कूकरो डरायो।
कोई पिंडूड़े चाळ, कोई टसड़ो तुड़ायो।
उगन रूप विस्तार सेवगाँ देख लुकायो।
हाथाँ रा हिरण चमो, हरख दिखावण हाथ।
श्याम सरण देपाळ कर, जाग जाग जसनाथ।

× × ×

माता काळलदे ने अपने विरह को—वियोगजन्य वेदना को अन्तःस्पर्शी शब्दों में व्यक्त किया है जो पठनीय है —

मॉझी कायम राजा ओतर्या, दीनी नींव पताळ।
कान सनेसो रुखमण यूं भणै, गोठ रची सिसपाळ।
धण्या विहूणों करवलो, पल्लाण्यो सिसपाल।

हे भगवान्! ससार सागर से असख्य जीवों के उद्धार करने के हेतु ही आप अवतरित हुए हैं और आपने धर्म की ऐसी नींव डाली है, जो पाताल तक पहुँच गई है, इसे कोई भी हिला नहीं सकेगा।

रुक्मणी ने जब भगवान् श्रीकृष्ण को सदेश पहुंचाया तब श्रीकृष्ण ने शिशुपाल से उसकी रक्षा की किन्तु आपने तो मुझे दर्शन तक नहीं दिये। हे प्रभु! बिना किसी अन्त प्रेरणा के मेरी वही दशा है जो शिशुपाल के सामने रुक्मणी की थी।

जाग जाग जसनाथ, सूता क्यूँ सरसी स्यामी।
गुना बगस गोमन्द, (म्हे) चाकर भया'ज खामी।
दरसण द्यो किरतार, सेवगाँ विनती सामी।
प्रगट रूप भगवान, उठो थे अन्तरजामी।
हाथाॅं रा हिंवरस बसो . ... ।

× × ×

जाग जाग जसनाथ, जाग नर खरो पियारो।
नव बिरियॉं निरताव, दसवण काटण दावो।
कर मनस्या (री) तरवार, मूठ मेछाँ सिर बावो।
भगता हित अरदास, दोड़ कर बेगा आवो।
हाथां रा हिंवरस बसो, भवतारण गह हाथ।
स्याम सरण देपाळ कह, ... ।

× × ×

जाग जाग जसनाथ, जाग सुध बुध की बाणी।
लाग्या बाडी बाग, जात जुगती सूँ जाणी।
सबद, ग्यान, उपदेश, (भाखियो) जगत सूँ तारण ताणी।
भेद भरम सब मेट, केवटो आय अमाणी।
सुनमुख आयो सायवा, मस्तक मेलण हाथ।
स्याम सरण देपाळ कह ... ...।

× × ×

माय विहूणी धीवड़ी, उणत घणी संसार।
वीर विहूणी बैंनड़ी, पुरख विहूणी नार।
जिसी करेलण वेलड़ी, विकसै कांय उधार।
मोर विहूणी ढेलड़ी, हाँडै वणी मँझार।
नैंण सरोवर हुय रिया, वूठा अमी फुँवार।
थे मतजाणो कानड़! परणिया, म्हे छाँ अकन कुँवार।

हे स्वामी! इस संसार में मातृहीन बालिका, भ्रातृ-विहीना भगिनी और पुरुष विहीना नारी की जो अन्तरदशा होती है, वही अन्तरदशा आज मेरी हो रही है।

जैसे करेले की बेल बिना आधार के विकास नहीं कर सकती है; वैसे ही मैं आपके आधार के बिना कैसे विकसित (प्रसन्न) हो सकती हूँ?

बिना मूर्ति के जैसे देवालय, बिना तट के जैसे सरोवर शोभित नहीं होते हैं, वैसे ही आज मैं आपके बिना अशोभनीय बन रही हूँ। मयूर के बिना जैसे मयूरी जंगल में भटकती है; ठीक आज वही दशा मेरी है। प्राणनाथ! आपके दर्शनों के बिना आँखों से आँसुओं का क्षीरसागर उमड़ रहा है और अमृत के फुहारे छोड़ रहा है।

हे श्रीकृष्णरूप जसनाथजी! आप यह न समझें कि मैंने विवाह कर लिया है, मैं आपको विश्वास दिलाकर कहती हूँ कि मैं अक्षय-कुमारी हूँ।

जाग जाग जसनाथ, जुगत कर जीवण जालम।
ऊपर करो अलेख, सो जुग दीखै खालंग।
राम लखण नरसिंघ, जगत रा थे ही पालंग।
थे निकलंग ओतार, पापियाँ हियड़ै सालंग।
चान्द, सुरज, दीपक तपै, धरती अम्बर हाथ।
स्याम सरण देपाळ कह ... ... ।

इन सिलोकों के अतिरिक्त निम्नलिखित सिलोक भी उपलब्ध है—

जती सती सूँ कराँ वीनती, कैसे सिवराँ गुरु जसनाथ।
यूँ मन पायल पग ज्यूँ डोलै, चित्त नहीं इक धारा।
कालर खेत कणक को बायो, कण नहीं निपज्यो सारा।
घोरा सेती करी ठगाई, बिन बोल्याँ दीन्या चंकारा।
देखै चन्दो देखै सूरज, देखै नवलख तारा।
स्याम सरण देपाळ कह, अवचळ गुरु हमारा।

सती काळलदे के पत्थरों को रुला देनेवाले विरह-रुदन को सुनकर भी जब सिद्धाचार्य श्रीदेव जसनाथजी प्रकट न हुए, तब सती का धैर्य चरम सीमा को उल्लंघन करने लगा। प्रत्यक्ष दर्शनों में पड़ा यह व्यवधान असह्य हो गया। उन्होंने अपने भाइयों को सम्बोधित करके कहा—

उठो म्हारा च्यार जुगाँ रा बन्धवाँ, तुरबत करो तयार।
तुरबत खाना सोहना, मोतियाँ लेवो वधार।
उठो म्हारी सँग री सहेलियाँ, गावो मंगळा-चार।
उठो म्हारी कुंज सुहावण्या, नेवर रै झिणकार।
सुरग सिधारया देवता, कळा रही संसार।
सतियाँ सबद सम्हळावियो, (वाँचो) हरमल करो विचार।

हे मेरे चार जन्म के बान्धवो! उठो, और मेरे लिए समाधि तैयार करो, जब प्राणनाथ मुझे दर्शन देना भी उचित नहीं समझ रहे है तब समाधि लेना ही उचित है। हे मेरे सग की सहेलियों! उठो, और मगलाचार के गीत गाओ। हे कुरजो जैसी सुन्दरियों! अपनी पायले झकृत करती हुई उठो! ऐसा पता चलता है कि श्रीदेव जसनाथजी ने स्वर्गारोहण कर लिया है और केवल उनकी कला ही ससार में शेष रह गई है। हारोजी तुम भी अपने विचार प्रकट करो, मुझे अब क्या करना चाहिए!

हारोजी चुप रहे। वे कुछ न बोले। 'गोरखमाळिये' पर उपस्थित सेवकवर्ग भी किंकर्त्तव्यविमूढ रहा। वह क्या कहे, कुछ सोच नहीं पारहा था।

पर सतीजी की आज्ञानुसार समाधि तैयार करदी गई। समाधिस्थ होने से पूर्व सतीजी ने पुनः मानसिक प्रार्थना की और प्रार्थना के फलस्वरूप सिद्धाचार्य प्रकट हो गये। सबने सिद्धाचार्य के दर्शन कर जय जयकार किया।

प्रकट होकर सिद्धाचार्य ने अपने प्रिय शिष्य हारोजी से कहा—

गुराँ रो माघ न चीनो हरमल, साथै थकाँ विसारया।

हे हरमल! तुम ने गुरु के साथ रहकर भी उसके रहस्य को नहीं समझा! भ्रम में ही पड़ा रह गया।

हारोजी ने निवेदन किया—

अमर काया री आस करैं हो, प्रथम मना विसारया ।

आप अपंपर हुया सुरगाँपत, लोटी हार उचारया ।

मैंने इस भेद को इसलिए भुलाये रखा कि मैं तो आपके इस शरीर के अमर होने की आशा करता था। आप तो युग-युग से अमर हैं। हम ने तो आप के इस क्षणिक अन्तरध्यान को ही आपका स्वर्गारोहण मान लिया था। पर आपने पुनः दर्शन देकर हम सब को कृतार्थ कर दिया।

हारोजी ने विनयावनत होकर उस समय सिद्धाचार्य से निवेदन किया कि महाराज, आप तो अपनी लीला समेट रहे हैं, पर मुझ दास के लिए आपकी क्या आज्ञा है, मैं तो आपके श्रीचरणों में रहकर भी कोई आध्यात्मिक तत्त्व नहीं समझ पाया। भगवन् ! आप सर्वशक्तिमान हैं। मेरे हृदय में ज्ञान की ज्योति जगाने की कृपा करें।

हारोजी की निश्छल तथा प्रेम भरी प्रार्थना सुनकर सिद्धाचार्य ने कहा—

हे हरमल ! तुम मेरे परिक्रमा दो; जिससे तुम्हारे हृदय में सच्ची ज्ञान ज्योति जगेगी, समस्त युगों और तीनों कालों का हस्तामलकवत् बोध हो जायेगा।

श्री गुरुदेव की आज्ञानुसार हारोजी ने उनकी प्रदक्षिणाएँ देनी प्रारम्भ कीं। जैसे ही प्रदक्षिणा प्रारम्भ की कि उनमें ज्ञानतत्त्व का प्रादुर्भाव होने लगा और प्रति प्रदक्षिणा में एक एक 'सबद' स्वतः उच्चरित होने लगा—ये 'सबद' जसनाथी साहित्य में 'ताछ'' नाम से प्रसिद्ध हैं।

(१) ओं गुरुजी ! ओंकारे रम रैं'या जद गुरु हैवदा घोर अँधार ।
आपाणे आप उपाविया खिंडाड़िया विस्तार ।
धरत सरेची (नन्दे) गोळरी, धर सुरगाँपत पार ।
हनिया राम, मरेविया, (गुरु गोरख) थाप्या वेद विचार ।
पुरिया नाथ मैंतोन्दिया, मनग्या (देवों) नमा उधार ।
वेद लिया परमाण सूँ, आप अप्या निरकार ।
भगत पंलाद (नैं) मनायिओ, दाणुँ फेर्यो भार ।

इधर हारोजी प्रदक्षिणा करते हुए गुरु-गुण गानकर अपनी एकनिष्ठा का परिचय दे रहे थे और गुरु प्रवर्तित धर्म का वास्तविक रूप सेवकवर्ग को दिखला रहे थे तथा प्यारल सती की प्रार्थना पर सिद्धाचार्य ने उन्हें उपदेश देते हुए आज्ञा दी कि तुम टोडरजी के पास मालासर चले जाना।

चार युगों की चार परिक्रमा कर चुकने के बाद हारोजी ने सिद्धाचार्य को "ओंनमो आदेश" कहकर वदना की। सिद्धाचार्य ने भी 'प्रत्यादेश' किया और कहा—

हारा ! तुम अपनी जन्मभूमि बम्बलू चले जाना और वहाँ इस धर्म के प्रचार के माध्यम से लोगों के नैतिक जीवनस्तर को ऊँचा उठाना।

हरतो हिरणाकस (नैं) निरदळ्यो, ने'रॉ कियो बुहार।
पाँच (किरोडाँ) पै'लादो ले तिर्‌यो, ले'र उबार्‌यो पार।
श्री जसवंत धर्णी सरेंवताँ मन सों मती बिसार।
सन् रै बीड़े चाढ़ कै, पां'चावै गुरु पार।
सत् (जुग), त्रेता, द्वापर, कळजुग, बाचा म्हाँ सूँ पाळ।
जोग जुगाँ रा पोळिया, ग्यान रै'यो संसार।
कायम (राजा) बोहर आविया, ओळखिया हरमाल।
आग्यूँ कह (गुरु) जसनाथजी, बैठो (हरमल) करो बिचार।

× × × ×

सत् जुग ही वरताविये, (आयो) त्रेता जुग रो बार।
राणी तारा (दे) रोहितास कुँवर, (राजा हरचँद) करणी रो सुचियार।
नीर तव्यो तीनूँ जणाँ, भीख भिख्यो भिखियार।
अरथ दरीवाँ परहर्‌या, कोट गढाँ बेजार।
आण दुवाई मेट कै, छोड चल्या घर बार।
ऑके ऑको वाजियो, बीडो (मेल्यो) लखण कुँवार।
राणे रावण (नैं) मारियो, लक तणों छत्र धार।
साता (किरोड़ाँ) हरचँद ले तिर्‌यो, लेर उबार्‌यो पार।
श्री जसवँत धर्णी ... . ।
.. . . हरमल करो विचार।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने हारोजी को अपना निष्ठावान एवं अधिकारी शिष्य समझ कर उन्हें अपनी स्मृति-स्वरूप सेवा-सामग्री 'माला-मेखली' प्रदान की और कहा—

"यह सेवा-सामग्री तुम अपने पास रखना, आज से ठीक छै मास बाद हमारी ज्योति जगेगी अर्थात् हम स्वयं किसी अन्य व्यक्ति में प्रकट होंगे, उसे यह पवित्र सेवा-सामग्री प्रदान कर देना।"

सरल स्वभाव हारोजी ने पूछा—

"पूज्य गुरुदेव ! मैं उस महामहिम पुरुष को कैसे पहिचान सकूँगा, जिसमें आपकी ज्योति आविर्भूत होगी !"

सिद्धाचार्य ने बताया—

"हरमल ! उस व्यक्ति की पहिचान यही होगी कि वह व्यक्ति प्रथम मिलन में ही तुम्हारी कनिष्ठिका (चिटली) अँगुली पकड़ लेगा। उसे ही तुम मेरा प्रतिनिधि समझना और यह सेवा-सामग्री उसे प्रदान कर देना।"

त्रेता जुग वरताविये, आयो (द्वाजुग) पँडवाँ (रो) वार।
बात करैं देऊ-देवता, जीभ लुळै कई वार।
पंडवा अलख सरेवियो, कोरवाँ कियो हंकार।
केरू (नां) भो-भो पाॅतर्‍या, गाफल खरा गिंवार।
पंडवाँ अलख सरेवियो, (वै सँदे) गया'ज सुरगाँ द्वार।
पाँण्डु दळ में थोड़की, कोरवाँ अन्त न पार।
दो जुग कोरवाँ दीजसी, दो जुग (वाँरी) माय गँवार।
नवाँ (किरोड़ाँ) जहूठळ ले तिर्‍या, ले'र उवार्‍या पार।
श्री जसवंत धणी सरेवता ....।
.... हरमल करो विचार।

× × × ×

द्वा जुग वरताविये, कळजुग महमदी (रो) वार।
मासां मास उड़ावसी, वरसो वरसी छात।
नर निकळंग जो जागसी, छेड़ो सो परवार।
संता (नैं) सरणों राखसी, गुर गोरख (रै) परमाण।
बा'र (किरोड़ाँ) निकळंगजी ले तिरै लेर उवारै पार।
श्री जसवंत धणी सरेवताँ मन सूँ मती विसार।
नव रै वाँरै पाळकर, पोंचावै गुरु पार।

समस्त सेवक समुदाय को यथोचित आदेश उपदेश देकर सिद्धाचार्य श्रीदेव जसनाथजी विक्रम संवत् १५६३ आश्विन शुक्ला सप्तमी शुक्रवार को[1] समाधि में[2] बैठकर ब्रह्मज्योति में लीन हो गये।

इस विषयक जसनाथ-सम्प्रदाय में यह 'सबद' प्रचलित है:—

सात्यूँ सूकर मास आसोजी, करमन धीर करारा।
भँवर गुफा में टापी रोपी, नेछल नेत विसारचा।
सुरग मँडळ सळिहाण रचायो, मेढ़ बणी ज्यूँ पाया।
जपो अजप्पा जाप, गुरु म्हानैं फरमाया।

---

[1] सत (जुग) त्रेता, द्वापर, कळजुग बाचा म्हाँ सूँ पाळ।
जोग जुगा रो पोळियो, ग्यान रै'यो ससार।
कायम राजा बाहर आविया, ओळखिया हरमाल।
आग्यूँ कह (गुरु) जसनाथजी, बैठो हरमल करो बिचार।

[2] (१) सम्वत पन्द्रा सो तेसठ आई, मास आसोज सातम सुध पाई।
सुकरवार बरत्यो दिन आई, उण दिन नाथजी समाधि लगाई।
(सिद्ध रामनाथ, यशोनाथ पुराण पृ० ८८)

यशोनाथ पुराण में लिखा है कि योगेश्वर सिद्ध श्री जसनाथजी महाराज २४ वर्ष की अवस्था में अन्तर्ध्यान हुए थे। समाधि के दिन उनकी अवस्था २४ वर्ष की ही थी।

प्रादुर्भाव विक्रम सम्वत् १५३९ कार्तिक शुक्ला एकादशी, योगदीक्षा विक्रम सम्वत १५५१ आश्विन शुक्ला सप्तमी और समाधिस्थ—तिरोहित होने की तिथि वि० स० १५६३ की आश्विन शुक्ला सप्तमी है। यों २४ वर्ष की अवस्था सत्य प्रमाणित है।

(२) श्री जसनाथ समाधि सुविचारा, यम नियम सुद्ध आसण धारा।
पूरक, रेचक, कुम्भक, राई, प्रत्याहार, सुयोग सदाई।
ध्यान, धारणा, अष्ट समाधि या विध करम सुक्रिया साधि।
योग युक्त किये ही सुनीति, या से विरुद्ध होत अनीति।
(यशोनाथ पुराण, समाधि प्रकरण, पृ० ८७)

होम - जिग - जाप - थळ रा थान सुधारो ।
आगै अभा देई-देवता, जाँधूँ लम्बी भुजा पिसारो ।
गुरु प्रसाद कह हारोजी, धुरलो ग्यान विचारो ।

यही 'सबद' पाठान्तर भेद से इस प्रकार भी है —

सुरग मँडळ खळिहाण मचायो, भेद ब्रणी वो पायो ।
अतरी जरणा, विखमी बरणा, इदक'ज अेड़ी द्वारा ।
ओरत सोरत होम भणीजै, जुग जीवण सुधारो ।
बीजो वाणिज नय कीजसाँ, (म्हानैं) लागै हर रो नाम पियारो ।
सिद्ध सुरगापत पों'चिया, थळ रो थान सुँवारो ।
सुरगापत री सेरियाँ, गुरु जसनाथ पधारो ।
गुरु प्रसाद भणै 'सिध हरमल', धोरण बात विचारो ।

प्राचीनता की दृष्टि से जसनाथी साहित्य' में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की समाधि के विषय में उपर्युक्त 'सबद' ही प्रमाण रूप माना जाता है। परन्तु इस 'सबद' से यह प्रमाणित नहीं होता कि सिद्धाचार्य और सती काळलदे ने एक साथ ही या पृथक् पृथक् समाधि ली थी। पर कतरियासर के श्री जसनाथजी के मन्दिर में एक ही समाधिस्थल है; जिस पर सदैव 'भगवा चादर' के नीचे 'पंवरी' (ओढ़नी, स्त्री-वस्त्र) चढ़ी रहती है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि माता काळलदे ने सिद्धाचार्य की समाधि के पास ही समाधि ली थी और दोनों समाधियों को अन्दर रखकर ही मन्दिर बनाया गया है।

जन श्रुति है कि सिद्धाचार्य ने समाधि लेते समय कहा था कि सती काळलदे की पूजा यहाँ से पूर्व में जहाँ सती काळलदे ने रथ से उतर कर प्रथम विश्राम लिया था और हारोजी को मेरे पास भेजा था होगी। यहाँ तो केवल मेरी ही समाधि की पूजा होगी। इसीलिए महासती काळलदे की पूजा व मेला उक्त स्थान पर होता है, जहाँ वर्तमान में सतीजी का मन्दिर बना हुआ है।

एक धारणा यह भी है कि सती काळलदे ने जहाँ उनका अलग मन्दिर बना हुआ है, वहाँ समाधि ली थी; पर इस बात को वि० सं० २०१३

समस्त सेवक समुदाय को यथोचित आदेश उपदेश देकर सिद्धाचार्य श्रीदेव जसनाथजी विक्रम संवत् १५६३ आश्विन शुक्ला सप्तमी शुक्रवार को[1] समाधि में[2] बैठकर ब्रह्मज्योति में लीन हो गये।

इस विषयक जसनाथ-सम्प्रदाय में यह 'सबद' प्रचलित है —

सात्यूँ सूकर मास आसोजी, करमन धीर करारा।
भँवर गुफा में टापी रोपी, नेछल नेत त्रिसारथा।
सुरग मँडळ सळिहाण रचायो, मेढ़ त्रणी ज्यूँ पाया।
जपो अजप्पा जाप, गुरु म्हानैं फरमाया।

---

[1] सत (जुग) त्रेता, द्वापर, कळजुग बाचा म्हाँ सूँ पाळ।
जोग जुगा रो पोळियो, ग्यान रै'यो ससार।
कायम राजा बाहर आविया, ओळखिया हरमाल।
आग्यूँ कह (गुरु) जसनाथजी, बैठो हरमल करो विचार।

(१) सम्वत पन्द्रा सो तेसठ आई, मास आसोज सातम सुद पाई।
सुकरवार बरत्यो दिन आई, उण दिन नाथजी समाधि लगाई।

(सिद्ध रामनाथ, यशोनाथ पुराण पृ० ८८)

यशोनाथ पुराण में लिखा है कि योगेश्वर सिद्ध श्री जसनाथजी महाराज २४ वर्ष की अवस्था में अन्तर्ध्यान हुए थे। समाधि के दिन उनकी अवस्था २४ वर्ष की ही थी।

प्रादुर्भाव विक्रम सम्वत् १५३९ कार्तिक शुक्ला एकादशी, योगदीक्षा विक्रम सम्वत १५५१ आश्विन शुक्ला सप्तमी और समाधिस्थ—तिरोहित होने की तिथि वि० स० १५६३ की आश्विन शुक्ला सप्तमी है। यों २४ वर्ष की अवस्था सत्य प्रमाणित है।

(२) श्री जसनाथ समाधि सुविचारा, यम नियम सुद आसण धारा।
पूरक, रेचक, कुम्भक, राई, प्रत्याहार, सुयोग सदाई।
ध्यान, धारण, अष्ट समाधि, या विध करम सुक्रिया साधि।
योग युक्त किये ही सुनीति, या से विरुद्ध होत अनीति।

(यशोनाथ पुराण, समाधि प्रकरण, पृ० ८७)

होम – जिग – जाप – थळ रा थान सुधारो ।
आगै अभा देई–देवता, जाँबू लम्बी भुजा पिसारो ।
गुरु प्रसाद कह हारोजी, धुरलो ग्यान विचारो ।

यही 'सबद' पाठान्तर भेद से इस प्रकार भी है.—

सुरग मँडळ खळिहाण मचायो, भेद वणी रो पायो ।
अतरी जरणा, विखमी वरणा, इदक'ज अेढ़ी दारा ।
ओरत सोरत होम भणीजै, जुग जीवण सुधारो ।
वीजो वाणिज नय कीजसाँ, (म्हानैं) लागै हर रो नाम पियारो ।
सिद्ध सुरगापत पों'चिया, थळ रो थान सुँवारो ।
सुरगापत री सेरियाँ, गुरु जसनाथ पधारो ।
गुरु प्रसाद भणै 'सिध हरमल', धोरण वात विचारो ।

प्राचीनता की दृष्टि से जसनाथी साहित्य' में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की समाधि के विषय मे उपर्युक्त 'सबद' ही प्रमाण रूप माना जाता है। परन्तु इस 'सबद' से यह प्रमाणित नहीं होता कि सिद्धाचार्य और सती काळलदे ने एक साथ ही या पृथक् पृथक् समाधि ली थी। पर कतरियासर के श्री जसनाथजी के मन्दिर में एक ही समाधिस्थल है; जिस पर सदैव 'भगवां चादर' के नीचे 'पंवरी' (ओढ़नी, स्त्री-वस्त्र) चढ़ी रहती है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि माता काळलदे ने सिद्धाचार्य की समाधि के पास ही समाधि ली थी और दोनों समाधियों को अन्दर रखकर ही मन्दिर बनाया गया है।

जन श्रुति है कि सिद्धाचार्य ने समाधि लेते समय कहा था कि सती काळलदे की पूजा यहाँ से पूर्व मे जहां सती काळलदे ने रथ से उतर कर प्रथम विश्राम लिया था और ढ़ाबाजी को मेरे पास भेजा था होगी। यहां तो केवल मेरी ही समाधि की पूजा होगी। इसीलिए महासती काळलदे की पूजा व मेला उक्त स्थान पर होता है, जहां वर्तमान में सतीजी का मन्दिर बना हुआ है।

एक धारणा यह भी है कि सती काळलदे ने जहां इनका अलग मन्दिर बना हुआ है, वहीं समाधि ली थी, पर इस बात को वि० सं० २०१३

के श्रीकोलायत के मेले पर एकत्रित हुए सम्प्रदाय के लोगों ने निराधार बताया और इस मत को सम्पुष्ट किया कि सप्तमी को सिद्धाचार्य के साथ ही पृथक् समाधि खुदवा कर माताजी समाधिस्थ हुई थीं।

यशोनाथ पुराण में उल्लिखित निम्न दोहे से भी इस मत की पुष्टि होती है —

योगेश्वर जसनाथजी, योग युक्त निज धार।
नाथ सती निज परम गति, ओं सब्द सत सार[1]।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के समाधिस्थ होजाने के पश्चात् सम्प्रदाय की विशेष परिपाटी के अनुसार कतरियासर वालों ने श्री जागोजी[2] को अपने मण्डल का मुख्य सिद्ध नियुक्त किया, जिसकी परम्परा अब तक चली आ रही है।

कतरियासर में अन्य जीवित समाधियों का विवरण नीचे लिखे अनुसार है:—

(१) जसपालजी – ये कुलगुरु देवपाल पाण्डिया के सुपुत्र थे। इनकी तपस्थली आजीवन कतरियासर की बाड़ी ही रही। (२) लछुनाथजी— कतरियासर में अब भी इनकी समाधि पर एक छोटा-सा देवालय बना हुआ है। (३) गंगा जाटनी—यह साधूणा ग्राम की थीं। (४) ग्रहनाथजी (५) सती—यह ग्रहनाथजी की लड़की थी। (६) सती—यह भी ग्रहनाथजी की ही सुपुत्री थी।[3] (७) अमीनाथजी (८) रेडोजी नाई (९) किसी अन्य सिद्ध की समाधि है।

---

(१) वही, पृ० ८७

(२) ये हमीरजी के छोटे भाई राजोजी के सात लड़कों में से थे। कुछ लोगों का मत है कि सिद्धाचार्य के योग-दीक्षा लेने पर जब हमीरजी ने विलाप किया तो सिद्धाचार्य ने ही हमीरजी को वरदान दिया कि तुम्हारे एक और पुत्र जन्म लेगा। यही ये जागोजी हैं।

(३) इन दोनों सतियों का कोई विशेष वृत्त उपलब्ध नहीं हो सका।

सप्तम अध्याय

सिद्धाचार्य की उत्तर परम्परा

बमलू[1]—

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के समाधिस्थ होने के बाद विक्रम संवत १५६३ आश्विन शुक्ला एकादशी को सिद्ध हारोजी कतरियासर से चलकर अपनी जन्मभूमि बमलू आ गये। वे गाँव की पश्चिम दिशा में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के सिद्धपीठ (बाड़ी) की स्थापना कर वहाँ तप करने लगे। जब उन्हें तप करते-करते ६ मास का समय व्यतीत हो गया; तब एक दिन अचानक ही वहाँ श्री हाँसोजी[2] पधारे। उन्होंने पहुँचते ही सहसा श्री हारोजी

---

(१) यह ग्राम बीकानेर शहर से पूर्व में सात कोस दूर स्थित है। दिल्ली-बीकानेर रेल्वे लाईन की नापासर स्टेशन से लगभग चार कोस उत्तर दिशा में है। गाँव के प्राय: समस्त लोग जसनाथ मतानुयायी हैं। यहाँ पर भी कतरियासर की तरह वर्ष में तीन जागरण पर्व मनाये जाते हैं। इन जागरणों के अवसर पर सुगन्धित द्रव्ययुक्त मनों घृत का हवन होता है। बाड़ी में श्री हारोजी की समाधि पर सुन्दर मन्दिर बना हुआ है तथा मन्दिर में चारों ओर पक्का चौक बना हुआ है। निकट ही कतरियासर के भूतपूर्व 'सिद्ध जस्सुनाथजी' का मन्दिर है। बाड़ी में अन्य जीवित समाधियों पर भी स्मारक रूप में छोटे-छोटे देवालय बने हुए हैं। बाड़ी का दृश्य बड़ा नयनाभिराम है। बाड़ी में जाल के कई सुन्दर वृक्ष हैं जो बाड़ी की शोभा को द्विगुणित कर रहे हैं। बमलू ग्राम में प्रवेश करने वालों को बाड़ी उच्च स्थान पर स्थित होने के कारण दूर ही से दिखाई पड़ती है। किसी समय यहाँ हारोजी की यात्रा के निमित्त बड़ा भारी मेला लगता था जिसमें बीकानेर शहर के बड़े बड़े व्यापारियों की दुकानें लगा करती थीं। श्री हारोजी की बाड़ी के सेवक अब भी उनकी समाधि के दर्शनार्थ दूर दूर से आते हैं। कतरियासर की यात्रा तब तक सफल नहीं समझी जाती जब तक कि बमलू की बाड़ी के दर्शन न कर लिए जाय। यही कारण है कि कतरियासर की बाड़ियों के दर्शनार्थ आये हुए भक्तगण बमलू-ग्राम की बाड़ी के दर्शन करने अवश्यमेव पधारते हैं।

(२) इसका विस्तृत वर्णन आगे दिया गया है।

की कनिष्ठिका (चिटली) अगुली पकड़ली। अगुली पकडते ही श्री हारोजी को समाधि के समय निर्दिष्ट सिद्धाचार्य की वाणी की स्मृति आई। पर श्री हारोजी के मन में दुविधा ही रही कि कहीं काक्तालिका न्याय से ही अगुली न पकड़ी गई हो।

सुख सम्वाद पूछने के बाद श्री हारोजी ने सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की सेवा-सामग्री 'माळा-मेखळी' प्रदान करने की आज्ञा श्री हाँसोजी से कह सुनाई। पर निश्छल हृदय हारोजी ने साथ में यह भी निवेदन कर दिया कि मै गुरु (समाधि) की साक्षी में ही यह भेंट अर्पित करूँगा। श्री हाँसोजी ने इसे स्वीकार कर लिया और दोनों कतरियासर की ओर चल पडे।

श्री हाँसोजी और श्री हारोजी सिद्धाचार्य की समाधि पर आये। श्री हारोजी ने समाधि को 'ओं नमो आदेश' करके समाधि पर माला-मेखळी' रख दी और सिद्धाचार्य से प्रार्थना की कि "हे देव, यदि श्री हाँसोजी में आप की ज्योति प्रकट हो गई है तो यह सेवासामग्री (माला मेखळी) उनके पास स्वतः ही चली जाय। मैं अल्पज्ञ हूँ। मुझे किसी परीक्षा में न डालें।"

जैसे ही श्री हारोजी ने 'माला-मेखळी' सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की समाधि पर रखी, वैसे ही सबके देखते २ स्वत ही उड़कर श्री हाँसोजी के पास चली गई। यह आश्चर्यजनक चमत्कार देखकर उपस्थित जन-समुदाय और श्री हारोजी विस्फारित नेत्र हो जय जयकार कर उठे।

इस प्रकार 'माला-मेखळी' के उड़कर स्वत. ही श्री हाँसोजी के पास चले जाने से सिद्धाचार्य के सेवक उन्हें सिद्धाचार्य का प्रतिनिधि रूप मानकर 'गुरुपद' से ही सम्बोधित करने लगे।

श्री हाँसोजी कतरियासर ही विराजमान रहे और श्री हारोजी सिद्धाचार्य की समाधि को 'आदेश-वदना' करके पुन त्रमलू लौट आये।

श्री हारोजी महाराज सिद्धाचार्य के समाधिस्थ होने के बाद लगभग १२ वर्ष तक इस भौतिक देह से अनेकों धर्म-कार्य करते हुए गुरु प्रतिपादित छत्तीस धर्म-नियमों का पालन एव प्रचार करते रहे। श्री हारोजी ने वि० स० १५७५ आश्विन शुक्ला सप्तमी रविवार को अपनी तपोभूमि (बाड़ी) मे

जीवित समाधि देने के लिए बमलू गाँव के निवासियों का आह्वान किया किन्तु ग्रामवासियों ने जमीन खोदकर जीवित समाधि देना उचित नहीं समझा। इससे श्री हारोजी निराश नहीं हुए। निदान उन्होंने वि० सं० १५७५ की आश्विन शुक्ला एकादशी शुक्रवार को पृथ्वी माता से प्रार्थना की कि हे माता! समाधिस्थ होने के लिए मुझे अपने अन्दर स्थान दो। श्री हारोजी की प्रार्थना पर पृथ्वी माता प्रसन्न हो वहाँ से विदीर्ण हो गई और हारोजी भूगर्भ में सदा के लिए समाधिस्थ हो गये।

'जसनाथी-सम्प्रदाय' में श्री हारोजी के समाधिस्थल बमलू धाम का बड़ा महत्व है। बमलू की बाड़ी में श्री हारोजी की समाधि के अतिरिक्त ६ अन्य जीवित समाधियाँ हैं। जिनका परिचय निम्नाङ्कित है:—

(१) बीणोजी— ये श्री हारोजी महाराज के इकलौते पुत्र थे। इनकी समाधि श्री हारोजी की समाधि के पास मन्दिर में ही है। इन्होंने किस सम्वत् में समाधि ली, यह अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया है। बीणोजी भी अपने पिता श्री हारोजी के बताये हुए मार्ग पर चलने वाले सिद्ध पुरुष थे।

(२) रायनाथजी— ये भी बीणोजी के इकलौते पुत्र थे। रायनाथजी ने अपने जीवन काल में बड़े बड़े यज्ञ आदि पवित्र कृत्य भी किये थे।

(३) दूधोनाथजी— ये श्री हारोजी की चौथी पीढ़ी में उत्पन्न हुए डायानाथजी के पुत्र थे।

(४) टूमानाथजी— ये भी सिद्ध पुरुष थे। इन्होंने १५० वर्ष तक एक ही झाड़ी के नीचे रहकर तप किया था।

(५) मेघाईजी सती— ये सती नाथासर के तरड़ सिद्धों की लड़की थी तथा बमलू के पूनमा सिद्धों की दादी थी।

(६) रामाई सती - इनके विषय में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है।

नोरंगदेसर[1]—

यहाँ धानोजी सिद्ध की जीवित समाधि है। ये बमलू की परम्परा में श्रेष्ठ सिद्ध हुए हैं। धानोजी वचन सिद्ध थे, जो बात इनके मुख से निकलती थी वह सत्य होती थी। धानोजी के अनेक संस्मरण 'जसनाथ-सम्प्रदाय' में बड़ी रोचकता से स्मरण किये जाते हैं।

एक बार धानोजी सिद्ध सींथळ ग्राम में से होकर कहीं जा रहे थे। उस समय वहाँ के एक चारण ने उनके सम्प्रदाय की हीनता प्रकट करते हुए कहा—

रळमळ पंथ चलायियो, जाँभै नै जसनाथ।
बरस थोड़ा ही चालसी, तीनसै'र साठ।

प्रत्युत्तर में सिद्ध धानोजी ने कहा—

कूड़ी कैं'ग्यो कूलिया, मन में राख्यो पाप।
पूत डॉगड़ी खैंचसी, आँधो होसी आप।
निराकार सूँ जोत प्रगटि, प्रगटी आपो आप।
बरस अनन्ताँ चालसी, चलावियो जसनाथ।

× × ×

एक बार मार्ग में चलते समय सिद्ध धानोजी ने एक ऊँट पर स्त्री सहित चढे हुए राजपूत सवार से कहा— 'मुझे भी ऊँट पर चढ़ालो।"

सवार यह कहकर चलता बना कि "जाल वृक्ष पर चढ़ जाओ।"

पीछे से एक और ऊँट सवार, जो ब्राह्मण था, आया। उसके साथ भी उसकी स्त्री थी। उसने भी धानोजी से मजाक में कहा—' चढोगे?"

धानोजी ने कहा - "हाँ"।

वह भी उनको जाल वृक्ष पर चढ़ने का संकेत कर ऊँट को सरपट दौडाकर चलता बना।

---

(१) यह ग्राम दिल्ली-बीकानेर-रेलवे लाईन की नापासर स्टेशन से चार कोस उत्तर में स्थित है।

धानोजी ने अपने हाथ को ऊंट की गर्दन की तरह अभिनीत किया और दौड़कर उन्हें जा पकड़ा और कहा -

ठाकर मर ठुकराणी मरसी, मरसी ऊँट मजीठो।
बामण मर बामणती मरसी, (पाँचारों) होसी एक अंगीठो।

धानोजी का इतना कहना था कि आकाश में भयानक गरजना करती हुई बिजली आ गिरी और वे पाँचों मर गये। केवल एक ऊँट बचा।

× × × ×

एक बार धानोजी सिद्ध को बीकानेर महाराजा ने बुलाया और बीगोडी (भूमि कर) देने को कहा। धानोजी ने उसी क्षण उत्तर दिया—

परगो लयो परारगी ल्यो, रळमिळ होगी सारगी
धानो सिद्ध धणी नैं ध्यावै, घोड़ी मरै हजारगी

ऐसा कहने पर तुरन्त ही राजा की घोड़ी मर गई। इसी प्रकार से इनके वचन सिद्धि के बहुत से उदाहरण मिलते हैं।

इनकी जीवित समाधि का सन सम्वत् अज्ञात है।

लिखमादेसर¹—

श्री हाँसोजी, सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के पिता हमीरजी के छोटे भाई राजोजी के लड़के थे। राजोजी सिद्धाचार्य के सांसारिक पितृव्य थे।

(१) यह ग्राम डूँगरगढ़ तहसील में डूँगरगढ़ से सात कोस पूर्व की ओर है। दिल्ली-बीकानेर-रेलवे लाइन की बिग्गा स्टेशन से ५ कोस उत्तर की ओर स्थित है। लिखमादेसर के निवासियों का रहन-सहन बड़ा ही पवित्र है। इसका कारण समस्त ग्रामवासी जसनाथ मतानुयायी हैं। यहां भी कतरियासर की तरह वर्ष में तीन बार जागरण पर्व मनाये जाते हैं। यहां की बाड़ी बड़ी ही रमणीय है। बाड़ी के पीछे गोचर भूमि भी है। जिसमें गांव के पशु चरते हैं। श्री हांसोजी महाराज के समाधिस्थल पर पुराने ढंग का गुम्बदनुमा मन्दिर बना हुआ है, यह मन्दिर दक्षिणाभिमुख है। इस मन्दिर के पास ही पश्चिम की ओर एक मन्दिर और भी है। बाड़ी का मुख्य द्वार भी दक्षिण की ओर खुलता है। दरवाजे के बाहर 'फकीर चौकी' बनी हुई है। जिस पर पर्वों के समय बैठ कर सिद्ध लोग रात्रि-जागरण मनाया करते हैं। फकीर-चौकी के ठीक सामने एक [illegible] (निवाण) बना हुआ है जो जागरणादि के समय बड़े उपयोग में आता है।

जिस समय सिद्धाचार्य समाधि लीन हुए, उस समय श्री हाँसोजी कतरियासर में नहीं थे। वे उत्तर की ओर से अनाज लाने के लिए कतार लेकर गये हुए थे। वहाँ उन्हें आशा से अधिक समय लग गया। कहा जाता है कि उत्तर की ओर से लौटते समय श्री हाँसोजी को रास्ते में गडा हुआ बहुत-सा द्रव्य प्राप्त हुआ। लोगों का अनुमान है कि इस धन-प्राप्ति का कारण कोई दैवी चमत्कार था। इसलिए उनके शरीर और मन मे कुछ अलौकिक रसानुभूति का अनुभव होने लगा।

जब वे कतार लेकर कतरियासर लौटे तब सिद्धाचार्य को समाधि में लीन हुए ६ मास व्यतीत हो गये थे। जैसे ही सिद्धाचार्य की भविष्यवाणी का दिन निकट आया, वैसे ही श्री हाँसोजी ने बमलू जाकर तपस्या में लीन श्री हारोजी की कनिष्ठिका (चिटली) अगुली[1] पकड कर "आदेश" किया।

यहाँ एक भरत का माळिया जो दर्शनीय है। इस पर बैठ कर अनेक महात्मा सिद्ध, सन्त एव साधको ने अपनी लक्ष्य-प्राप्ति के लिए कठोर तपस्या एव साधना की थी। बाडी मे मीठे जाल के कई सुन्दर एव सघन वृक्ष-समूह है। जिन्हे देख कर किसी सुरम्य घाटी की याद आ जाती है। इनके झुरमुटो मे मयूरादि पक्षी बैठे कल्लोल किया करते है। पक्षियो के निमित्त बाडी मे प्रचुर परिमाण मे चुग्गा-पानी दिया जाता है। लिखमादेसर की यात्रा के लिए दूर दूर के यात्री आते रहते है।

(१) हियाळी हाँसोजी प्रगट्या, निकळँग रै दिवाण।
'माव्या' गुरु री 'मेखळी' ऐ साचा सै'नाण।
पकडी चिटली आँगळी, स्वामी आप सुजाण।
राजैजी रा हँसराजजी, हुई बैठ्या आपाण।
राजाणी कह पाँतर्‌या, हरमल बण्या अजाण।
हरमल हाँसो भेळा हुया, भरिया अथग निवाण।
हरमल पढ़िया पिडताँ, वाँचो बेद-पुराण।
वीडो चन्नण म्हाँ कनै, किस्तूरी (परमल) मैं'काण।
गुरु दुवारो सेवता, जाण गगा को न्हाण।
अरघ देवाँ आदेस मनावाँ, पो उगतै भाण।

इस 'सवद' की शेषाश पक्तियाँ 'सुण लिया हाँसो कह' ऊपर आ गई है।

कतरियासर आकर श्री हांसोजी ने सिद्धाचार्य की समाधि पर उनकी दी हुई सेवा सामग्री 'माला-मेखळी' रखदी और श्री हाँसजी से कहा—महाराज, यदि आप में सचमुच ही गुरुदेव की ज्योति प्रकट हुई है तो यह 'सेवा सामग्री' स्वत. आपके पास चली आयेगी। सिद्धाचार्य के प्रताप से वह श्री हाँसोजी की गोद में चली गई।[२]

सिद्धाचार्य द्वारा प्रदत्त सेवा सामग्री 'माला-मेखळी' पाकर श्रीहाँसोजी महाराज कतरियासर में कितने दिन रहे यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता केवल इतना ही कहा जा सकता है कि 'माला-मेखळी' के मिलते ही वे वहाँ से रवाना हो गये। इस घटना से सम्बन्धित कूँपोजी का यह 'सबद' जसनाथ-सम्प्रदाय मे बड़ा प्रसिद्ध है:—

सुण खींया हाँसो कहे, वेगो माण्ड पिलाण।
बगसी 'माळा मेखळी', स्यामी आप सुजाण।
रिण में सुरळो खेरड़ो, वै साचा सैनाण।
माहि रा मेळा मँडै, आवै खलक जिहाण।
आवै देई-देवता, हिन्दू मुसळमान।
हिन्दू बाँचे पोथियां, काजी पढ़ै कुराण।
मेळा होसी मनसुवाँ, ईंट चढ़ै पाखाण।
रोगी आवैं रिणकता, हँसता पाछा जाय।
हंस गुरु फरमाइया, 'कूँपे' किया बखाण।

उस समय 'रिण' से सम्बन्धित लिखमादेसर का जंगल था; जहाँ के 'सुरळो खेजड़ो' के नीचे 'मावलियाँ' का निवास था। और उससे कुछ दूर ही विकट 'ढुंढ राक्षस' का आवास था। वहाँ लोग जाते तक घबराते थे। श्री हाँसोजी ने लोकहित की भावना से वहीं पहला डेरा लगाने का आदेश दिया।

उपर्युक्त 'सबद' का भावार्थ है— हे खिया, सुनो, शीघ्रतापूर्वक ऊँट पर जीन कसो, स्वयं श्री जसनाथजी ने 'माला तथा मेखळी' देदी है। जिस

(२) देखो वसन्त प्रसंग में

अरण्य में शमी का खोखला पेड़ हो, वहीं चलो और उसी शमी के नीचे अपना डेरा लगाओ।

लिखमादेसर के सिद्धों की मान्यता के अनुसार श्री हाँसोजी महाराज कयरियासर से चलकर तोलियासर पधारे। तोलियासर के पुरोहितों ने श्री-हाँसोजी महाराज से इसी स्थान पर बाडी बनाकर सदैव के लिए निवास करने की सादर प्रार्थना की। परन्तु उसे उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्हें तो 'रिण' नामक स्थान के खोखले खेजड़े के नीचे निवास-स्थल बनाना था। परन्तु अपने सेवकों और पुरोहितों के अनुरोध को सर्वथा टाल भी न सके। कुछ काल तक वहाँ निवास करना स्वीकार कर लिया।[1]

जनश्रुति है कि श्री हाँसोजी महाराज ने वहाँ ६ मास तक निवास किया। ६ मास के निवास काल में श्री हाँसोजी महाराज के पास बकरे और मींढे काफी इकट्ठे हो गये थे। क्योंकि हाँसोजी महाराज का उपदेश होता था कि जीव हिंसा नहीं करनी चाहिये और न ऐसे जीवों को व्यापारी (कसाई) के हाथ ही बेचना चाहिए, जो आगे जाकर छुरी के घाट उतारे जाँय।

इन्हीं सद्उपदेशों के कारण समीपवर्ती गाँवों के लोगों ने बकरा एव मीढों को कसाइयों के हाथ बेचना सर्वथा बन्द कर दिया और उन्हें वे श्री-हाँसोजी के पास ले जाकर छोड़ने लगे। बकरों एवं मींढ़ों की आयात संख्या बढ़ती देखकर श्री हाँसोजी ने अपने शिष्य कूँपोजी को थाट के बकरे चराने का काम सौंप दिया। कूँपोजी ने सहर्ष इस सेवा-कार्य के उत्तरदायित्व को अपने कल्याण का प्रशस्त मार्ग समझकर सम्भाला।

तोलियासर के पुरोहित कुछ समय तक श्री हाँसोजी की सेवा करते रहे और बकरों की थाट को भी नि शुल्क पानी पिलाते रहे। पर थाट के बकरों की संख्या दिन प्रति दिन बढती ही रही। अन्त में उन्होंने नि.शुल्क पानी

(१) तोलियासर मे अब भी श्री हाँसोजी महाराज की बाडी है इस ग्राम में ठाकुरजी का एक बहुत ही सुन्दर प्राचीन मदिर है। जिसकी मूर्ति बडी ही भव्य है। मन्दिर में एक शिलालेख भी है। ठाकुर-मन्दिर के अतिरिक्त इस ग्राम में भैरवजी का भी बहुत प्रसिद्ध मन्दिर है। जिसकी चाहरदिवारी कोटनुमा बनी हुई है। बीकानेर राज्य में जिसकी खूब मान्यता है।

पिलाना बन्द कर दिया। कूँपोजी ने थाट को पानी न पिलाने की शिकायत की जिस पर श्री हाँसोजी ने ग्राम-पंचों को कहा, पर वे उदासीन ही रहे।

धर्म कार्य में गाँववालों की ऐसी विपरीत मनोवृत्ति देखकर श्री-हाँसोजी ने तालियासर के कूओं का पानी सूख जाने का शाप दे दिया और आप वहाँ से उठकर खोखले खेजड़े वाले 'रिण' में आ गये। जहाँ अब लिखमादेसर है। लिखमादेसर की 'रिण' में खोखले खेजड़े के नीचे उन्होंने अपना आसन जमा दिया। उस स्थान पर बालग्रहरूप देवियों (मावलियों) का अधिकार था। लेकिन श्री हाँसोजी ने अपने सिद्धयोग बल से 'मावलियों' को निकाल दूर कर दिया। जब 'मावलियों' ने अपना पूर्व अधिकृत स्थान को छोड़ने में बहुत आनाकानी की तब श्री हाँसोजी ने एक बड़े भारी रोहित (रोहिड़े) के पेड़ को उखाड़ कर उन पर आक्रमण कर दिया। 'मावलियों' ने श्री हाँसोजी की सामर्थ्य के सामने अपनी शक्ति स्वल्प समझ कर वहाँ से प्रयाण करने में ही अपना लाभ समझा। जाते २ 'मावलियाँ' कूएं की चाठ और सफेद चींटियों के बिल (कीड़ी नगरा) को भी अपने साथ लेती गयीं। श्री हाँसोजी ने जिस भारी रोहित वृक्ष को उखाड़ कर 'मावलियों' पर आक्रमण किया था, वह 'रोहिड़े' का वृक्ष आज भी 'बायला'[१] ग्राम के जंगल में पड़ा है।

'मावलियों' के चले जाने के बाद श्री हाँसोजी ने वहाँ अपना स्थायी आसन जमा दिया। पर इतने ही से उन्हें सन्तोष नहीं मिला। 'मावलियाँ' तो चली गयीं पर 'ढुँढ़ राक्षस' अभी वहीं मौजूद था; जो रह रहकर उत्पात किया करता था। श्री हाँसोजी ने उसे भी मन्त्रपाश में बाँध (कील) दिया। अब यह स्थान निष्कण्टक एवं निरापद बन गया था।

श्री हाँसोजी महाराज के अलौकिक चमत्कारों की प्रशंसा चारों ओर

(१) यह ग्राम सरदारशहर से पास पश्चिम की ओर है। मावलियों के स्थान के लिए बायला बीकानेर डिवीजन का प्रसिद्ध ग्राम है। श्री हाँसोजी द्वारा 'रिण' से निकाले जाने पर मावलियों ने अपना स्थान इसी ग्राम को बनाया। वह चाठ अब तक बायला ग्राम के कूए के पास पड़ी है।

फैल गई। अब तो आसपास के लोग उन्हें अलौकिक, अभूतपूर्व और असीम सिद्धि-सम्पन्न चमत्कारिक पुरुष मानने लगे।

श्री हाँसोजी की प्रशंसा से आकृष्ट होकर 'बिग्गा' ग्राम का अधिपति रामसी श्री हाँसोजी का शिष्य हो गया। उसने उन्हें एक घोडी भेंट की। श्री हाँसोजी महाराज के चमत्कार के विषय में अनेक उपाख्यान हैं—

एक बार बडा भयकर दुर्भिक्ष पडा। लिखमादेसर के आसपास की जनता 'मऊ मालवे' की ओर चल पडी। यह देखकर श्री हाँसोजी ने जनता से कहा— 'मऊ-मालवे' जाने की कोई जरूरत नहीं। गुरुदेव की कृपा हुई तो यहीं सब प्रबन्ध हो जायेगा।

जनता श्री हाँसोजी के चमत्कारों से पूर्व ही परिचित हो चुकी थी। उन्होंने 'मऊ-मालवे' जाने का अपना निश्चय बदल दिया। श्री हाँसोजी अपनी गुदडी के नीचे से भूखी जनता को ढेरों अनाज निकाल कर देने लगे और अपनी बाड़ी के चारों ओर, चौरासी बीघा में परकोटा और 'भरत का माळिया'[२] बनाने लगे। यह देखकर बिग्गा का रामसी चौंका। उसने सोचा कि यह कोई सिद्ध एव महात्मा नहीं है—यह कोई राजवी है, जो गुप्तरूप से गढ का निर्माण करवा रहा है। उसने श्री हाँसोजी से लड़ाई करने के विचार से अपने द्वारा प्रदान की गई घोड़ी वापिस माँगी। पर श्री हाँसोजी ने वह घोड़ी देने से साफ इन्कार कर दिया। इससे भड़क कर रामसी ने श्री हाँसोजी पर चढ़ाई करदी। इस घटना से सम्बन्धित कूँपोजी का यह 'सबद' बहुत ही प्रसिद्ध है—

मेछ मळन घर ओतस्या, बैठा खरै'ज ध्यान।
जाय पुकारया मेछ नै, स'रै सुणाइ कान।
पापी दाणू कीलियो, गुरु री संक्या मान।
किला चिणावै भरत रा, पोळ चिणा (वै) पाखाण।

---

(२) वास्तुकला की प्राचीन पद्धति पर बना हुआ एक विशाल चबूतरा, जो ऊपर से नीचे तक भरती किया हुआ है। यह विशेपतया तोप के गोलो से सुरक्षित रहने के लिए बनाया जाता था।

दाणू उठियो कोपकर, हस्त पलाण्यो छात ।
साँझ पड़ी पैंडै चुवा, चरती माँझळ रात ।
कई माता कई ऊँघता, कई ऊजड़ कई वाट ।
सूता जागो देवजी.................... ।
पो फाटी पगड़ो भयो, दीवि नगारै डाक ।
सूता जागो देवजी, आवै दाणूँ साथ ।
बाहर आवो हँसराजजी, द्योनी डाण जगात ।
डाण्या बामण बाणियाँ, डाण्या साह दलाल ।
म्हारो डाण कुण झेलसी, इसड़ी कूण मजाल ।
धरती भार न झेलवैं, कोनी भराँ जगात ।
चान्द सुरज, साँसै पड़ै, भ्याँकू बरतैं रात ।
सत् को दीवो भोगवाँ, धरम सुणावाँ कान ।
जा दाणूँ घर आपणैं, वचन हमारो मान ।
दाणूँ उठियो कोप कर, घात्यो मुकट नैं हाथ ।
हँसराजजी झटकारियो, हस्त पड़्यो दुष्ट छात ।
गुरु सरणें कूँपो भणै, गुराँ री अवछळ जात ।

इस 'सबद' का भावार्थ है कि दानव-प्रकृति के रामसी ने हाथी पर बैठ कर हांसोजी पर हमला किया। पहले तो उसने श्री हांसोजी से कहा कि तुम्हें यहाँ रहने का कर देना पड़ेगा। उत्तर में राजा से श्री हांसोजी ने कहा कि ऐसा तो नहीं होगा। अन्य वर्णों की तरह हम किसी प्रकार का कर नहीं दे सकते, क्योंकि हम तो भगवान का दिया हुआ भोगते हैं। इसलिए हे दानव! हमारी बात मानकर अपने घर चले जाओ। ऐसा सुनकर दानव क्रोधित हो उठा और उसने श्री हांसोजी के जटा-मुकुट में हाथ डाला। उसने उनकी जटा को पकड़ना चाहा, पर श्री हांसोजी ने अपने हाथ का ऐसा झटका दिया कि वह हाथी सहित पृथ्वी पर आ गिरा और ढेर हो गया।

रामसी के मर जाने की खबर जब उसकी स्त्री लिखमा को मिली तो वह रोती कलपती श्री हाँसोजी के पास आई और भविष्य में अपने परिवार पर दया दृष्टि रखने की प्रार्थना करने लगी।

श्री हाँसोजी ने लिखमा से काहा—" तुम्हारे पति के द्वादशे के दिन हमारा चेला आयेगा। तुम उसे प्रेम पूर्वक भोजन कराना। वह प्रसन्न होकर तुम्हें आशीर्वाद देगा।

रामसी के द्वादशे पर कूँपोजी बिग्गा गये। वहाँ भोजन करने के लिए उनको किसी ने पात्र नहीं दिया, निदान कूँपोजी कुम्हार के घर से एक मिट्टी का पात्र ले आये और रामसी के घर भोजन करने बैठ गये। जब रानी ने कूँपोजी को देखा तो उसने परोसने वालों से कहा—'यह श्री हाँसोजी महाराज का 'थाट वालिया' चेला है। अत इन्हें अच्छी प्रकार से भोजन करवाना। ऐसा न हो कि ये भूखे रह जॉय'। भोजन परोसने वालों ने कूँपोजी को ५-७ बार परोसा परन्तु कूँपोजी फिर भी तृप्त नही हुए और वहीं बैठे रहे। ऐसा देखकर लोगों ने कूँपोजी को तिरष्कार पूर्वक थाली पर से उठा दिया। ऐसा करने से कूँपोजी रुष्ट हो गये। उन्होंने उस मिट्टी के पात्र को फोड़ते हुए कहा—'अब तो कुँवर के तीसरे में ही तृप्त होंगे अर्थात् रानी का लड़का मर जायेगा तब कहीं हमारी तृप्ति होगी।' ऐसा कह कर कूँपोजी 'रिण' आ गये।

रानी लिखमा को जब यह मालूम हुआ कि कूँपोजी नाराज होकर मेरे पुत्र के मरने का शाप देकर श्री हाँसोजी के पास चले गये हैं, तब वह भी श्री हाँसोजी के पास आई और रोती हुई बोली—'महाराज! आपके चेले ने मेरा वश नष्ट होने का ही शाप दे दिया है। किसी प्रकार हमारा नाम चले ऐसी दया-दृष्टि कीजिये।' रानी को बुरी तरह विलाप करते देखकर श्री हाँसोजी ने कहा—'ग्राम हमारा और नाम तुम्हारा।' कहते हैं तभी से उस ग्राम का नाम लिखमादेसर पड गया।

श्री हाँसोजी सिद्धाचार्य के अन्तर्ध्यान होने के पश्चात् लगभग छत्तीस वर्ष तक इस धराधाम को पवित्र करते हुए विचरण करते रहे। विक्रम

सं० १७६६ में लिखमादेसर में ही अपने आसन स्थान पर जीवित समाधि ले ली।

'जसनाथी साहित्य' में श्री हाँसोजी की प्रशंसा एवं स्तुति में अनेक 'सबद' उपलब्ध हैं; जिनमें 'गुरु हँसराजा' आदि विशेषणों से विभूषित किया गया है, जिनका सविस्तार प्रकाशन किसी स्वतन्त्र लेख में ही संभव है।

लिखमादेसर की बाड़ी मे श्री हाँसोजी के अतिरिक्त ६ अन्य जीवित समाधियाँ हैं:—

(१) गरीबदासजी— यह महात्मा 'नाथ-सम्प्रदाय' की बोहर गद्दी के महात्मा थे। लिखमादेसर के लोगों के कथनानुसार ये श्री हाँसोजी के सगे भाई थे और बोहर में जाकर योगी हो गये। लिखमादेसर के सिद्धों का मत है कि जसनाथ-सम्प्रदाय में इन्हीं के द्वारा 'भगवे वस्त्र' का प्रचलन हुआ था। इनकी समाधि का सम्वत् ठीक ज्ञात नहीं है।

(२) रामदासजी— ये लिखमादेसर के ब्राह्मण बताये जाते हैं। ये सिद्धाचार्य श्री देव जसनाथजी के अनन्य भक्त थे। इनकी समाधि पर दूध का भोग लगाया जाता है।

(३) छत्तूनाथजी— ये माँई जाति के सिद्ध थे। इन्होंने लिखमादेसर में रहकर ही अपना तपस्यामय जीवन व्यतीत किया।

(४) कुम्भनाथजी— ये विरक्त महात्मा थे। इन्होंने लिखमादेसर की बाड़ी में अपना आध्यात्मिक जीवन बिताया था। ये विद्वान होने के साथ ही सिद्ध पुरुष भी थे। उनकी मान्यता राजघरों तक थी। कहा जाता है कि जिस दिन इन्होंने जीवित समाधि लेने का निश्चय किया; उसकी प्रथम रात में ही गाँववालों को बाड़ी में हंसों के विमान जगमगाहट करते हुए उतरते दिखलाई पड़े थे।

(५) श्री लालनाथजी ये अट्ठारवीं सदी में उत्पन्न हुए थे। लालमदेसर (बीकानेर) आपकी जन्मभूमि थी। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि ये सत्तासर में गुरुद्वारा करने जा रहे थे। लिखमादेसर बीच में पड़ता था। जसनाथ-सम्प्रदाय के महात्मा कुम्भनाथजी इस गाँव में रहते थे और उस समय

जीवित समाधि लेने की सोच रहे थे। लालनाथजी सग वालों से निकल कर उनके दर्शनार्थ गये। कुम्भनाथजी समाधि मे बैठकर 'मतीरा-प्रसाद' वितरण करने लगे और बोले 'है कोई लेनेवाला' लालनाथजी ने वह प्रसाद ग्रहण किया, तभी से इनको वैराग्य हो गया। विलम्ब होता देखकर साथ वाले वहाँ गये और कहा कि यदि विरागी ही बनना था तो विवाह क्यों किया ! लालनाथजी ने उत्तर दिया—

बेहड़ा लिखिया ना टळै, दीया अंट बुळाय।

अर्थात् विधि का विधान टल नहीं सकता, फेरे (भॉवर) लेना तो भाग्य मे बदा था। पति के वैराग्य धारण करने पर उनकी पतिपरायणा स्त्री ने भी वैराग्य ले लिया और लिखमादेसर मे ही सिद्ध के यहॉ (भण्डारे में) रहकर तपस्या करने लगी। लालनाथजी की ऐतिहासिक कसौटी पर खरी उतरने वाली अनेकों जीवन-घटनाये हैं। श्री लालनाथजी के निम्नलिखित ग्रथ जसनाथी-साहित्य मे प्रसिद्ध हैं—

(१) हरि रस (दोहा-चौपाइयॉ)
(२) वरण विदा (नीति रचना)
(३) हर लीला (भक्ति विषयक)
(४) निकळॅग परवाण (कल्कि अवतार सम्बन्धी भविष्यवाणी)[1]
(५) जीव-समझोतरी (आध्यात्मिक)[2]
(६) फुटकर सबद, वाणी इत्यादि

(६) खेतनाथजी— ये जसनाथ-सम्प्रदाय में चलने वाली दुग्धाहारी मडली के प्रमुख महात्मा थे, पर इनके विषय में अधिक विवरण अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

---

(१) यह ग्रथ स्वय सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के श्रीमुख से प्रस्फुटित हुआ था, पर लिपिबद्ध न होने के कारण काल-गति से लुप्त हो गया। जिसको सिद्धाचार्य की दैविक प्रेरणा से ही श्री लालनाथजी ने पुन प्रचारित कर दिया। जसनाथ सम्प्रदायवालो का ऐसा ही मत है।

(२) पारीक-सदन, रतनगढ (राजस्थान) द्वारा प्रकाशित और इस लेखक द्वारा सम्पादित।

घिटाळू¹—

यहाँ दो बाड़ी हैं— एक 'धाड़ीवाल' और दूसरी 'पारणी' सिद्धों की है। 'धाड़ीवालों' की बाड़ी में दो जीवित समाधियाँ हैं। दोनों ही बाड़ियों में श्री जसनाथजी के सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं। प्रातः-सन्ध्या दोनों समय मन्दिरों में विधि-विधान से पूजा होती है। जीवित समाधियों में एक श्रीमैं'चन्दजी की है तथा दूसरी का वृत्त अभी अज्ञात है।

मैं'चन्दजी धाड़ीवाल—

ये सिद्ध श्री हाँसोजी महाराज के शिष्य थे। इससे पूर्व मैं'चन्दजी माताजी (देवी) के उपासक थे, इसलिए देवी के नाम पर जीवों की बलि चढ़ाकर तथा 'भोपा'² बनकर अनेकों प्रकार के पाखण्ड-युक्त प्रदर्शन किया करते थे।

---

(१) यह ग्राम बीकानेर (बीकानेर) से दक्षिण-पश्चिम में लगभग डेढ़ कोस की दूरी पर बसा हुआ है। यहां सिद्धों के दो बास हैं।

(२) देवी का उपासक जो पीले तथा लाल रंग का बागा पहनते हैं तथा हाथ में त्रिशूल भी रखते हैं और अनेक प्रकार के प्रदर्शन करते हैं।

(३) किम्वदन्ति है कि मैं'चन्दजी ने श्री हाँसोजी को प्रभावित करने के लिए सफाई के कई हाथ दिखाये थे, जैसे बहुधा 'भोपा' लोग दिखाया करते हैं। जब उन्होंने लकड़ी की साधना के सहारे थाळी को रोकने के लिए आकाश में थाली उछाली तो वह श्री हाँसोजी के सिद्ध योगबल से ऊपर की ऊपर ही रह गई।

ऐसा भी कहा जाता है कि मैं'चन्दजी को हृदयपरिवर्तन के लिए श्री हाँसोजी ने उनकी आँखें मूँदवाकर स्वर्ग दिखलाया था। वहां मैं'चन्दजी को प्यास लगी, श्री हाँसोजी ने वहां पवित्र त्रिवेणी बहती दिखा कर जल पी लेने के लिए कहा— मैं'चन्दजी ने पानी पीना चाहा, परन्तु अंजलि में नाना प्रकार के बाल, हाड और निकृष्ट मांस-पिण्ड दिखाई पड़े। ऐसा देखकर मैं'चन्दजी ने श्रीहाँसोजी से निवेदन किया। श्री हाँसोजी ने इसका असली कारण जानने के लिए मैं'चन्दजी को अपनी उपास्यादेवी के पास भेजा। देवी ने मैं'चन्दजी को वक्र दृष्टि से देखते हुए कहा— अरे! पापात्मा मांस-भोजन जिह्वा-स्वाद के लिए मेरा नाम लेकर लाखों निरपराध जीवों की हत्या की फिर भी तुझे स्वर्ग में आने का अवसर कैसे मिल गया। भाग यहां से। ऐसा कह माता ने मैं'चन्द को तिरस्कृत किया। यह रोमांचक वृत्तान्त सुनकर मैं'चन्द का पाप हाँसोजी के [illegible] गया और [illegible] इससे अपने आप को चरणों में श्री हाँसोजी के समक्ष बैठा पाया।

एक बार मै'चन्दजी 'काळूवाली' माता की यात्रा कर वापस लौट रहे थे। बीच में लिखमादेसर पड़ता था। यहाँ के श्री हाँसोजी महाराज की प्रसिद्धि सुनकर मै'चन्दजी उनके पास गये। उस समय मै'चन्दजी के पास माता पर बलि किये गये बकरों की ताजा खालें थीं। उन्होंने खालों को लकड़ी के सहारे अटका कर वृक्ष के सहारे छोड़ दिया और आप सीधे श्री हाँसोजी के पास उनकी बाडी मे चले गये। श्री हाँसोजी ने मै'चन्दजी को देखते ही कहा— 'आओ मै'चन्द!' पूर्व परिचय न होने पर भी श्री हाँसोजी के मुख से अपने नाम का सम्बोधन सुनकर मै'चन्दजी बड़े प्रभावित हुए और 'आदेश' अभिवादन कर उनके पास बैठ गये। कुछ क्षण पश्चात् श्री हाँसोजी ने फिर कहा— 'मै'चन्द! तुम्हारे साथ में जो बकरे हैं, उनके गले में लकड़ी फँस रही है, अत. पहिले जाकर उनके कण्ठों में से लकड़ी निकाल आओ; फिर सानन्द सत्सग लाभ करना।'

मै'चन्दजी ने समझा कि सिद्धजी ने खालों को ठीक रख छोड़ने के लिए कहा होगा? लेकिन जब बाहर आकर उन्होंने देखा तो खालों के स्थान पर बकरे पुनर्जीवित हो गये और उनके गले में लकडी फँसी हुई थी।

इस चमत्कृति से प्रभावित होकर तथा पूर्व दुष्कृतियों को तिलाञ्जलि देकर मै'चन्दजी श्री हाँसोजी महाराज से दीक्षा ले नवोदित जसनाथ-सम्प्रदाय मे सम्मिलित हो गये। मै'चन्दजी की बाड़ी में फाल्गुन शुक्ला दशमी को जागरण होकर हवन होता है। सम्भव है यही तिथि उनके समाधि लेने की हो। गाँव से उत्तर की ओर मै'चन्दजी के नाम पर "मेहाणा" नाम का कच्चा तालाब भी है।

मै'चन्दजी द्वारा सिद्ध हाँसोजी से यह पूछे जानें पर कि महाराज। स्वर्गस्थ त्रिवेणी के पवित्र जल को जब मैंने अपनी अञ्जलि में भरा तो मुझे नाना विध मासपिण्ड इत्यादि क्यो दिखलाई पडे? तब सिद्ध हाँसोजी ने उत्तर दिया इस सम्बन्ध में यह दोहा बडा प्रचलित है—

मै' चन्द मेंडी खड़हड़्या, खड़हड़िया भुजडण्ड।
दीन्यो लादै हाथ को, बीजा हैं पाखण्ड॥

अर्थात्, हे मै'चन्द तुमने देवी आदि के मण्ड पर जीवो का विनाश किया उन्ही जीवों के विनाश के फलस्वरूप तुम्हें स्वर्ग में बहती त्रिवेणी में भी वे ही सब वस्तुए प्राप्त हुई। क्योंकि जो जैसा देता है, उसको वैसा ही प्राप्त होता है।

में'चन्दजी द्वारा रचित कुछ स्फुट रचनायें भी मिलती हैं।[1]

टीलोजी—

ये बड़े सिद्ध पुरुष महात्मा हुए हैं। इन्होंने प्रारम्भ में 'जाखी' सिद्धों की बाड़ी वाले स्थान पर तप किया था और दडीबा (बीकानेर के पास एक गाँव) के कुम्हारों को चमत्कृत कर जसनाथी बनाया। कहा जाता है कि बीकानेर महाराजा श्री रायसिंहजी को भी इन्होंने अपनी सिद्धि का परिचय दिया था। इसी बाबत 'चिटाल' के सिद्धों को राज्य की ओर से जमीन प्रदान की गई।[2] इनकी जीवित समाधि 'दडीबा' में है।

हाँसेरा[3]—

यहाँ तीन जीवित समाधियाँ हैं:—

(१) मनोहरनाथजी—इनके विषय का अब तक कोई विशेष वृत्त प्राप्त नहीं हो सका, पर 'जसनाथी साहित्य' में इनका प्रशंसात्मक रूप में अनेकों जगह नाम आता है। ये हाँसोजी की परम्परा में बहुत ही श्रेष्ठ सिद्ध पुरुष माने जाते हैं।

(२) कुम्भारजी—इनके विषय में ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने गौ-रक्षा के हित मुसलमानों से युद्ध किया था। रणस्थल में ही इनकी गर्दन धड़ से अलग हो गई; फिर भी ये आततायियों से लड़ते ही रहे और उन्हें परास्त

---

(१) में'चन्द अखल सरेविया, तन कर डोज दान।
दीजै तन का कापड़ा, का दूजन्ती धान (धेनु)।
खड़हड़ खेड़ हुवै इण घर पर...... ...

इस दीपंक का सबद भी में'चन्दजी द्वारा ही रचित है।

(२) यहाँ सिद्धों की अधिकृत जमीन १५०० बीघा के लगभग है। पट्टों में जसनाथजी के आसण का दाखला है तथा १८०० की मही के संवत् अंकित हैं। कहा जाता है कि उस समय टीलोजी के साथ में'चन्दजी के गुरु लालीनाथजी भी थे। सम्भव है में'चन्दजी की बाड़ी में दूसरी जीवित समाधि इन्हीं की हो।

(३) यह ग्राम बीकानेर-भटिण्डा-रेल्वे लाइन की [illegible] स्टेशन से केवल एक तीन कोस उत्तर में स्थित है। यहाँ भी [illegible] जसनाथ-सम्प्रदाय में प्रसिद्ध है। [illegible] चारों ओर [illegible] हुए हैं, [illegible] रहते हैं।

किया। तत्पश्चात् इनकी घोड़ी इन्हें यहाँ जसनाथजी की बाड़ी में ले आई। हॉंसेरा के लोगों की अब भी इनमें बडी आस्था है।

(३) तीसरी समाधि के बारे मे अब तक कुछ ज्ञात नहीं हो सका है।

सिद्ध रुस्तमजी—

जसनाथ-सम्प्रदाय मे सिद्ध श्री रुस्तमजी अपने समय के सर्वोपरि सिद्ध माने जाते हैं। ये श्री हॉंसोजी की परम्परा में महान् सिद्धियुक्त कलाधारी, पुरुष हुए थे। ऐसा मानना अनुचित न होगा कि जसनाथ-सम्प्रदाय को भारतवर्ष मे विख्यात प्रसारित एवं प्रचारित करने में इन्होंने सतत सराहनीय सफल प्रयत्न किये थे तथा 'जसनाथी साहित्य' को नया मोड देकर इन्होंने उच्च-तम स्थान पर अभिशिक्त किया था। इन्होंने अपने जीवन काल में हजारों स्फुट 'सबदों' की रचना की, जिनमें मानव-हित-साधना का सयोग भली प्रकार हुआ है। इनके शिष्यों ने भी इनकी साहित्य-साधना मे पूरा योग देकर 'जसनाथी साहित्य' के भण्डार को भरा पूरा किया। जिनका यथा प्रसग विव-रण दिया गया है।

सिद्ध रुस्तमजी लिखमादेसर के टीकाई सिद्ध धनराजजी के प्रमुख शिष्य थे। गुरु गोरखनाथजी की प्रेरणा से ही रुस्तमजी ने सिद्ध धनराजजी को अपना गुरु बनाया था। धनराजजी स्वय बड़े पहुँचे हुए सिद्ध पुरुप थे। वे लक्ष्मी के वरद् पुत्र थे। उन्हें द्रव्य की कभी कमी नहीं रही। उनके द्रव्यो-पयोग के विपय में निम्नलिखित दोहा प्रचलित है —

धनराज (जी) कै धन बंटै, ज्यूँ कूवा को नीर
सापुरसाँ को खाठियो, जुग सारै को सीर

उपर्युक्त दोहे से ऐसा ध्वनित होता है कि सिद्ध धनराजजी अपने धन में सबका समान भाग समझते थे। उन्होंने अपने समीपवर्ती क्षेत्र में कई कूए तथा ८४ जल-कुण्ड बनवाये, ताकि इस निर्जल प्रदेश में जल की सुलभता हो सके।

श्री रुस्तमजी को ऐसे सिद्धि सम्पन्न सिद्ध गुरु का शिष्य होने का सौ-भाग्य मिला था। सिद्ध रुस्तमजी ने अपनी अनेकों रचनाओं में सिद्ध धन-राजजी को अपना दीक्षागुरु माना है।

सिद्ध रुस्तमजी का जन्म तहसील सरदारशहर से उत्तर की ओर चौदह कोस दूर बसे थेडी ग्राम में हुआ था। इनके पिता साँवलदास चौहान किसी नवाब के यहाँ दीवान थे। किसी कारण से नवाब साँवलदास पर इतना रुष्ट हो गया था कि वह उसके परिवार को ही समूल नष्ट करने पर तुल गया। साँवलदास व उनके सम्बन्धियों को तलवार के घाट उतार कर भी उसका दिल न भरा तो उसने बालक रुस्तम को भी खत्म कर देने की एक गुप्त योजना बनाई।

कहा जाता है कि थेड़ी ग्राम में साँवलदास चौहान का एक मित्र रहता था। उसने चुपचाप बालक को उसके ननिहाल पहुँचाने की व्यवस्था की। बालक की रक्षा का भार साँवलदास की एक स्वामीभक्त सेविका ने संभाला। सेविका गुप्तरूप से बालक को उसकी ननिहाल[1] ले गई। किन्तु नवाब के भय से ननिहाल वालों ने भी बालक को अपने पास रखने में विवशता प्रकट की। स्वामीभक्त सेविका घबराई नहीं। वह रुस्तमजी को लिए इधर उधर भटकती रही।

एक दिन भटकती-भटकती वह आलसर ग्राम में पहुँची और चौधरी 'सुखा" के घर रात्रि-निवास किया। प्रातः जब वह चलने लगी तो सुखा की दृष्टि उस बालक के अरुणिमसुख मण्डल पर पड़ी। उसे बालक में कुछ आकर्षण लगा। उसके हृदय में जिज्ञासा जागृत हुई; उसने सेविका से पूछा— 'क्या यह बालक तुम्हारा है?'

सुखा का यह प्रश्न सुनते ही सेविका फूट फूटकर रोने लगी। वह कुछ कहना चाहते हुए भी कुछ कह न सकी। केवल आँखों से आँसू बहाती रही। बड़ी देर बाद कुछ सान्त्वना दिलाने पर सेविका ने अपनी और बालक की दुःखभरी कहानी कह सुनाई।

सुखा ने रुस्तम की व्यथाभरी कहानी सुनकर अपने भाग्य को पलटते हुए देखा। उसके कोई सन्तान न थी। उसने सोचा यदि इसे सन्तान के रूप

(१) सिद्ध रुस्तमजी की ननिहाल के विषय में मतैक्य नहीं है। कुछ लोग फतेहपुर को ननिहाल बताते हैं तो कुछ फतेहपुर के समीपवर्ती 'रोड़ा' को।

में पाललूँ तो ठीक रहे। सुखा अपने दिल की बात सेविका को सुनाने लगा—

"बहिन मैं आज से तुझे अपनी धर्म-बहिन बनाता हूँ। मैं चाहता हूँ कि तू इस बालक को लिए कहाँ-कहाँ भटकती फिरेगी। मेरे सन्तान का अभाव है और तुम्हें इसकी रक्षा की आवश्यकता है। यदि तुम मेरी मनुहार मानो तो तुम दोनों मेरे घर रहो। तुम मेरी बहिन हो और यह मेरा पुत्र।"

सेविका को एक दृढ़ आश्रय की आवश्यकता थी। वह उसे स्वत. ही मिल गया।

चौधरी सुखा ने बालक को औरसपुत्र की तरह एव सेविका को अपनी सगी बहिन की भाँति रखा। परम्पराश्रुत है कि आठ वर्ष के बाद सेविका का देहान्त हो गया। सुखा ने अपनी बहिन की तरह उसके अन्तिम सस्कार किये।

बालक रुस्तम भी गाँव के अन्य बालकों की तरह बकरियाँ चराने जाने लगे। एक दिन रुस्तमजी एक शमीवृक्ष (खेजड़ी) पर बैठे बैठे उसकी टहनियों को काट-काटकर बकरियों को डाल रहे थे। उस समय उस खेजड़े के नीचे से तीन बार निषेधात्मक 'ना-ना-ना' की आवाज आई। रुस्तमजी को बडा आश्चर्य हुआ। उन्होंने नीचे उतर कर देखा तो कुछ दिखाई नहीं दिया। रुस्तमजी ने इसे केवल भ्रम ही समझा। वे पुन खेजड़ी पर चढ़कर टहनियो को काटने लगे। ज्योंही उन्होंने खेजड़े की टहनियों पर कुल्हाडी की चोट की, त्योंही फिर वही 'ना-ना-ना' की तीन ध्वनियाँ सुनाई पड़ीं। रुस्तमजी फिर नीचे उतरे, देखा तो कुछ नहीं। रुस्तमजी ने सोचा अब की बार अच्छी प्रकार से सावधानी रखनी है—देखें, यह आवाज कहाँ से आ रही है और कौन कर रहा है। वे फिर खेजड़े पर चढ़ गये और कुल्हाड़ी से खेजड़ा काटने (छाँगने) लगे। जैसे ही पहली चोट की, आवाज हुई। अब की बार आवाज कुछ निकट-सी प्रतीत हुई। बालक रुस्तमजी नीचे उतरे तो सामने एक अति वृद्ध साधु को खडे देखा। वह साधु रुस्तमजी को खेजडे की ओर अगुली कर के कहने लगा—'इस कलियुग की तुलसी को क्यों काट रहा है? जैसे तुम्हारे शरीर में पीड़ा होती है, उसी प्रकार क्या इसके पीडा नहीं होती? देखो इस खेजड़े की टहनियों से खून चू रहा है।"

बालक रुस्तम ने देखा, सचमुच ही खेजड़े की टहनियों से खून चू रहा था। खेजड़े की टहनियों से खून चूता देख कर बालक कॉप उठा। अपने कृत्य पर उसे पछतावा होने लगा। न जाने कितनी देर वह आँखों में आँसू भरे खेजड़े की खून चूती टहनियों को देखता रहा।

जब प्रकृतिस्थ होकर उसने साधु को जी भर कर देखना चाहा तो कुछ नहीं दीख पड़ा। निदान बालक रुस्तम ने इसे खेजड़ी न काटने का एक ईश्वरीय संकेत समझा और वहीं प्रण कर लिया कि 'मैं भविष्य में कभी खेजड़ी नहीं काटूँगा।' सन्ध्या तक बालक रुस्तम अनमना-सा फिरता रहा, पर खेजड़े से खून चूने और साधु के दर्शन की बात किसी से न बताई। साथ वालों ने अनमने रहने का कारण जानना चाहा और उसके लिए अनेक प्रयत्न किये पर, बालक रुस्तम इस ओर से सर्वथा उदासीन रहा।

दूसरे दिन दोपहर ढलते-ढलते एक छायादार खेजड़ी के नीचे बालक रुस्तम को नींद आगई। पर सहसा वह नादी-नाद सुनकर चौंक उठा-देखा तो वही कल वाला साधु खड़ा है। साधु ने रुस्तम से कहा— "बच्चा! प्यास बड़े जोर की लग रही है, थोड़ा-सा जल पिलाओ न।"

रुस्तम ने कहा—'महाराज, अब जल कहाँ? मैं तो अभी ही अपनी दीवड़ी (मसक) का पानी समाप्त कर चुका हूँ। जरा पहले आते तो पिला देता।'

साधु ने कहा—'झूठ न बोलो बच्चे! तुम्हारी दीवड़ी तो अब भी जल से भरी हुई है।'

रुस्तमजी ने जाकर देखा, तो सचमुच ही खेजड़े की डाल में टँगी दीवड़ी पानी से आमुख भरी हुई थी। जैसे ही रुस्तम दीवड़ी लेकर साधु को पानी पिलाने आया, साधु न मिला।

गत दो दिनों में घटी घटना से बालक रुस्तम बहुत ही चकित हो रहा था। सहसा तीसरे दिन फिर वही साधु आता दीख पड़ा। निकट आते ही साधु ने बालक रुस्तम से बकरी का दूध पिलाने के लिए कहा। रुस्तमजी ने

(१) नाद सम्प्रदाय के साधु काले धागे में एक प्रकार का छोटा सा नाद विशेषकर गले में पहिनते हैं।

पैर धरती पर नहीं टिक रहे थे। रुस्तमजी ध्यानस्थ होकर बैठ गये। बकरियाँ स्वेच्छा से दूर तक चरती चली गईं।

सन्ध्या को सब ग्वाले इकट्ठे हुए पर रुस्तम वैसे ही एकासन बैठा रहा, न हिला न डुला। ग्वालों ने उसे आवाजें दीं, पर वह तो निश्चल, प्रस्तर वत् धोरे पर जमा बैठा ही रहा। आवाजों से काम बनता न देख कर ग्वाले रुस्तम के पास आये। उसे झकझोरा, खींचा पर रुस्तम तो टस से मस ही न हुआ। अनेक ग्वालों के सम्मिलित प्रयत्न पर भी वह अपना आसन न छोड़ सका, ग्वालों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने दो चार ग्वालों को 'सुखा' को सूचना देने के लिए दौड़ा दिया।

सुबह होते होते सुखा झल्लाया हुआ, हाथ में 'जेळी' लिए हुए वहा आ पहुँचा। उसने भी बालक रुस्तम को डॉटा झकझोरा पर, वह तो वैसे ही नि:सज्ञ-सा बैठा रहा सुखा को क्रोध आगया, उसने 'जेळी' उठाकर बालक रुस्तम को पीटना चाहा, पर यह क्या .. ? सुखा के हाथ ऊपर ही 'जेळी' उठाये हुए रह गये। प्रयत्न करने पर भी नीचे को न हुए। रुस्तमजी के चेहरे पर अलौकिक तेज देख कर उसके हृदय में श्रद्धा के बीज अकुरित होने लगे।

जैसे-जैसे रुस्तमजी के प्रति श्रद्धा बढ़ने लगी वैसे-वैसे सुखा के 'जेळी' उठाये हाथ नीचे की ओर आने लगे। सुखा अपनी बकरियाँ ग्वालों को सम्भला कर घर आगया और ग्वाले अपने-अपने काम लगे। पर रुस्तमजी वैसे ही तीन दिन तक बैठे रहे। गाँव के लोग नित्य आते जाते रहे। चौथे दिन उसे आवाज सुनाई पड़ी कि "लिखादेसर के सिद्ध धनराजजी से दीक्षा लेलो।"

रुस्तमजी उठे, और लिखमादेसर की ओर चल पड़े। कहते हैं, जिस समय रुस्तमजी लिखमादेसर पहुँचे, उस समय सिद्ध धनराजजी घर से कूएं तक पानी के लिए बने नाले को पानी रुकने के कारणों की जॉच के लिए देख रहे थे, कई लोग साथ थे। रुस्तमजी ने आदेश कर के अपने लिए योग भेप देने की प्रार्थना की कि मुझे भेष देकर सिद्ध-सम्प्रदाय में प्रविष्ट कर लिया जाय।

सिद्ध धनराजजी ने उपहास में ही रुस्तम से कहा— "हम तो उसको भेप देंगे, जो पानी की इस रुकावट का कारण बता सके।"

रुस्तमजी ने तत्काल ही कहा "इस नाले में गोहिड़ा फँस गया है, जिससे पानी रुक गया है।"

नाले को खोदने से रुस्तमजी की बात सत्य निकली।

सिद्ध धनराजजी ने बड़ी प्रसन्नता से उसे दीक्षा प्रदान की। दीक्षा पा लेने के बाद रुस्तमजी ने पुनः आलसर के उसी धोरे पर जाने की इच्छा प्रकट की और धनराजजी से कहा—'सिद्धजी, जब आवश्यकता पड़े तो सेवक को याद कर लेना।' और रुस्तमजी आलसर[1] आकर वहीं धोरे पर तप करने लगे।

रुस्तमजी की तपस्या की ख्याति सब ओर फैलने लगी। इसे औरंगज़ेब जैसा कट्टर धार्मिक बादशाह सहन न कर सका। मुल्ला और मोलवियों ने उसे समझाया कि जहाँपनाह, सिक्खों और विश्नोइयों की तरह बीकानेर रियासत में भी सिद्धों का संगठन बल पकड़ता जा रहा है, जो आगे चलकर मुमकिन है, मुस्लिम मजहब को नुकशान पहुँचा दे।

औरंगजेब ने सिद्ध धनराजजी के पास 'परवाना' लिख भेजा कि या तो यहाँ आकर अपनी सिद्धि दिखाओ, अन्यथा अपने ढोंग को समेटलो। नहीं तो बरबाद कर दूँगा।[2]

(१) आलसर— यह स्थान बीकाने-दिल्ली रेल्वे लाइन की परसनेऊ स्टेशन से दक्षिण में लगभग चार कोस की दूरी पर है और आलसर का यह धोरा 'रुस्तम धोरा' के नाम से प्रसिद्ध है, जो गाँव से चार कोस पश्चिम में है। 'जुम्मे की छात' के नाम से भी यह धोरा पुकारा जाता है। यहाँ साल में दो बार आसोज सुदी ७ एवं शिवरात्रि पर मेला लगता है जिसमें हजारों आदमी इकट्ठे होते हैं। धोरे पर रुस्तमजी की स्मृति में एक छोटा सा मन्दिर बना हुआ है और यात्रियों की सुविधार्थ पानी के दो कुण्ड भी बने हुए हैं। यहाँ एक तिबारा तथा एक छोटी कोठरी भी है। धोरे से पूर्व की ओर वह खेजड़ी है, जिसकी टहनियों में से खून चूता दीख पड़ा था, इसे 'गोरख खेजड़ी' कहते हैं। धोरे से पश्चिम में 'धावारिया-धोरा' है 'रुस्तम धोरे' पर कोई असाधारण व्यक्ति ही अकेला रह सकता है। यहाँ कई सौ बीघा का बड़ा भयंकर ओयण भी है।

(२) रुस्तम सिद्ध हूंत कर पोइया, देव कला सूँ जाणें।
आलाणैं सिद्ध पीर प्रगट्या, लिखमादेसर आणें।

जब बादशाह का परवाना मिला, तो सिद्ध धनराजजी चिन्ता मग्न हो गये। उन्होंने बादशाह को सिद्धों की सिद्धि का 'परचा' (परिचय) देने के लिए कई मानसिक सकल्पविकल्प किये। पर मन.स्थिति किसी पर सुदृढ़ न हो सकी। निकट बैठे कई सिद्धों से विचार-विनिमय किया पर कोई भी सिद्ध दिल्ली जाकर बादशाह के सम्मुख परिचय देने को उद्यत न हुआ।

धनराजजी की चिन्ता उत्तरोत्तर बढ़ने लगी कि उन्हें सहसा या सिद्धेश्वर की आन्तरिक प्रेरणा से श्री रुस्तमजी के शिष्यत्व ग्रहण करते समय के वे वचन याद आये कि 'सिद्धजी, जब आवश्यकता पड़े तो सेवक को याद कर लेना।'

आजिया बकरी पकड़ दुहाई, भरी कटोरी झागै।
दिल्ली सूँ परवाणा आया, पतस्या परचो माँगै।
नाटक चेटक परचो नाहीं, हाजर परचो माँगै।
रुस्तम सिद्ध दिल्ली नै चढिया, लफर लिया दस सागै।
दिली चौहटै, तम्बू तणाया, जस री नौपत बाजै।
रुस्तम सिद्ध ताका में जड़िया, अै'दी बैठ्या आगै।
पो पीळो सिद्ध डेरै माँही, जोत जती री जागै।
गोरख बाबो जती निवाज्या, रळ्या सिद्धाँ रै सागै।
काजीड़ा नर काचा पड़िया, लुळ-लुळ पायै लागै।
कूवै माथै निवाज गुदारी, बैठा काचै तागै।
मक्कै हूँता बोर मँगाया, सूवो मैना सागै।
समू सतरो साल छतीसो, (जेठ तपंतो) सावण हूँतो आगै।
भर करळो सीटाँ रो ल्याया, हर्‌यो मतीरो सागै।
तोबा-तोबा करै तुरकणी, देव हिन्दू रो जागै।
सायण बॉयण घोड़ा वगसो, थेली मेलो आगै।
गुरु टुकडो बहुतेरो दीनो, माया (री) भूख न लागै।
पीळै पाट री दगली सीड़ी, बिन सूई बिन तागै।
आ दगली म्हारै गुरवाँ (नै) सोवै, लिखमादेसर आगै।
महर हुई सिद्ध रुस्तम बोल्या, पातस्या पायै लागै।

फिर क्या था, उन्होंने वही बादशाह का 'परवाना' रुस्तमजी के पास भेजकर कहलवाया कि 'आज सिद्धों पर विपद्-घड़ी मंडरा रही है। इसे तुम ही दूर कर सकते हो!'

रुस्तमजी धनराजजी द्वारा प्रेषित बादशाह का 'परवाना' पाकर लिखमादेसर की ओर चलने को तैयार हुए। साथ में अनेकों सिद्ध, जो उनके पास निवास करते थे, तैयार हो गये।

सिद्ध रुस्तमजी ने लिखमादेसर आकर अपने गुरु सिद्ध धनराजजी के प्रति 'आदेश वन्दना' करते हुए दिल्ली जाकर परिचय देने का दृढ़ आश्वासन दिया।[1] सिद्ध धनराजजी ने रुस्तमजी की मंगलकामना करते हुए दस लफरों[2]

---

(१) आलाणो रळियावणो, जाग्या रुस्तम पीर।
लिखमाणो सुवस वसै, बैठे सिद्धाँ रो सीर।
सतगुरु पूरो पातस्या, सब पीराँसर पीर।
पगलो डोही धरपती, आभै डायो नीर।
बिन जीम्याँ काँई जाणियै, किसड़ो भोजन खीर।
बिन पीयो क्या जाणियै, किस्यो गंगाजळ नीर।
बिन ओढ़याँ काँई जाणियै, किस्यो पाटम्बर चीर।
बिन खाँचे काँई जाणियै, किस्यो कमाणी तीर।
बिन बतळायाँ क्या जाणियै, किस्यो पकम्बर पीर।
गेलड़िया रळियावणाँ, गमलो गै'र गँभीर।
रुस्तम गावै जुग सुणै, गुरु बन्धवै धीर।

(२) दस लफरों के नाम इस प्रकार है— (१) गेनोजी (भरपालसर) (२) विरमोजी (लिखमणसर) (३) पांचोजी (पारेवड़ा) (४) सुरतोजी, ठाकरोजी (सरोड) (५) भारमलजी, बींजोजी (बीनादेसर) (६) रतनोजी (गतासर) (७) पेमोजी (लिखमादेसर) (८) भीमोजी, तथा रतनोजी (भूमोजी और रतनोजी कौनसे थे यह अभी अज्ञात है। सम्भव है ये बाहर वाले हों। भारमलजी का दिल्ली जाना संदिग्ध है। यशोनाथ पुराण में दिल्ली जाने वाले लफरों की संख्या १२ लिखी है पर हमारे अनुमान से इनके अतिरिक्त और भी कई व्यक्ति रुस्तमजी के साथ दिल्ली गये थे।

और अनेकों सिद्धों को साथ जाने की आज्ञा दी। रुस्तमजी के साथ भेजने के लिए नगारा-निशान भी ऊँटों तथा घोड़ों पर सजवा दिये।

रुस्तमजी 'दस लंफरों' और अनेकों सिद्धों को साथ लिये दिल्ली की ओर चल पड़े। सहसा छाजूसर पहुँचते ही नगारे और निशान ऊँटों पर से उलटे गिर पड़े।

साथ के सिद्धों ने इसे अपशकुन समझा और रुस्तमजी से निवेदन किया कि दिल्ली मत जाओ, वहाँ राक्षसों का वास है, वे हमें मारे बिना नहीं छोड़ेंगे।

रुस्तमजी ने लोगों से कहा कि 'यदि आप लोग शकुन-अपशकुन का विचार करते हैं तो प्रसन्नता से वापस जा सकते हैं। नगारे-निशान उल्टा गिरने का कारण तो और ही है—'यहाँ हमारे पूर्वजन्म की धूनी (तपस्थली) है। नगारे-निशान ने नीचे गिरकर 'धूनी' को 'आदेश अभिवादन' किया है।

साथ के लोगों को इस पर विश्वास न हुआ। पर रुस्तमजी के विशेष बल पर खोद कर देखा गया तो वहाँ सचमुच ही धूनी निकली। (इस जगह पर उस घटना की स्मृति में 'नगारों का ओटिया' आज भी बना हुआ है।) फिर भी लोगों का साहस दिल्ली जाने का नहीं हुआ। साथ के कई लोग वापस लौट गये। केवल 'दस लंफर' और दो चार दृढ़ विश्वासी भक्त ही साथ रहे।

इस सम्बन्ध में रुस्तमजी का निम्नांकित 'सबद' भी उल्लेखनीय है—

दिलड़ी मत जाज्यो मोवण्या, दिलड़ी ओघट घाट।
दिलड़ी गया न बावड़्या, रिणसी जिसड़ा साध।
दिलड़ी असराँ (रो) वैसणूँ, वो तुरकाँ रो वास।
परचो माँगै पातस्या, सिर सोनै रो छात।
परचो दे, का मारस्याँ, आलम आखै बात।
परचो जद ही जाणस्याँ, (गुरु) आडा देशी हाथ।[1]

---

(१) पद्य की पूर्ति के लिए इतना अंश और है—

अरसाँ सत गुरु ओतरथा, तीन भवन रा नाथ।
आया आगम परेमता, लीला भगवाँ साथ।
कँगरै कंगरै जोगी हुया, बीबडियाँ (हुरमाँ) रै साथ।
गुसळखानै परगटिया, मिंदराँ मिंदर अवाज।

हे सुन्दर मानव! तुम दिल्ली मत जाओ, दिल्ली सिद्धों के योग्य स्थान नहीं है। रिणसीजो[1] जैसे साधु पुरुष भी दिल्ली जाकर लौटे नहीं। दिल्ली राक्षसों का निवासस्थान है। बादशाह परिचय माँग रहा है। सिद्धों की शक्ति का पूर्ण चमत्कार दिखाओ, अन्यथा मौत के घाट उतार दिये जाओगे।

वि० सं० १७३६ के जेठ की कड़कड़ाती धूप में सिद्ध रुस्तमजी इन 'लंफरों' को साथ लिए दिल्ली पहुँचे। दिल्ली में प्रविष्ट होते ही नगारे पर चडे

परचो पूग्यो मन रळ्यो, नौरंगस्या रै साथ।
जाओ रुस्तम घर आपरै, थानैं तूठा (गुरु) जमनाथ।
गाँव लेवो घोड़ा लेवो, लेवो पंजाबी छाप।
कमी नहीं किण बात री, खीसै खैर खुदाय।
जसनाथो पँथ प्रगट्यो (म्हारी(चाहाँ, जुगाँरी बात।
रुस्तम गावै जुग सुणै, अलख गुरा री छाप।

(१) सुना जाता है कि सुप्रसिद्ध देव पुरुष श्री नामदेवजी तँवर के ये दादा थे और सिद्ध पुरुष माने जाते थे। पर दिल्ली में ये अपनी सिद्धी दिखाने मे असफल ही रहे। अत तत्कालीन बादशाह ने इनका सिर तलवार से उड़ा दिया था। किन्तु किम्वदन्ती के अनुसार यह चमत्कार अवश्य हुआ कि इनका सिर उड़ाने के वक्त रक्त की जगह दूध की धाराए फूट पड़ी।

सिद्ध रुस्तमजी की दिल्ली यात्रा सम्बन्धी निम्न दोहे भी उपलब्ध है —

दिलड़ी मत जाज्यो मोवण्याँ, दिलड़ी औघट घट्ट।
दिलड़ी गया न बावड्या, रिणसी जिसड़ा भट्ट॥
कर मत भोळा बातड़्याँ, कायर मताँ दिखाय।
कायर काचो काँठलो, म्हाँ गुरु गोरख भाय॥
म्हे जास्याँ रै'स्याँ नहीं, औरंग करणी बूझ।
के यीं लास्याँ मारगाँ, के म्हे जास्याँ जूझ॥
उठ! उठ! सीमा नोरता, करवो करो पिलाण।
रातूँ दिलड़ी पूगस्याँ, ऊगता भाँनी भाण॥
करवा वेग पलाणिया, पाँगळिया नातील।
पे हरड़ाटाँ, हालिया, सौवोँ'ज कोसाँ मील॥

जोर से डका दिया गया। सहसा दिल्ली के निवासी चौंक पड़े। श्री रुस्तमजी ने दिल्ली के चौराहे पर अपने तम्बू तनवा दिये। जब बादशाह को पता चला कि जिस सिद्ध को अपनी सिद्धता का परिचय देने का परवाना भेजा था, वह आ गया है, तो बादशाह ने उसकी शक्ति की थाह लेने उसे कारागार में डलवा दिया। पहरे पर पूर्ण सावधानी रखने के लिए पहरेदार नियुक्त कर दिये। प्रात होते ही सिद्ध रुस्तमजी उसी चौराहे पर अन्य सिद्धों के साथ अपने आराध्य की सेवा करते हुए मिले। इसे देखकर दिल्ली के अनेक काजी आ आकर सिद्ध रुस्तमजी के पैरों पड़ने लगे।

बादशाह ने सिद्ध रुस्तम से अन्य चमत्कार दिखलाने की प्रार्थना की। उन्होंने बादशाह को अनेकों चमत्कार दिखलाये, जिनमें मुख्य ये हैं —

(१) कूएँ पर कच्चा धागा तनवा कर उस पर बैठकर नमाज पढ़ी।[1]

(२) सूग्गा और मैना के द्वारा मक्का-मदीना से ताजे बेर मँगवा कर बादशाह को दिखलाये।[2]

---

(१) बादशाह के ऐसा परचा' माँगने पर सिद्ध रुस्तमजी ने कूएं पर कच्चा धागा तनवा कर और उस पर बैठ कर नमाज पढ ने का अभिनय किया।

(२) बादशाह ने रुस्तम से कहा–'हम अपनी करामात से मक्का के बेर मँगाते है।' रुस्तम ने कहा– 'मँगवाइये।' बादशाह मैना बनकर मक्का की ओर उडा। जब रुस्तम ने देखा कि बादशाह ने मैना का रूप धारण किया तो मुझे सुग्गा बनना चाहिए ताकि मैना रूपधारी बादशाह को खूब छकाया जाय। वह जिस झाडी से बेर प्राप्त करना चाहे उस पर मैना को बैठने ही नहीं दिया जाय। मैना जिस झाडी से बेर लेना चाहती, सुग्गा वही आकर मैना को तग करता था। अत में मैना नीचे गिरे बेर लेकर वापस लौटी और साथ साथ सुग्गा भी ताजा बेर लेकर मैना के पीछे पीछे उडा। दिल्ली में आकर मैना ने बादशाह का रूप धारण कर रुस्तम को मक्का का बेर दिखलाया पर रुस्तमजी ने बेर देखकर कहा — "यह तो पक्षियों का जूठा बेर है" और अपने पास से निकाल कर कहा— "असली बेर तो ये हे।" बादशाह ने रुस्तम से पूछा— 'तुम कहाँ से लाये ?" रुस्तम ने कहा—"बस इतने जल्दी ही भूल गये।' सुग्गा से तग आकर नीचे गिरा हुआ बेर लेने वाली मैना मुझे भूल जायेगी तो याद भी कौन रखेगा।

(३) जेठ के दिनों में भी बाजरे के सिट्टों का गुच्छा और हरा मतीरा लाकर दिखलाया।[3]

(४) बादशाह के महल के प्रत्येक कँगूरे पर विभिन्न वेशधारी साधुओं का जमघट दिखलाया।[4]

इन चमत्कारों से बादशाह बहुत प्रभावित हुआ और अपने किये पर पछताने लगा। अन्त में सिद्ध रुस्तमजी से क्षमा-प्रार्थना करते हुए कुछ स्वीकार करने की याचना की। सिद्ध रुस्तमजी ने अपने गुरु के लिए बिना सूई और धागे से सिली हुई रेशम की गुदड़ी' माँगी। बादशाह ने खुश होकर वह 'गुदड़ी', 'नगारे-निशान'[5] और अनेक वाहन प्रदान किये। सारे भारत में

---

(३) बादशाह ने एक बड़ा लम्बा चौड़ा गड्ढा खुदवाकर उसे अग्नि से पटवा दिया और रुस्तम को उसमें कूदने की आज्ञा दी। रुस्तम ने अपने साथियों से कहा— कि मैं जब तक इस अग्नी-कुण्ड से बाहर न निकलूँ तब तक नगारों को बजाते रहना भूल कर भी बीचमें बन्द न कर देना। ऐसा कह कर रुस्तमजी धक् धक् करती अग्नी में कूद पड़े। थोड़ी देर बाद लोगों ने देखा वे अग्निदेव की तरह 'टोप' तथा 'बागा' पहने हुए प्रकट हुए। उनके हाथ में एक मतीरा तथा बाजरे के सिट्टों का गुच्छा था।

(४) इतने चमत्कार देख कर भी जब बादशाह रुस्तम से प्रभावित न हुआ, तब रुस्तमजी ने गुरु गोरखनाथ को याद किया। गोरखनाथ के स्मरण मात्र से बादशाह के महलों के प्रत्येक कँगूरों पर विभिन्न वेशविभूषित साधु ही साधु दिखलाई पड़ने लगे। ऐसा सिद्ध युक्त दृश्य देखकर बादशाह की बेगमें घबरा कर "तोबा" "तोबा" करने लगी। उन्होंने बादशाह से निवेदन किया कि इस चमत्कारी सिद्ध को रथ घोड़ा आदि वाहन तथा धन की थैलियाँ देकर प्रसन्न करो। अन्यथा यह तुम्हें तबाह कर देगा। इस पर बादशाह ने रुस्तम को प्रसन्न करने के लिए उपरोक्त चीजें प्रदान की। पर रुस्तम ने अस्वीकार करते हुए कहा— "मुझे गुरु ने बहुत कुछ दे रखा है। मैं माया का भूखा नहीं हूँ यदि तुम देना ही चाहते हो तो वह गुदड़ी (गुदड़ी) दो, जो पीले रंग के रेशमी जैसे कपड़े की तथा बिना सूई धागे के सिली हुई है। वह गुदड़ी हमारे गुरु (सिद्ध धनराजजी) को शिवमादेसर में अच्छी लगेगी। किंवदन्ती है कि वह गुदड़ी 'बावन पीरों' की करामात से युक्त थी।

(५) इससे पूर्व जसनाथी सिद्ध मृदंग आदि वाद्यों पर ही अपने 'सबद' गाया करते थे। लेकिन इसके पश्चात् ही सम्प्रदाय में नगाड़े का प्रचलन हुआ और अब

बेरोक रोक टोक फिरने का ताम्र-पत्र दिया, जिसमें लिखा है कि हिन्दुस्तान के इस छोर से उस छोर तक जसनाथी सिद्ध अपने 'नक्कारे निशान' सहित बेरोक टोक घूम-फिर सकते हैं।

किम्वदन्ती के अनुसार सिद्ध रुस्तमजी ने बादशाह को बावन परचे दिखलाये थे।

सिद्ध रुस्तमजी की दिल्ली यात्रा विषयक रतनोजी रचित एक पद्य इस प्रकार भी है। इस 'सबद' में गुरु गोरखनाथ के सम्मिलन से लेकर बादशाह औरंगजेब का परवाना प्राप्त करने एवं दिल्ली जाकर चमत्कार दिखलाने तक का पूर्ण विवरण मिलता है —

रुस्तम छाळी चारता, आय मिल्या रहमाण।
बाजो मिलतो वाँसळी, सरस घूरै निसाण।
पंचा देवाँ परगळ्या, पंच भणीजै न्याव।
पूरै गुर परगट किया, कुळ जुग पो'रै आव।
जुग मोह्या जुम्मा किया, मिलिया गोरख राव।
पतस्या लग परगट किया, परवाणा पौं'चाय।
परवाणा पतस्याह रा, सिद्ध कर लिया सा'य।
माता मीठी लापसी, (तनै) काळल करूँ कड़ाय।
छतरी चढ़िया ख्याँत कर, लाग गुराँ रै पाय।
अणभै खड़ै उँतावळा, घाल दमामा घाव।
सिद्ध पै'ली स्यामी मिल्या, (वै) दरसण आवै दाय।
कवलै सूँ कर जोड़ताँ, सासो सास सहाय।
साधाणा सुणता भया, नौरंग नेड़ा जाय।
साह सुणंताँ समसो कह, इसड़ो कूण खुदाय।

तक नगारे पर ही ये अपने 'सवद' गाते हैं। बीकानेर रियासत के राज्य द्वारा प्रदत्त परवानों में भी सिद्धो के लिए नक्कारे निशान रखने की छूट का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार का उलेख जोधपुर तथा उदयपुर आदि राज्यो के परवानो म भी यह उल्लखित है। सिद्धो एव ताजीमी सरदारो के अतिरिक्त साधारण प्रजा-जन दो नगाडा और निशान लेकर नही चल सकता था।

रूमी चढ़ियो रीस कर, (का) राजा पैठी राय।
खबर मँगावो खान री, मदन झरोखा आय।
माथै मैंमद मोळियो, ऊपर घणूँ बणाव।
गरज पड़ै तो गाँवल्यो, पीर परगना खाय।
मो'र चढ़ावै मेदनी, रूपो आवै राय।
माया मत कर गीरबो, लेखो देवो लुटाय।
ताँता राखो त्याग रा, निरगुण जीता जाय।
लसगर ल्यावो नाम घर, गुरु रो ग्यान सुणाय।
आसण आयो ओळियो, पतस्या नैं परचाय।
रतनो(जी) गावै रीझ सूँ, स्यामी सबद सुणाय।

सिद्ध रुस्तमजी दिल्ली विजय के पश्चात् सीधे लिखमादेसर अपने गुरु श्री धनराजजी के पास लौट आये। गुरुजी ने प्रसन्न होकर उन्हें गले लगाया। रुस्तमजी ने बादशाह की पीली गुदड़ी गुरुजी को भेंट की और अपने स्थान पर आ गये। इसके बाद सिद्ध रुस्तमजी विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते रहे और लोगों को धर्मोपदेश देते रहे।

छाजूसर[1]

अन्तिम दिनों में सिद्ध रुस्तमजी अपने प्राचीन तपस्थल छाजूसर में आकर रहने लगे थे। यहीं इनकी समाधि है।

सिद्ध रुस्तमजी ने यहाँ अपने जीवन काल में ही अपना मंदिर बनवा लिया था। इस मन्दिर के निर्माण का समस्त व्यय बादशाह औरंगजेब ने

(१) यह ग्राम रतनगढ शहर से लगभग चार कोस की दूरी पर पश्चिम की ओर बसा हुआ है। जसनाथ-सम्प्रदाय में यह ग्राम 'रुस्तमपुरा' के नाम से भी प्रसिद्ध है। यहाँ की बाड़ी बड़ी रमणीय है, जिसमें सुन्दर २ मकान बने हुए हैं। मन्दिर के चारों ओर पक्की बाहर दिवारी बनी हुई है, जिसका मुख्य द्वार दक्षिण की ओर खुलता है। दरवाजे के बाहर संगीत चौकी बनी हुई है। रुस्तमजी की यात्रा के लिए अब भी दूर दूर से अनेकों यात्री 'जागरण पर्वों' पर आते हैं। रुस्तमजी के मन्दिर और यात्रियों के सम्बन्ध में यह पद्य प्रचलित है —

अणत पळा सूं रुस्तम जागया, हिरदै भळक्यो हीरो।
नौरंगस्या नै परचो दीन्यो, पट्टै लिखायो चौरो।

दिया था। समाधि लेते समय सिद्ध रुस्तमजी ने इस मन्दिर में अपने हाथ का चिह्न (थापा) लगाया था, जो अब तक मौजूद है। मन्दिर में एक भित्तिलेख भी है, पर वह अच्छी तरह पढने में नहीं आता है। केवल इतना ही स्पष्ट पढ़ा जा सकता है कि बीकानेर-नरेश रतनसिंहजी ने सिद्ध रुस्तमजी के आसन चढ़ाया था।

सम्भव है कि महाराजा रतनसिंहजी ने सिद्ध रुस्तमजी की मनौती के लिए छाजूसर की यात्रा की हो और उस समय रुस्तमजी की समाधि पर कोई विशेष भेंट की हो। स्यात् इसी प्रकार की कोई भेंट का उल्लेख इस भित्तिलेख में हो।

रुस्तमजी केवल सिद्ध योगी ही नहीं थे, अपितु वे एक श्रेष्ठ कवि भी थे। उनके द्वारा रचित अनेकों स्फुट रचनाओं के अतिरिक्त दो ग्रथ (१) शिव ब्यावलो (एक सौ अस्सी कड़ी मे शिव पार्वती के परिणय की सुन्दर कथा है।) और (२) क्रिसन ब्यावलो (लगभग १६० कड़ियों के इस ग्रन्थ में श्री कृष्ण के विवाह का वर्णन बहुत ही आकर्षक ढग से किया गया है।)

सिद्ध रुस्तमजी के समाधिस्थ होने के सम्वत् का उल्लेख 'सबदों' में नहीं पाया जाता है। पर यशोनाथ पुराण में लिखा है—

पिछत्तर के जेष्ठ में, तीज सुदी दिन पाय।
सम्वत सतरा बरतते, रुस्तम सुरग सिधाय॥

धिन धिन तो कारीगर पूरा, देवरो पार उतारो।
कळी मगावो रग चढावो सोवन कळस सिनूरो।
देस देस रा जाती आवैं, जाँ री आसा पूरो।
सतजुग में पै'लादो सीधो, तेता हरचँद भूरो।
नवा किरोड़ाँ राव जहूठळ, ज्याँ री आसा पूरो।
नंदी नाळा वहै अलख रा, भडारे भर पूरो।
गुरु परसाद गोरख रै सरणैं, सिद्ध रुस्तम है पूरो।

छाजूसर स्थित रुस्तमजी की समाधि पर बना मन्दिर मुस्लिम शैली पर निर्मित है। मन्दिर की बनावट देखने से ऐसा पता चलता है कि बादशाह औरगजेब ने इसे बनाने के लिए कारीगरो को दिल्ली से ही भिजवाया था। यही कारण है कि यह मन्दिर उच्चकोटि की स्थापत्य कला से परिपूर्ण है।

सिद्ध रुस्तमजी की जीवित समाधि के अतिरिक्त छाजूसर में निम्न-लिखित समाधियाँ और पाई जाती हैं—

(१) रुस्तमजी की घोड़ी की समाधि (२) सतीजी की समाधि ।

लेकिन इन समाधियों के विषय में कोई विशेष विवरण प्राप्त नहीं हो सका है ।

पारेवड़ा[1]–

सिद्ध रुस्तमजी के साथ दिल्ली जानेवाले 'लंफरों' में पाँचोजी का भी प्रमुख स्थान था ! ये वीतराग तथा उच्चकोटि के संत पुरुष थे। पाँचोजी का पूर्ण परिचय अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। कुछ लोग इन्हें ब्राह्मण भी बताते हैं पर इस सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्य नहीं मिल सका है । पाँचोजी सिद्ध तो थे ही साथ साथ कवि भी थे।[2] पारेवड़ा की सिद्ध परम्परा से सम्बन्धित पाँचोजी के ऐतिहासिक वृत्त में पुष्ट प्रमाण तो नहीं मिलता, पर इतना निःसन्देह कहा जा सकता है कि पारेवड़ा में श्री जसनाथजी की बाड़ी की स्थापना

---

(१) यह ग्राम बीकानेर डिवीजन के सुप्रसिद्ध गाँव साँडवा से तीन कोस पश्चिम में स्थित है तथा बीकानेर से दिल्ली जाने वाली मोटर सड़क की बम्बू स्टेशन से २ कोस दक्षिण में है। पाँचोजी से पूर्व भी यहाँ जसनाथजी की बाड़ी थी, १८००सो के आस-पास के बने पट्टों में जसनाथजी के 'आसण' का दाखला है। बाड़ी में सुन्दर मन्दिर है तथा जाल के अनेकों सुन्दर पेड़ हैं।

(२) कहते हैं पाँचोजी ने अनेक कविताएं गुफित की थी, पर वे आज सब कालकवलित हो गई हैं। कुछ फुटकर पद्य अवश्य उपलब्ध हैं—

गई सील मुरजाद, गई सब ल्होड़ बड़ाई ।
मन्दा बरसै मेह, घटी देवाँ सँकलाई ।
विरमा वचन गया'क कुवध कळजुग में आई।
झूठ, कपट, अन्याय अरथ, रत लोग लुगाई।
गया हंस गई पदमणी, गया गिवरा सिर मोती।
गई वासग सिर-मणी वा, मोल अमोलक होती।
जोधा गया पाणावळो, देता दान होती दया।
पाँचोजी कह रे परमगुरु, कळजुग में ऐता गया।

पाँचोजी ने ही की थी और पाँचोजी की समाधि पर प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ला षष्ठी को रात्रि जागरण होता है तथा सप्तमी को हवन किया जाता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि पाँचोजी ने इस तिथि को जीवित समाधि ली थी।

इस बाड़ी से सम्बन्धित एक ऐतिह्य घटना भी है, जिसका यहाँ उल्लेख अप्रासंगिक न होगा।

पारेवड़ा के लूणोजी नामक व्यक्ति ने सर्व प्रथम जसनाथी धर्म स्वीकार किया था, पर वे पूर्व सज्ञा में ही रहे। लूणोजी की स्त्री कसुमासती तथा उनके पुत्र अणदोजी और राघोजी ने लिखमादेसर जाकर सिद्ध धनराजजी से दीक्षा ग्रहण की। सिद्ध हो जाने के कारण इन्होंने ठाकुर को जमीन का कर देनें से इन्कार कर दिया, पर ठाकुर कर प्राप्त करने के लिए यथा सम्भव उचित अनुचित उपाय कार्यरूप में लाने पर उतर आया। तब इन्होंने ठाकुर से कहा कि हम अपने हाथों किसी भी स्थिति में आपको कर नहीं देंगे। तुम भले ही अपने हाथ से धान (अन्न) निकाल कर ले जावो। उस समय भूमि-कर के रूप में अन्न ही दिया जाता था।

ठाकुर की आज्ञा से ठाकुर के कामदार अणदोजी और राघोजी के घर जाकर, उनकी 'कोठी' में से अन्न निकाल कर लेजाने लगे। अचानक ही ठाकुर का इकलौता लड़का तथा घोड़ी बेहोश होकर गिर पड़े। ठाकुर घबराया, अपने कामदारों को अन्न लाने से रोक दिया और सिद्धों से अपने पुत्र तथा घोड़ी को स्वस्थ कर देने की प्रार्थना की।

सिद्धों ने कहा - यदि आप पारेवडा के समस्त सिद्धों से अन्न वसूली की छूट आज से कर दे तो आपका पुत्र और घोड़ी जीवित हो सकती है। कहते हैं, जैसे ही ठाकुर ने अन्न-वसूली निषिद्ध करने के लिए पट्टा[1] लिखकर दिया, पुत्र और घोड़ी दोनों ही पूर्ण स्वस्थ हो उठ बैठे।

यहाँ पारेवडा में पाँचोजी के अतिरिक्त सादोजी की एक और समाधि है। सादोजी के विषय में इस प्रकार कहा जाता है कि एक बार सादोजी 'जसनाथजी के जागरण' मे सम्मिलित होने के लिए 'ऊँटालड' ग्राम जा रहे थे। रास्ते में भूतों से डरने पर उनका हृदय विदीर्ण हो गया। लोगों ने उनकी

(१) पारेवडा के सिद्धो के पास उक्त पट्टे अब भी मौजूद है।

समाधि वहीं ऊँटालड़ में देदी। कहते हैं छै मास के बाद सादोजी ने अपनी सोती हुई दादी को दर्शन देकर कहा कि 'मेरी समाधि पारेवड़ा में होनी चाहिए; क्योंकि मैं जीवित हूँ।' दादी ने कहा—'तुम्हारा शरीरान्त हुए तो छै मास हो गये हैं। अब तक तो तुम्हारी हड्डियाँ भी गल चुकी होंगी। अब पारेवड़ा में समाधि कैसे दी जा सकती है!' प्रत्युत्तर में सादोजी ने कहा बताते हैं कि 'मैं मुर्छित अवस्था में अवश्य हूँ, पर मेरे शरीर में खून का दौरा अब भी हो रहा है। छै महीनों में मेरी हजामत खूब बढ़ गई है। तुम 'ऊँटलद' आओ. और मुझे खोदकर निकालो। जिस समय तुम मुझे खुदवाओगी, उस समय मेरी बाँई कनपटी पर फावड़ा लगेगा और उसमें खून निकलेगा। कहते हैं ऐसा ही हुआ। वहाँ से उन्हें पारेवडा लाया गया और उनकी हजामत बनवा कर स्नान कराया गया तथा समाधि दे दी गई। इनकी समाधि पर अब भी एक छोटा-सा मन्दिर है जो मुख्य मन्दिर के ठीक सामने है।

बीनादेसर[1]—

इस सुन्दर ग्राम में तीन जीवित समाधियाँ हैं। यहाँ श्री जसनाथजी महाराज की सुन्दर बाड़ी है तथा श्री नाथजी का एक सुन्दर मन्दिर भी है। बाड़ी के चारों ओर परकोटा तथा आगे दरवाजा बना हुआ है। बाड़ी में जाल के कई सुरम्य पेड़ भी हैं।

जीवित समाधियाँ इस प्रकार हैं—

(१) बींजोजी (बींजनाथजी) इन्होंने बीनादेसर ग्राम में एक बहुत ही संगीन कूआ बनवाया था, जब कूआ बनकर पूर्ण रूप से तैयार हो गया तो बींजोजी ने श्री रुस्तमजी को कूँआ दिखलाने के हेतु आमन्त्रित किया। कूएँ

---

(१) यह ग्राम बीकानेर-दिल्ली रेल्वे लाइन की राजलदेसर स्टेशन से लगभग ३ कोस उत्तर की ओर स्थित है।

बादशाह औरंगजेब द्वारा रुस्तमजी को प्रदत्त की गई पीले पाट की वह 'गुदड़ी' रुस्तमजी के पहनने का टोप और बागा आजकल इसी ग्राम की जसनाथजी की बाड़ी में रखा हुआ है, जिसका दर्शन जागरण आदि पर्वों पर ही करवाया जाता है। जस-नाथ-सम्प्रदाय में माने जाने वाले मुख्य जसनाथी धामों में बीनादेसर भी एक धाम माना गया है।

को देखकर श्री रुस्तमजी ने कहा—'इसका पानी तो खारा है।' ऐसा कहने मात्र से ही सचमुच पानी जहर-सा कड़ुवा हो गया। यह देख बींजोजी को बड़ा दु:ख हुआ। श्री रुस्तमजी ने उनको दु खी देखकर कहा—'भाई! दु ख करने की कोई बात नहीं, तुम मुझ से छिपाकर दिल्ली से द्रव्य लाये थे और उसी द्रव्य से यह कूँआ बनवाया, लेकिन तुम्हें समझना चाहिए कि ऐसी माया से किया हुआ कार्य सुफलदायक नहीं हो सकता, ऐसा तामसिक द्रव्य सत् कार्यों के उपयोग में नहीं लाया जा सकता। इसीलिए तो मैंने भी केवल गुरुजी के लिए गद्दी और नारियल मात्र ही स्वीकार किया था और यही कारण था कि हम बादशाह के समक्ष सफलता पूर्वक चमत्कार दिखा सके।'

बींजोजी की समाधि वि० स० १७७५ के बाद हुई है, क्योंकि बीना-देसर की जमीन के पट्टों में उपरोक्त सम्वत् ही अकित मिलता है, जो बींजोजी के नाम से बने हुए हैं।

(२) रामनाथजी — ये विरक्त महात्मा थे।

(३) लाखनाथजी — ये सारण जाति के सिद्ध थे तथा इनकी एक अलग से बाड़ी भी है। लाखनाथजी के नाम पर यहाँ एक कच्चा तालाब भी है, जिसकी मिट्टी निकालने से तथा वहाँ झाड़ू लगाने से बवासीर का रोग शांत होजाता है।

भरपाळसर(१)—

यहाँ खेतोजी परम तपस्वी सिद्ध पुरुष हो चुके हैं। रुस्तमजी के साथ दिल्ली जानेवाले दस 'लश्करों' में खेतोजी प्रमुख थे। इनका जन्म मडावासणी (डीडवाना) में हुआ था। राजलदेसर तथा नूवॉ इनके विशेष तपस्या क्षेत्र रहे हैं। इनके नानकजी तथा नारायणजी नाम के दो लड़के हुए। खेतनाथजी ने जब जीवित समाधि लेने का निश्चय किया तो उनकी स्त्री ने छाजूसर आ

(१) यह ग्राम रतनगढ शहर से चार कोस पश्चिम में बसा हुआ है। राजल-देसर से भी निकट पडता है। उपरोक्त जीवित समाधियाँ राजाणा' नाम के तालाब के पास है, जो राजलदेसर-रतनगढ की रेल्वे लाइन के पास है। यहाँ पर खेतोजी की समाधि पर एक छोटासा मन्दिर भी है। निश्चित तिथियों पर भरपाळसर के सिद्धो द्वारा यहाँ जागरणादि पर्व मनाये जाते है।

कर सिद्ध रुस्तमजी से निवेदन किया कि महाराज ! कुछ काल के लिए आप उन्हें (खेतोजी) समाधि लेने से रोक दें तो उचित होगा, क्योंकि बच्चे अभी छोटे हैं।

रुस्तमजी ने आकर खेतनाथजी को समाधि लेने से रोका, पर खेतोजी ने अस्वीकार करते हुए कहा—'यह बात किसी के वश की नहीं है। समाधि लेने के लिए मालिक ने हुकम दे दिया है, जो अब रोका नहीं जा सकता। फलतः रुस्तमजी के इन्कार करने पर भी खेतनाथजी ने समाधि ले ली।

भरपाळसर में खेतनाथजी की समाधि के अतिरिक्त तीन जीवित समाधियाँ और हैं—

(१) धनानाथजी (२) सिम्भूनाथजी (३) सुन्दरनाथजी।

इनका विशेष परिचय प्राप्त नहीं हो सका है।

झँझेऊ[1]—

यहाँ तीन जीवित समाधियाँ बताई जाती हैं:—

(१) सुरतोजी— ये सिद्धराज रुस्तमजी के साथ दिल्ली गये थे। इस 'लंफरों' में इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

यशोनाथ पुराण में लिखा है कि सिद्ध पालोजी ने सुरतोजी के झँझेऊ में प्रकट होने की भविष्यवाणी की थी।[2]

सुरतोजी ने झंझेऊ में कूँआ बनवाया।

(१) यह ग्राम सूडसर स्टेशन से लगभग ३ कोस की दूरी पर उत्तर की ओर स्थित है।

(२) सुरतनाथ सिद्ध प्रकट हुवैला,
झंझेऊ के ग्राम बसैला,
जागी जोत जुगो जुग जागैं,
रुस्तम सिद्ध प्रगटे आगे.

(वही पृष्ठ सं० ९३)

एक बार जेसोजी[1] जो लिखमादेसर के सिद्ध पुरुष बताये जाते हैं, लिखमादेसर जाते हुए झँझेऊ में सुरतोजी के पास आ ठहरे और उन्होंने सुरतोजी द्वारा निर्मित कूँआ देखने के लिए कहा। सुरतोजी ने वह कूँआ जेसोजी को दिखलाया। सराहना करते हुए जब जेसोजी ने सुरतोजी से कुएँ का नाम पूछा तो सुरतोजी ने कहा—'इसका नाम सुरतसागर है।'

सुरतोजी की महत्वाकॉंक्षा पूर्ण बात सुनकर जेसोजी ने उसी प्रकार कहा—"सुरतसागर, राख को आगर"

जेसोजी के ऐसा कहने से कूएँ में पानी की जगह राख हो गई।

कुछ दिन बाद देवोजी के पुत्र हरनाथजी झँझेऊ आये। सुरतोजी ने उनको पिछला वृत्तान्त सुनाकर जब कूँआ दिखाया तब हरनाथजी ने कहा—"सुरतसागर जळ को आगर, झख मारो जेसियो[2] मागर।"

हरनाथजी के ऐसे कथन से कूआ पानी से भर गया।

सुरतोजी के द्वारा रचित सारगर्भित स्फुट रचनाए भी प्राप्त होती हैं। इनका समाधि काल और अन्य दो जीवित समाधियों का विवरण अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

---

(१) सम्भव है ये जेसोजी चाऊवाले ही हो, क्योंकि इनका भी सुरतोजी के समकालीन होना सिद्ध है।

(२) जेसाजी एव हरनाथजी का लिखमादेसर में समागम हुआ वहाँ जेसोजी ने झझेऊ की वात मालूम होने पर अचानक ही हरनाथजी से कहा— "हरनाथजी! भरो गाडा" (हरनाथजी गाडियाँ भर लीजिये।

हरनाथजी ने कहा— 'किस चीज से ?"

जेसोजी ने कहा— "कोढ, कळक, छत्तीस प्रकार के वायु विकार आदि से।"

ऐसा कहने से हरनाथजी रोग ग्रसित हो गये।

थोडी देर वाद जव जेसोजी पेशाव करने गये। तव हरनाथजी ने कहा— "होज्या अखूट !" (मूत्र की धार लगातार वहती ही रहे।")

ऐसा कहने पर जेसोजी की पेशाव की धार वन्द नही हुई। अन्त में दोनो को समझौता ही करना पडा।

कल्याणसर[1]—

यहाँ केवल एक ही जीवित समाधि है—

(१) ठुकरोजी—ये उक्त सुरतोजी के सगे भाई थे। रुस्तमजी के साथ दिल्ली जानेवाले 'दस लंफरों' में इनका नाम भी बड़े आदर के साथ याद किया जाता है। इन्होंने कल्याणसर से कुछ दूर जंगल में जीवित समाधि ली। इनकी भी कुछ स्फुट रचनायें प्राप्त होती हैं।

लिखमणसर[2]—

यहाँ थिरमोजी की जीवित समाधि है। दिल्ली जानेवाले 'दस लंफरों' में ये अग्रगण्य थे। इनके पवित्र समाधिस्थल पर सुन्दर मन्दिर और बाड़ी है। यहाँ परम्परानुसार जागरणादि पर्व मनाये जाते हैं।

बेरासर[3]—

यहाँ दो जीवित समाधियाँ हैं:—

(१) डाबोजी— गाँव के लोगों के कथनानुसार ये भी रुस्तमजी के साथ दिल्ली गये थे पर इनका दिल्ली जाना संशयास्पद ही है। इनके समाधिस्थ होने की तिथि अज्ञात ही है।

(२) दूसरी समाधि के बारे में भी कोई विवरण प्राप्त नहीं हो सका है।

बम्बू[4]—

यहाँ दो जीवित समाधियाँ हैं:—

(१) पदमनाथजी— बम्बू निवासियों के कथनानुसार ये सिद्ध रुस्तमजी के साथ दिल्ली गये थे पर 'दस लंफरों' में इनका नामोल्लेख नहीं मिलता। यह भी अज्ञात ही है कि इन्होंने कब जीवित समाधि ली।

(२) नाडोजी— ये उक्त पदमनाथजी के भाई थे। बम्बू में उक्त दोनों

(१) यह ग्राम बणीसर स्टेशन से चार कोस दक्षिण की ओर बसा हुआ है।
(२) यह ग्राम लाडनूं से पश्चिम दिशा में स्थित है।
(३) यह ग्राम मोटवा से एक कोस की दूरी पर उत्तर की ओर है।
(४) यह ग्राम बीरासर स्टेशन के निकट ग्राम मोटवा के पास मोटर सड़क पर स्थित है।

पालोजी परिवार से विरक्त होकर तपस्या करने लगे। कहते है कि तपस्याकाल में प्रतिदिन उनकी माता उनको भोजन देकर आती थी। एक दिन पालोजी की माता किसी विशेष कारणवश भोजन न ला सकी और अपनी पुत्रवधू (सुरजनजी की स्त्री) को भोजन देकर भेज दिया। सास की आज्ञानुसार सुरजनजी की स्त्री उपेक्षित भाव से भोजन लेकर पालोजी के पास गई और रास्ते में सोचती गई कि जब यह विरक्त ही हो गया है तो फिर घर आकर भोजन क्यों न कर जाया करे ? क्यों ढ़ोंग करता है। इसे इस प्रकार कब तक भोजन दिया जा सकेगा ? सुरजनजी की स्त्री भोजन देकर आ गई। इधर समय पाकर जैसे ही पालोजी की माता रसोईघर में घुसी तो उसे उन बर्तनों मे भोजन वैसे ही परोसा हुआ मिला, जिनमें वह सदैव पालोजी के लिए भोजन परोसकर ले जाया करती थी। माता ने सुरजनजी की स्त्री से पूछा—'क्या तू भोजन देकर नहीं आई ?' बहू ने कहा—'मैं तो अभी २ पालोजी को भोजन देकर आई हूँ।' माता ने कहा— तो 'इन बर्तनों मे यह भोजन कहाँ से आया ?' बहू ने सासजी को विश्वास दिलाने के कई प्रयत्न किये पर माता को विश्वास न हो सका। वह पुन. भोजन लेकर पालोजी के पास स्वय गई पर पालोजी भोजन लेकर आती हुई माता को देखते ही आगे दौड पड़े, पालोजी को दौड़ते देखकर माता ने पालोजी के बालमित्र (बाद मे शिष्य) जीयोजी को आवाज

दोऊँ कुळ तारण, देत सिधारण, गुरु म्हारा चेडाँ सूँ पिंड छुडाया।
भळइळ बीज खिवै भाबूका, मेघा डम्बर छायो।
मनस्या पून हिंडोळै हिन्डे, इन्द बधावै वायो।
कीडी रै ज्यूँ राह जुळँता, खोज'ज सत रो पाया।
बाद विरोध ले पासै मेल्यो, दाता नै सीस निवाया।
गाँवण हाळै सोई गाया, सरण गुराँ रै आया।
गुरु जसनाथ दाता न्याय करै, अन्याय नै मारै दूधो पाणी छाणै।
गुरु जसनाथ रै फरमाइयै, पालोजी गुरु रो ग्यान वखाणै।

उक्त 'सबद' में गुरु गोरखनाथजी के दर्शनोपरान्त सिद्ध पालोजी ने अपने भावोद्गार प्रकट किये है।

देकर कहा—'पालोजी को ठहराना।' जब जीयोजी ने विशेष आग्रह किया तो पालोजी वहीं ठहर गये और उसी स्थान पर बारह वर्ष तक तप करते रहे।[1]

इस तपस्या के बाद वे दक्षिण की ओर बसे मूँडसर गये। वहाँ अब भी जसनाथजी की बाड़ी है।

वहाँ से पालोजी 'सींणीवाले' गाँव पहुँचे। वहाँ उन्होंने 'लेधा' तथा 'बिसू' जाति के जाटों को जसनाथी बनाया। उस समय लेधा में हासो नाम का व्यक्ति मुख्य था पर वह कोढ़ी था, जिसे पालोजी ने निरोग कर दिया। सींणीवाला एवं बरुया ग्राम होते हुए सिद्ध पालोजी माल गाँव पहुँचे। माल गाँव का धीरा गहोलिया बड़ा धनवान् था। उसके विशेष आग्रह पर पालोजी ने अपना पहला चतुर्मास वहीं पर किया। कहते हैं एक दिन धीरा गाड़ी तथा बैलों की जोड़ी खरीद कर लाया और पालोजी से कहने लगा—'गुरुदेव ! मेरी गाड़ी तथा बैलों की जोड़ी तो देखो।' इस पर पालोजी ने कहा—'आगामी वर्ष से बड़ा भयंकर दुष्काल पड़ेगा।[2] अतः तुम्हारे बैल और गाड़ी का खरीदना मुझे उचित नहीं जान पड़ता।' इस कथन को सुनकर भी धीरा सचेत न हो सका, पर सरकारी कामदार लोढा महाजन (नागौर) सतर्क हो गया। उसने अन्न तथा घास का पर्याप्त संग्रह कर लिया।

---

(१) वहाँ अब भी उस तपस्या की स्मृति में बाड़ी बनी हुई है। यह बाड़ी पूनरासर ग्राम में पश्चिम की ओर है।

(२) इकावनो, बावनो, तेपनो, चोपन की चाल।
गाधर रैंसी घूमता, हट्ट जड़ी हट नाल॥
गायाँ होसी गाळती ओरण होसी ढेर।
बाँका नर बिकावसी, मतमानी तू रीस॥
अन मोंघो'र घास पळेटो, धीचो दूधो मागो।
सिग-सिणियाँ को नेत छैलो हटो ढेमर बांधो॥
आद सिद्ध पालोजी बोलै (धीरा) जाग सके तो जागो।

उपरोक्त पद्य तथा वृत्तान्त ऐतिहासिक दृष्टि से दूर पड़ता है, पाठक इस पर विशेष तर्क न करें।

इस चतुर्मास के बाद सिद्ध पालोजी अहवाद तथा ओड़ींट ग्रामों से होते हुए बावरासर पधारे। बावरासर निवासियों ने पालोजी का बड़ा स्वागत सत्कार किया और अपने जलाभाव के कष्ट को दूर करने की प्रार्थना की। अत. पालोजी ने अपनी दिव्य दृष्टि से भूमि में पाँच पुरुष (पुरुषायाम) नीचे दबी कूए की सुदृढ नाल बताकर कहा कि—'उस नाल पर एक शिला रखी हुई है, उसे हटा देने पर कूएँ की नाल निकल आयेगी। इस कूएँ का पानी मीठा है।'

वहाँ से सिद्ध पालोजी चाऊ[२] आये। चाऊ ग्राम से पूर्व की ओर एक टीला है। टीले की ढलाव में खेजड़ी के नीचे आकर पालोजी बैठ गये। वहाँ विचरने वाले ग्वालों ने देखा कि सूरज के काफी ढलने पर भी खेजड़ी की छाया आगे नहीं बढ़ पाई है—साधु के ऊपर ही हो रही है। ग्वालों को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ।

ग्वालों से असम्भव तथा विलक्षण बात सुनकर ग्रामवासी भी वहाँ गये। उन्हें भी यह देखकर अचम्भा हुआ। पालोजी वहाँ से उठकर चाऊ के उस स्थान पर पहुँचे जहाँ वर्तमान में पालोजी की बाड़ी है। उस समय चाऊ ग्राम यहाँ से कुछ दूर पर बसा हुआ था। गाँव वालों ने पालोजी से कहा—'महाराज यहाँ तो प्रेत रहते हैं, यदि आप यहाँ रहेंगे तो आप पर कोई विपत्ति आजायेगी, अत आप ग्राम मे पधारें।' सिद्ध पालोजी ने उत्तर दिया कि—'हमारा आसन तो इसी जगह पर रहेगा। गुरुदेव की ऐसी ही अन्तःप्रेरणा है।'

रात होते ही प्रेतों ने अपने मायिक चमत्कार दिखाने शुरु कर दिये और सारी रात दिखाते रहे, पर पालोजी उन भयकर दृश्यों से तनिक भी विचलित नहीं हुए। अपितु सिद्ध पालोजी ने अपने योगबल से प्रेतों को अपने वस में कर लिया।

× × × ×

पालोजी की भविष्यवाणी के अनुसार अकाल पर अकाल पड़ने आरभ

---

(२) यह ग्राम नागोर शहर से पूर्वोत्तर दिशा में स्थित है। पूनरासर के बाद सिद्ध पालोजी का कार्यक्षेत्र चाऊ ग्राम ही रहा था, जिसका पूर्ण परिचय पालोजी के चाऊ प्रसग में तथा यथास्थान दिया गया है।

हो गये। समीपवर्ती क्षेत्र की भूखी जनता जब पालोजी के पास आई, तब उन्होंने कहा—'मुझे तो अन्न कहीं दिखाई नहीं पड़ता है, फिर भी भगवान् रक्षा करेंगे।'

सिद्ध पालोजी भूखी जनता की उदरपूर्ति के लिए अपनी गुदड़ी के नीचे से सबको आवश्यकतानुसार अन्न वितरण करने लगे। यह क्रम कुछ समय तक चलता रहा। एक दिन धीरा गहोलिया तथा दूसरे लोगो ने पालोजी से निवेदन किया कि 'महाराज ! हमें कोई काम धन्धा बतलाइये—बिना श्रम के आपका अन्न खाना हमें उचित नही जँचता।"

तब पालोजी ने लोगों की श्रम निष्ठा देखकर कहा—"तालाब खोदना शुरु करदो।"

धीरा गहोलिया तथा अन्य लोगो ने कहा—"बिना उपकरणों के तालाब कैसे खोदे ?"

लोगों की विवशता देखकर पालोजी ने अपने वशीभूत प्रेतों को जागृत करके कहा—"अब तुम्हारी मोक्ष का समय आ गया है। तुम तालाब खोदने के साधन जुटाओ तथा लोगो के लिए छाया की व्यवस्था करो।"

आज्ञा पाकर प्रेतों ने जालोर से सत्ताईस जाल (पीलू) के पेड लाकर वहाँ लगा दिये और तालाब खोदने के अन्य साधन भी जुटा दिये।

लोग दिन भर जितनी मिट्टी खोदते, रात मे प्रेत उसे हरी-म्हे-भदाणा' ग्राम के पास लेजाकर डाल देते।

तालाब[1] के सम्पूर्ण होने पर सिद्ध पालोजी ने अपने योग-बल से

---

(१) गाँव के समीप ही पश्चिम की ओर यह तालाब है। तालाब की लम्बाई उत्तर-दक्षिण ४०½ पावटा है। इस नाप से तालाब की गहराई २२½ पावटा होती है। तालाब के बीचों बीच बन्धी है, जिस पर पानी को रहने के लिए पक्का चबूतरा (दहदूम्बा) है। तालाब के तल में बड़े बड़े विशाल पत्थर जड़े हुए है। तालाब चारो ओर पत्थरों से मजबूती के साथ बड़े कलापूर्ण ढग से बन्धा हुआ है। एक पत्थर तालाब की पूर्व-दक्षिण स्थित सीढ़ियो में लगा हुआ है, जो ग्यारह फुट लम्बा, ग्यारह फुट चौड़ा और छै फुट मोटा है। इस एक ही पत्थर पर नौ सीढ़ियाँ बनी हुई है, जिनकी चढ़ाई एक फुट की है। इस पत्थर का वजन सैकड़ों मन से कम नहीं।

चारों ओर गंगाजल की वर्षा करके उसे ऊपर तक भर दिया और प्रेतों को उस तालाब में स्नान करने की आज्ञा दी। स्नान करने से प्रेत तो मुक्त हो ही गये पर सर्वत्र सुखद वर्षा होजाने से लोग भी अपने अपने गाँवों को चले गये।

तालाब के निर्माण की बात सुनकर सिद्ध हाँसोजी भी उसे देखने के लिए आये।[1] हाँसोजी रास्ते में जब 'जाणेवा' ग्राम के कूए पर अपने बैलों को पानी पिलाने ले गये तब जाणेवा वासियों ने सिद्ध हाँसोजी से उपहास करते हुए कहा—"बाबोजी, कूए का पानी तो खारा है।"

हाँसोजी अपने बैलों को बिना पानी पिलाये ही वापस ले आये।

चाऊ में प्रविष्ट होते ही जब दक्षिण की ओर के कूएं पर अपने बैलों को पानी पिलाने लगे तब लोगों ने विनम्रतापूर्वक कहा—"सिद्धजी महाराज! अपने बैलों को पानी तो भले ही पिलाइये, पर पानी खारा और विषैला (बिराइजणा) है।

श्री हाँसोजी ने कहा— 'भाई, खारा पानी तो जाणेवा मे रह गया है, इस कूए का पानी तो मीठा ही है।"

सिद्ध हाँसोजी के वचनों से जाणेवा के मीठे पानी का कूआ खारे पानी का और चाऊ के कूएं का खारा पानी मीठा हो गया।

सिद्ध हाँसोजी का आगमन सुनकर पालोजी आदर सत्कार के लिए उनके सम्मुख गये और उन्हें तालाब पर लिवा लाये। सिद्ध हाँसोजी ने सुन्दर और सुदृढ़ तालाब को देख अत्यन्त हर्ष प्रकट करते हुए पालोजी को तीन बार धन्यवाद दिया। सिद्ध पालोजी ने उल्लसित होकर हाँसोजी से कहा—"इस ग्राम के सेवक तो हमारे हैं और तालाब आपका है।"

आश्चर्य है कि आधुनिक काल के यन्त्र सुलभ न होने पर भी यह पत्थर किस प्रकार लगाया गया। तालाब के पूर्व की ओर एक कीर्ति स्तम्भ अपनी विशालता लिए खडा है, जिस पर पच देवों की सुन्दर कलापूर्ण आकृतियां अंकित हैं। कीर्ति स्तम्भ पर लेख भी खुदा हुआ है, जिसमें 'पालू' ही स्पष्ट पढा जाता है। कीर्ति स्तम्भ का पत्थर जोधपुर के पत्थर जैसा है।

(१) ऐसा भी मत है कि उस समय हारोजी भी चाऊ आये थे। चाऊ में हारोजी की बाडी भी है।

उसी दिन से उक्त तालाब 'हाँसोळाव' नाम से पुकारा जाने लगा। तालाब पर स्थित कीर्ति-स्तम्भ को देखने से जाना जाता है कि सिद्ध पालोजी ने तालाब की प्रतिष्ठा पर अनेकों सिद्धों एवं सत्पुरुषों को आमन्त्रित किया था।

कुछ काल तक चाऊ में रहने के बाद जब पालोजी, हाँसोजी आदि वहाँ से प्रस्थान करने लगे तो चाऊ निवासियों ने उनसे वहीं रहकर धर्म-साधना करने की विनती की। इस पर पालोजी ने कहा—"संत किसी की बपौती नहीं होते, वे विचरते ही भले हैं। आप लोगों की मेरे प्रति निष्ठा है तो आप पाँच निषेधों और तीन प्रेरणाओं का पालन कर अपने जीवन मार्ग को प्रशस्त बना लेवें।"

चाऊ निवासियों ने कृतज्ञता पूर्वक पाँचों निषेधों और तीनों प्रेरणाओं के पालन करने की प्रतिज्ञा की।

निषेधः—

(१) न्हाई—का कार्य गाँव की सीमा में न किया जाय।

(२) चूने की भट्टी न जलाई जाय।

(३) शराब न निकाली जाय।

(४) नील का माट न चढ़ाया जाय।[1]

(५) गाँव की सीमा में शिकार न खेली जाय।

प्रेरणाः—

(१) वर्षा होने पर पहली बार हल जोतने जाओ तो हमारी बाड़ी में पक्षियों के लिए चुग्गा अवश्य डालना।

(२) खेत की उपज में से सवा मन अन्न पक्षियों के चुग्गे के लिए बाड़ी में प्रदान करना।

(३) पहली मथनी का घृत हवन निमित्त बाड़ी में देना।

पालोजी गाँव वालों को आत्मोन्नति के अनेक उपदेश देकर लिखमा-देसर की तरफ चल पड़े। उनके साथ बावरासर वाला खेमा खाती आदि सैकड़ों

(१) रंगरेज लोग एक विशेष क्रिया से मिट्टी की एक बड़ी मटकी में नील को गलाते हैं जिसमें असंख्य जीवों की हत्या होती है।

सेवक शिष्य थे।

पालोजी के चले जाने के बाद चाऊ ठाकुर अनूपसी ने ग्राम के लोगों को इकट्ठा करके कहा— 'यह तालाब मेरे गाँव में है, इसलिए इस तालाब को 'अनूप सागर' कहकर पुकारा जाय। मैं ग्राम का ठाकुर हूँ, अत आज से सब को चेतावनी दी जाती है कि यदि कोई भी इस तालाब को 'हाँसोळाव' कहेगा तो उसे सजा मिलेगी। ठाकुर लोगों को ऐसा कह ही रहा था कि तालाब का पानी भयकर विस्फोटक शब्द के साथ पाताल फोडकर नीचे जाने लगा। जल का भयकर निनाद सुनकर सब लोग तालाब पर इकट्ठे हो गये, देखा तो सारा का सारा पानी जमीन में समा गया।

इस अतर्कित दुर्घटना से ठाकुर अनूपसी और ग्रामवासी घबरा गये। वे दौड़े दौडे पालोजी के पास क्षमा प्रार्थना एव उचित मार्ग प्रदर्शन की खोज के लिए लिखमादेसर जा पहुँचे।

पालोजी ने उन्हें देखते ही कहा— "भविष्य में तालाब में केवल छै मास ही पानी रहा करेगा। कभी भी गायों को तालाब में पानी पीने से मत रोकना, चाहे वे किसी भी गाँव की क्यों न हों। यदि उन्हें रोक दिया गया तो तालाब में पानी का रहना कठिन हो जायेगा।"

लिखमादेसर में निवास करते वक्त एक बार श्री पालोजी के मन में आया कि सिद्धाचार्य की समाधि पर एक मन्दिर बनवाया जाय। इसी सकल्प से प्रेरित होकर वे कतरियासर की ओर अपने शिष्यों के साथ चल पड़े, जिनमें खेमा खाती का नाम मुख्य है।

उन्होंने पहला विश्राम पूनरासर में किया। अपने बैलों को बाँधने के लिए उन्होंने जाल के चार सूके खूँटे रोपे जो उनकी तपश्चर्या के सामर्थ्य से सुबह तक हरे भरे हो गये। भूमि की पवित्रता तथा रमणीयता देखकर सिद्ध पालोजी ने खेमा खाती से कहा—' खेमा, मेरा समाधि स्थल यहीं होगा।"

कतरियासर पहुँच कर अपने पूर्व निश्चयानुसार उन्होंने सिद्धाचार्य के पवित्र समाधिस्थल पर मन्दिर के निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर दिया। सिद्धाचार्य की समाधि पर बनी फूस की झोपड़ी को अक्षुण्ण रखते हुए उसके चारों ओर मन्दिर निर्माण के पश्चात् झोंपड़ी के बन्ध (जूँण) तोड़ने के विचार व्यक्त

करने पर खेमा से पालोजी ने कहा—"बन्ध तोड़ने के लिए, जिसे अचिन्त्य शक्ति का निर्देश होगा, वही तोड़ेगा।"

मन्दिर बन चुकने के बाद खेमा खाती पालोजी की आज्ञा पाकर कलश का पत्थर लाने के लिए नागौर चला गया। पीछे से 'जूण' तोड़ने के लिए दैविक प्रेरणा हुई। पालोजी ने सोचा खेमा तो यहां नहीं है। उन्होंने ऊँचे स्वर से तीन बार खेमाको आवाज दी।

खेमा नागौर के माही दरवाजे[1] में प्रवेश कर ही रहा था कि उसे पालोजी की पुकार सुनी। खेमा किसी अज्ञात शक्ति द्वारा प्रेरित होकर तत्काल कतरियासर आ पहुँचा पर इससे पहिले ही पालोजी ने सिद्धाचार्य की झौंपड़ी के 'जूण' तोड़ डाले।

'जूण' तोड़ते ही पालोजी पर अकस्मात् 'गैबी' छुरी का प्रहार हुआ। पालोजी विक्षत होकर गिर पड़े। लोगों ने पालोजी को समाधि वहीं देने का निश्चय प्रकट किया पर खेमा ने यह कहकर विरोध किया कि सिद्ध पालोजी ने पूनरासर में ही समाधि देने के लिए मुझ से कहा था।

समाधि को लेकर परस्पर विवाद खड़ा होगया अन्त में आकाशवाणी[2] के अनुसार पालोजी को पूर्व निश्चित स्थान पर समाधि देने के लिए उनकी देह गाड़ी में रख कर पूनरासर में ले आये[3]।

रास्ते में 'बीजेरा वास, के लोगों ने अपने गाँव के बीच से शव को ले

---

(१) कुण्डिया सारस्वत समाज के आदि पुरुष सरमजी महाराज की माही नामकी एक सांड(ऊँटनी) "तत्कालीन नागोर के नागवंशी क्षत्रिय राजा की ओरसे उन्हें भेंट की गई थी" के नाम पर ही इस दरवाजे का नाम माही दरवाजा पड़ा। माही सांड की मृत्यु इसी स्थान पर हुई थी।

(२) वाणी एक आकाश सुणाई, पूनरासर ले जाओ भाई।
चार जाळ उगी सुभकारी, जाके मध्य समाधी सारी॥
(जसोनाथ पुराण पृ० ९८)

(३) पूनरासर में सिद्ध को लाया, टीबी समाधी आन धामाया।
खेमो खाती संग में आयो, पालोजी को मिन्दर चिणायो॥
(वही पृ० ९८)

जाने से रोका, तो कहा जाता है कि पालोजी ने अपना एक पैर खड़ा कर लिया। इससे 'बींजेरा बास' के लोग बड़े चकित हुए और प्रभावित हो पालोजी की देह के साथ पूनरासर की ओर चल पड़े।

पूनरासर में सिद्ध पालोजी को विधि पूर्वक समाधि दे दी गई। पालोजी की समाधि के सम्बन्ध में यशोनाथ पुराण मे लिखा है—

सवत् सोळै तेसठे, चेत सुदी सपताय ।
वा दिन पालणनाथजी, निरभै सुरग सिधाय ॥

पूनरासर की मं बाड़ी में सिद्ध पालोजी की जीवित समाधि के अतिरिक्त पाँच और जीवित समाधियाँ हैं—

(१) खेमा खाती – यह बावरासर का निवासी था और सिद्ध पालोजीके के प्रिय शिष्यों मे से एक था।

(२) सती जसोदा—यह पूनरासर के जाणी सिद्धों की दादी थी, जिसने पति के देवलोक होजाने पर विक्रम सवत १६०५ वैसाख शुक्ला पूर्णिमा को जीवित समाधि ली।

तीन अन्य समाधिया के विषय में अब तक कोई विवरण प्राप्त नहीं होसका है।

पूनरासर की बाड़ी को अनेक सिद्ध पुरुषों ने गोर्वान्वित किया है, जिनमें जियोजी साँखला प्रमुख हैं। ये सिद्ध पालोजी के बाल मित्र थे तथा बाद में उनके शिष्य होगये थे। इनकी फुटकर रचनाएँ आज भी प्राप्त हैं, जिनमें सिद्धाचार्य का 'जलमझूलरा' तो बहुत ही प्रसिद्ध है।

पूनरासर की बाड़ी के वर्णन मे नानकजी के बनाए हुए कूए का वर्णन करना अप्रासगिक न होगा। इस कूएं के विषय में कहा जाता है कि जिस कूएं से नानकजी (पालोजी के भाई सुरजनजी का पुत्र) पानी लाया करते थे, एक दिन उस कूएं पर बहुत भीड़ थी और नानकजी ने दूसरों की बारी (क्रम) के बीच मे ही जल भरना चाहा। यह देख कर किसी व्यक्ति ने नानकजी को ताना मार दिया कि "आप तो अब सिद्ध होगये है, अपना कूआँ अलग क्यों नहीं बनवा लेते हो।"

नानकजी को यह बुरा लगा पर उनके पास कूप निर्माण के लिए धनाभाव था। उन्होंने सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी से प्रेरणा-प्राप्ति के लिए अनशन आरम्भ कर दिया। रात्रि में सिद्धाचार्य ने नानकजी को दर्शन देकर कहा—"सुबह पूर्व की ओर जाने पर, जहाँ 'गोरी गाय' (कपिला) अपने बछड़े को दूध पिलाती हुई मिले, जहाँ खड़ाऊ का निशान हो, वहीं कूआँ खुदवाना उसमें मीठा पानी निकलेगा।"

नानकजीने सिद्धाचार्य से धनाभाव की बात कही। प्रत्युत्तर में सिद्धाचार्य ने कहा—"तुम प्रात. पश्चिम को बाडी में जाना और वहाँ पक्षियों को चुग्गा डालना, जहाँ मोर पक्षी अपने पैरों से "खुराळी" (भूमि कुरेदन) करता मिले वह जगह खोदने पर तुम्हें धन प्राप्ति होगी, पर ध्यान रखना कि इस धन का उपयोग केवल कूप निर्माण के लिए ही करना। नहीं तो सम्पूर्ण धन नष्ट हो जायेगा।"

नानकजी ने कूआँ बनवाना आरम्भ कर दिया। जब कूए की नाल बन कर तैयार होगई तो उनके पास एक याचक (ढाढी) आया। नानकजी ने भूल से उसे एक रुपया दे दिया। ऐसा करते ही सारा धन लुप्त होगया।

नानकजी ने पूर्ववत् अनशन प्रारम्भ किया। और सिद्धाचार्य ने पुनः दर्शन देकर कहा—"अब तुम्हे इस कार्य के लिए धन प्राप्ति नहीं होगी। यह कार्य तुम्हारी भावी पीढियों मे ही सम्पन्न होगा।"

कूआँ वैसे ही अधूरा पड़ा रहा। नानकजी की तीसरी पीढी में उत्पन्न रतनोजी सिद्ध ने कूए का पूर्ण निर्माण करवाया।

चाऊ—

गत प्रसंग में यह लिखा जा चुका है कि सिद्ध पालोजी ने चाऊ में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की बाड़ी की स्थापना कर अकाल पीड़ित जन-समुदाय को अन्न वितरित करते हुए वहाँ 'हाँसोळाव' तालाब का निर्माण करवाया था।

सिद्ध पालोजी के चाऊ निवास-काल मे यहाँ के सूमोजी तथा रतनोजी

कू कणा ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था।[1] वे दोनों सगे भाई और सिद्ध पुरुष थे। तत्कालीन जोधपुर नरेश गजसिंहजी इनका पूर्ण सम्मान किया करते थे। उन्होंने सिद्ध पालोजी के नाम सम्राट् अकबर के दिये हुए ताम्रपत्र के आधार पर पट्टा[2] बनाकर इनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की थी।

इस पट्टे से यह भी प्रमाणित होता है कि वि० सं० १६६० तक मूमोजी और रतनोजी विद्यमान थे। इन्होंने जीवित समाधि कब ली, इसके विषय में इतिहास मौन है। यदि रुस्तमजी के साथ जानेवाले यही मूमोजी और रतनोजी थे तब तो इन्होंने वि० स० १७३६ के बाद ही समाधि ली होगी?

चाऊ में इन दोनों भाइयों की समाधियाँ हैं। मूमोजी बड़े थे, अतः इन दोनो भाइयों का समाधिस्थल मूमोजी की बाडी के नाम से प्रसिद्ध है। बाडी में चारों ओर मीठे जाल के पेड लगे हुए हैं। वहाँ प्रतिदिन पक्षियों को चुग्गा डाला जाता है और निश्चित तिथियों पर जागरण एव हवनादि शुभ कार्य किये जाते है।

तपोजी—

ये चाऊ के रहने वाले और ईसराम शाखा के थे। ये बड़े ही सिद्ध एव भजनानन्दी पुरुष हुए है। इनके विषय में प्रसिद्ध है—

सिद्ध पालोजी के निवास काल मे समग्र चाऊ ने ही इनका शिष्यत्व

---

(१) पालणनाथ सिद्ध सुद्ध कहिये, विरक्त आप अकेला रहिये।
मूमोजी रतनोजी चेला, चाऊ के निज बास वलेला॥
(यशोनाथ पु० ९७)

(२) पट्टे का अविकल रूप इस प्रकार है —

सवारूप श्री महाराजाधिराज श्री गजसिहजी वचनायतु तथा सिद्ध मूमा, रतना, पालारा गांव चाऊ में छे सू पालारा वाडी, खेत, घर तलीवारी घरती हलवा २ दोय दीवी सिद्ध मोमनाथ रतननाथजू दीवा सू खडसी नें खावसी इणो कनै हथेरण सन् ९७९ हीजरी साल २७ वे जुलूस रो ताम्बापत्र वादशाजी श्री अकवरशाजी रो मकाम नागोर रो सिद्ध पालै रै नांव रो छे देख सही कर दीनो छे सू घरती हलवा २ चाह (चाऊ) में नै घरती। वीगा १५१ वाघसर (वाघरासर) री छै सू पाला रा चेला चाटो भोगविया जावसी हजूर रो हुकम छै सम्वत १६९० रा माह सुदी ३ मु० जोधपुर मुख परवानगी राजसीय खीवावत।

ग्रहण कर लिया था। किंवदन्ती भी है कि—लम्बे समय के बाद तपोजी को देवी वाणी में सिद्ध पालोजी ने आन्तरिक प्रेरणा दी थी। यही कारण है कि तपोजी पालोजी के शिष्य माने जाते हैं। तपोजी ने अपने घर पर ही एक वर्ष तक तप किया, पर घरवालों को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने तपोजी से कहा—"यदि तप ही करना है तो अलग हो जाओ, निरर्थक तुम्हें रोटियाँ कौन खिलाता रहेगा?" पर तपोजी नहीं माने। अन्त में घरवालों ने चाऊ ठाकुर अनूपसी को उन्हें समझाने के लिए उनके पास भेजा। ठाकुर को आते देखकर साल भर की मौन तोड़ते हुए कहा—"आओ अनोपा!"

ठाकुर अपने लिए "अनोपा" जैसा छोटा शब्द सुनकर भी दु:खी न हुआ। वह श्रद्धालु था अतः उसने विनम्र शब्दों में कहा-"हाँ, महाराज आया।"

तपोजी ने कहा—"तुम हासिल लेने की विशेष लालसा रखते हो, किन्तु सिद्ध-सम्प्रदाय में लोगों के दीक्षित होने पर तुम्हारी यह लालसा क्षीण हो जायेगी। मेरे घरवालों ने तुम्हें जिस कार्य के लिए भेजा है उसका तुम्हें पूर्ण ज्ञान नहीं है, अतः इस सम्बन्ध में मेरी स्त्री से पूछ ताछ करो कि मैंने साल भर में घरवालों का कितना अन्न खाया है?"

ठाकुर के पूछने पर तपोजी की स्त्री ने उपस्थित जन-समुदाय के सामने ही कहा—"मैं इनके लिए प्रतिदिन दो रोटियाँ लाया करती थी, परन्तु ये सिर्फ एक ही रोटी रखते और दूसरी रोटी लौटा देते थे।"

तपोजी रोटी तो ले लेते थे, पर खाते नहीं थे। वे उस रोटी को 'ओवरी' में डाल देते थे। उन्होंने वे समस्त रोटियाँ 'ओवरी' में से निकाल कर सबके सामने रख दीं। रोटियाँ गणना के हिसाब से साल भर की पूरी निकलीं। इस दिन के बाद तपोजी ने घर छोड़कर बाहर जाने का निश्चय कर लिया। पर ठाकुर के विशेष अनुनय विनय करने पर वे चाऊ में ही रहने लगे और ठाकुर के विशेष आग्रह पर दूध पीना स्वीकार कर लिया। तपोजी के दूध पीने का लोटा अब भी उनकी बाड़ी के मन्दिर में रखा है।

तपोजी २४ वर्ष तक अपनी बाड़ी में तप करते रहे। वहाँ प्रतिदिन गंगाजी प्रकट होती और तपोजी उसमें स्नान करते। इसके चिन्ह अब भी वहाँ

देखे जा सकते है। तपोजी के जीवन काल मे १२ शिष्य हुए थे।

(१) मोटोजी— इन्होंने मॉजरे की बाड़ी मे जीवित समाधि ली थी। कहा जाता है कि इनकी स्त्री ने भी यहॉ जीवित समाधि ली थी।

(२) हरिदास(नाथ) जाखड़—इन्होंने तपोजी की बाड़ी में समाधि ली थी।

(३) जेसोजी मुण्डड़—ये भी तपोजी की बाड़ी मे ही समाधिस्थ हुए।

(४) परवतजी—इन्होंने चित्ताणें गॉव में जीवित समाधि ली। चित्ताणे में इनकी बाड़ी की बड़ी भारी मान्यता है।

(५) बरसलजी तरड़— इन्होंने साधासर गॉव मे समाधि ली थी।

(६) जालमजी— इन्होंने मेवासा (मारवाड़) मे जीवित समाधि ली। इनकी कुछ फुटकर रचनाए भी उपलब्ध होती हैं। इनकी समाधि मेवासा की पहाड़ी पर है, वहॉ एक गुफा तथा बुर्ज बनी हुई है।[1]

(७) टेम ब्राह्मण—ये पारीक ब्राह्मण थे। यह अपनी स्त्री सहित दण्डवत करता हुआ द्वारिका स्नान के लिए जा रहा था। रास्ते मे तपोजी से भेंट हो गई। उन्होंने इनको अपनी बाड़ी में ही गगा दर्शन करवा दिया, जिससे प्रभावित होकर ये वहीं तप करने लगे। इनकी स्त्री भी इनके साथ ही रही। इन्होंने वहीं जीवित समाधि ली।

(८) टेम ब्राह्मण की स्त्री—इस सती महिला ने भी अपने पति की भांति ही जीवित समाधि ली। अब भी इन पति-पत्नी के पवित्र समाधिस्थल पर तपोजी की बाड़ी में ओटिये (चबूतरे) बने हुए है।

(९) जीवणीजी— इनकी जीवित समाधि बीकूसरा मे है।

(१०) नारायणजी दुसाव—इनकी जीवित समाधि बेरासर ग्राम में है।

(११) सतीदान— इनके विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है।

(१२) दम्मोजी— इनकी समाधि भी साधासर ग्राम में है।

सम्भव है इनके अतिरिक्त भी तपोजी के अनेकों शिष्य हुए होंगे पर हमें अब तक इतने ही नाम प्राप्त हुए हैं।

---

(१) इस स्थान पर अब अन्य मतावलम्बी लोग रहते है।

अणदल सती— ये तपोजी की सती स्त्री थी। इन्होंने भी अनेक तपस्याये की थीं। ये योग्य पति की योग्य पत्नी थीं। इन्होंने अपने पति के सम्मुख ही वि० सं० १७०० की जेठ वदी द्वितीया को जीवित समाधि ली थी। सती अणदल की समाधि पर इनके पगलिये (चरण-पादुका) हैं. जिन पर समाधि का उपर्युक्त समय लिखा हुआ है। अणदल सती ने जीवित समाधि लेते समय अपने आनन्दोद्गार इस प्रकार प्रकट किये थे—

तपोजी तखत विराजिया, अणदल ऊभा आय।
मैं'र करी मन सुद्ध हुवो, कमी न राखी काय।
छोटा स्यूँ मोटा किया, असत्याँ सत दरसाय।
चम्पा नगरी चौवटै, मेळा थरप्या आय।
जाती आवैं जुगत सूँ, ईसर रै अरथाय।
अन आरोगै ओगरो, मगल गावै नार।
संख पँचायण बाजसी, झालर रै झणकार।
नाचैं बाँचैं गुण कथैं, दरसण आया दाय।
सिद्ध स्यामी सेवक घणाँ, जुग्मैं जोत जगाय।
होम हुवैं हरख्या फिरैं, सोरभ सुरगाँ जाय।
गादी गोरख माळियें, बैठ्या सिद्ध सुवाय।
साहू सुरपत सारदा, गोराँ गंग सिहाय।
इमरत, मेवा, दूध. घी, ताँबा, रूपा राय।
भण्डारैं भरती हुवैं, तूटा तिरभण राय।
सेवग सारैं बीनवी, साम्भळज्यो रुघराय।
चाऊ माहीं चायबो, राखो सदा सहाय।

अणदल सती के समाधि लेने के १५ दिन पश्चात ही सिद्ध तपोजी ने वि० सं० १७०० जेठ सुदी ३ को अपने तप स्थान पर जीवित समाधि ले ली।

तपोजी की बाडी में पाँच जीवित समाधियाँ हैं।

तपोजी के चमत्कार पूर्ण अनेकों कथानक जसनाथ-सम्प्रदाय में प्रचलित हैं। कहा जाता है कि तपोजी ने एकबार अपने माता पिता तथा सौ

को बाड़ी में ही अपने योगबल से गंगा स्नान-करवाया था। तपोजी के बारे में यशोनाथ पुराण में लिखा है—

तपोजी ईसराम सुभागी, जामैं जोत गुरु की जागी।
कर तपस्या तपनाथ कहाया, चाऊ नगर के वास बसाया ॥
धिन जोगी धिन भाग सवाई, तपानाथ पर गंगा आई।
नित्य नित्य ही न्हावन होई, मात पिता मुक्ति कर जोई ॥

× × ×

कभी अकाल पड़ने पर चाऊ के भोगताओं ने तपोजी से निवेदन किया कि, महाराज! भयंकर अकाल के कारण हम इतने निर्धन होगये हैं कि सरकारी रेख (राजस्व) तक नहीं दे सकते।"

तब तपोजी ने उनसे कहा—"अमुक स्थान पर खेजड़ी के नीचे द्रव्य से लदा हुआ ऊँट खड़ा है, जाओ ले आओ, पर ध्यान रखना गाँव की रकम वसूल होने पर उसे उसी स्थान पर वैसे ही छोड़ देना होगा।"

भोगते जाकर धन से लदा हुआ ऊँट ले आये पर दूसरे वर्ष सुभिक्ष होने पर भी लोभ के वशीभूत उन्होंने वैसा नहीं किया। कहते हैं कि— जब वह ऊँट कतार के साथ बून्दी गया तो दरवाजे के बाहर ही कतार से अचानक गायब होगया।

मूमोजी और तपोजी की बाड़ी में हुई जीवित समाधियों के अतिरिक्त ग्राम से दक्षिण की ओर भोळोजी नाम के सिद्ध की एक और समाधि है। ये मूमोजी के भानजे थे। इनका समाधि स्थल भोळोजी की बाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है।

साधासर[1]—

साधासर का स्थान "सत का खेड़ा" कहलाता है। जसनाथ-सम्प्रदाय में साधासर को बहुत महत्व दिया गया है। इसके विषय में कहा जाता है—

"साधासर है सत रो खेड़ो, दियो जती जी मान"

---

(१) यह ग्राम बीकानेर-दिल्ली-रेल्वे लाइन की मूड़सर स्टेशन से दक्षिण में लगभग आठ-नौ कोस की दूरी पर स्थित है।

...नाथजी की वाड़ी की स्थापना के विषय में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता है। वरसलजी या दमोजी, इन दोनों में से किसी एक ने या दोनों ने संयुक्त रूप से वाड़ी की स्थापना की थी। यहाँ छे जीवित समाधियाँ हैं— जिनके विषय में पूर्ण जानकारी प्रयत्न करने पर भी उपलब्ध नहीं हो सकी है।

(१) वरसलजी—चाऊ प्रसंग मे यह लिखा जा चुका है कि सिद्ध तपोजी के बारह शिष्य थे, जिनमें वरसलजी भी एक थे।

(२) दमोजी- साधासर के सिद्धों की मान्यतानुसार दमोजी 'जालवाली' एल[1] की ओर से तपोजी के शिष्य थे।

(३) माननाथजी
(४) अमीनाथजी } इनके विषय मे विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हुई।

(५) गोविन्दजी— ये तपस्वी सिद्ध थे। कहते है इन्होंने अपने हाथ से साधासर में झड़बेरी की एक टहनी लगाई थी, जो हरी भरी होगई थी। गोविन्दजी ने इसी झाड़ी के नीचे तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी।

(६) अचेरी सती— पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं हो सका है।

खैराठ[2]—

खैराठ की वाड़ी की स्थापना साजननाथजी ने की थी। यह स्थापना किस सम्वत् मे हुई इस विषय में इतिहास मौन है, पर साजननाथजी का जीवन वृत्त अब भी सिद्ध परम्परा मे अक्षुण्ण है। खैराठ में चार जीवित समाधियाँ है:—

(१) साजननाथजी—ये महापुरुष गोदारा वंश में उत्पन्न हुए थे। मंडा[3] ग्राम के निवासी थे। इन्होंने चाऊ के मूमोजी का शिष्यत्व अंगीकार किया था। इन्होंने मगड़ा के आसपास की 'गूँछळ्या की झाड़ी'[4] नामक अरण्य में तपस्या

---

(१) फळसोवाली एल में चेतनाथजी ने कतरियासर में भगवाँ लेकर सिद्ध सम्प्रदाय में प्रवेश किया था।

(२) यह ग्राम चाऊ से दक्षिण में पाँच कोस दक्षिण की ओर तथा नागोर से पूर्व की ओर नौ कोस की दूरी पर स्थित है।

(३) यह ग्राम अब उजड़ चुका।

(४) वि० सं० १७४० के आसपास गूंछळ्या की झाड़ी नामक यह एक निर्जन अरण्य था।

की। अब उसी स्थान पर सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की बाडी है और वही खैराठ गाँव बसा हुआ है। योग दीक्षा से पूर्व ही ये मनोहरजी नामक एक लडके के पिता भी बन चुके थे। इनके सिद्ध पुरुष होने की चर्चा शीघ्र ही चारों ओर फैल गई थी। फलत वि० स० १७६३ आश्विन मास में स्वय जोधपुराधीश अजीतसिंहजी ने कर्णोत दुर्गादास तथा खीची मुकुन्ददास के साथ यहाँ पधार कर इनके दर्शन किये। महाराज अजीतसिंहजी के सेवा-भाव से प्रसन्न होकर इन्होंने पुन जोधपुर राज्य की प्राप्ति का वरदान दिया था। सिद्ध वचनानुसार जब औरगजेब बादशाह मर गया तो जोधपुर नरेश अजीतसिंहजी ने जोधपुर राज्य को अपने अधीन कर लिया। राज्य प्राप्ति के बाद महाराजा ने साजननाथजी तथा उनके पुत्र मनोहरनाथजी को जोधपुर पधारने का निमन्त्रण भेजा। बुलाने के लिए ठाकुर दुर्गादास और खाटू ठाकुर महासिंह आये थे। साजननाथजी ने अपना समाधि का समय सन्निकट जानकर जोधपुर जाने मे अनिच्छा प्रकट की और उन्हीं ठाकुरों की साक्षी में वि० स० १७६३ मार्गशीर्ष सप्तमी को जीवित समाधि ले ली।

(२) मनोहरनाथजी— ऊपर बताया जा चुका है कि ये साजननाथजी के सुपुत्र थे और बाद में इन्हीं के शिष्य हो गये।

अपने पिता द्वारा जीवित समाधि ले लेने पर मनोहरनाथजी दुर्गादास और महासिंह के साथ जोधपुर गये। महाराजा उनके दर्शन करके कृतार्थ हुए। राजा ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मनोहरनाथजी को गाँव प्रदान करना चाहा पर निर्लोभी सिद्ध ने स्वीकार नहीं किया। महाराजा के जसनाथजी की बाडी के लिए ही २५ बीघा धरती तथा "इलवा"[1] जमीन आसन के पीछे

(१) इस जमीन का का ताम्रपत्र स्थानीय सिद्ध दुर्गानाथ के पास है, जिसकी प्रतिलिपि इस प्रकार है —

सवासू महाराजाधिराज महाराजाजी श्री अजीतसिघजी महाराजकुमार श्री अभैसिघजी वचनायतु तथा साजनरो चेलो मनोहरनाथ गाँव खेरवाड (खैराठ) मेंडारावास मे छै सू जमी हलवा २ दोय श्रीदरबार सू मनोहरनाथ नै श्री जी इनायत भेंट चढाई सू खडसी नै खावसी श्री दरबार नै दवा देसी हुकम छै स० १७९२ भादवा वद ७ मु० परगना मेडता हुवा श्री मुख परवानगो रा महासिंह भगवानदासात।

ताम्रपत्र और सिद्धो के समय मे साम्य नही है, सम्भवत उपर्युक्त ताम्रपत्र जमीन भेंट करने के बाद किसी विशेष परिस्थिति मे बना हो।

अवश्य देने के विशेष आग्रह को सिद्ध मनोहरनाथजी न टाल सके। महाराजा ने पानी के लिए एक बड़ा कुण्ड भी राज्य की ओर से बनवा दिया, जिस कुण्ड की वि० सं० १७६५ में प्रतिष्ठा हुई। प्रतिष्ठा-समारोह पर मनोहरनाथजी को राजकीय सम्मान के रूप में नगारों की 'जोडी' चाँदी की बनी हुई छड़ी और चान्दी की 'गूर्ज' भेंट की गई थी।

इनके समाधिकाल का विवरण अज्ञात ही है।

(३) सती सूरताजी मंडो—ये सती सिद्ध साजननाथजी की धर्मपत्नी थी। इनके समाधिस्थ होने की तिथि तो ज्ञात नहीं, पर इन्होंने अपने पुत्र मनोहरनाथजी के साथ सत चढने पर जीवित समाधि ली थी।

(४) विल्होजी—ये श्रीजसनाथजी की बाड़ी के पोळिया (द्वारपाल) थे। दैविक प्रेरणा से इन्होंने भी जीवित समाधि ली थी, पर तिथि अब तक अज्ञात है।

खैराठ की जसनाथजी की बाड़ी में उक्त सिद्ध पुरुषों की जीवित समाधियों पर सुन्दर मन्दिर बने हुए हैं, जिनकी दोनों समय विधिवत् आरति पूजा होती है। बाड़ी में पक्षियों के लिए गाँव के लोगों की ओर से चुग्गा-पानी की समुचित व्यवस्था है।

चित्ताणा[1]—

यहाँ तीन जीवित समाधियाँ हैं:—

(१) परबतजी—ये तपोजी (चाऊ) के शिष्य थे। इन्होंने इस ग्राम में आकर महान तपःसाधना की एवं लोगों को धर्मोपदेश दिये।

(२) तारा सती—इनका परिचय अज्ञात है।

(३) खींयोंजी—ये बड़े सिद्ध पुरुष थे। इनका समाधिस्थल गाँव से पूर्वोत्तर चार कोस की दूरी पर स्थित है, जो खींयोंजी की बाड़ी के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्थान के समीप एक मीठे जल का कुँआ बना हुआ है। खींयोंजी का स्मृति-दिवस प्रतिमास शुक्ला द्वितीया को मनाया जाता है। इस दिन समीपवर्ती क्षेत्रों की जनता इनके समाधिस्थल पर एकत्रित होकर हवन

(१) यह ग्राम मालजी की बाड़ी से छः कोस पश्चिम की ओर है।

मालासर[1]—

जसनाथ-सम्प्रदाय में "मालासर" टोडरजी एवं सती प्यारलदे का बड़ा धाम माना गया है। यहाँ छै जीवित समाधियाँ हैं:—

(१) टोडरजी — ये अति वयोवृद्ध महापुरुष थे और मालासर में चालीस वर्ष से तप कर रहे थे। ये सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के पूर्ण अनुयायी थे। ये रूणिया ग्राम-वासी गोदारा शाखा के जाट थे और सिद्धाचार्य के प्रादुर्भूत होने के पूर्व ही मालासर में तप किया करते थे। सिद्धाचार्य की कृपा से ही इनको अपार सिद्धि-सामर्थ्य प्राप्त हुआ। सिद्ध-सम्प्रदाय में इनके विषय में अनेक कथानक प्रचलित हैं.—

एक समय टोडरजी पंजाब की ओर अन्न की कतार (कारवाँ) लाने के लिए गये। अनेकों कतारियों सहित टोडरजी जब अन्न की छाँटियों से लदे हुए ऊँटों के साथ वापिस आ रहे थे तब निर्जन बीहड़ के लम्बे मार्ग को पार करते हुए साथ के कतारियों को बड़े जोर की प्यास लगी। उस समय टोडरजी ने दिशा-निर्देश करते हुए कतारियों को बताया कि अमुक स्थान पर तालाब है, जिसमें जल है। उनमें से एक व्यक्ति पानी देखने गया और उसने आकर बताया कि 'वहाँ तो केवल एक घड़ा पानी है।'

टोडरजी ने कहा— 'आप चिन्ता न करें, पहले सब अपनी अपनी

(१) यह ग्राम पुण्यभूमि कतरियासर से लगभग दो कोस के फासले पर पश्चिम की ओर तथा बीकानेर-भटिण्डा रेलवे लाइन की जामसर स्टेशन से चार कोस पूर्व की ओर स्थित है। ग्राम के सब लोग जसनाथ-सम्प्रदायावलम्बी हैं, इसी लिए मृतक को अब तक समाधि देने की प्रथा का पालन करते हैं।

यहाँ की बाड़ी बड़ी ही सुन्दर है, जिसमें परिक्रमाबद्ध मन्दिर है। बाड़ी में मीठे जाल के अनेकों पेड़ हैं। मन्दिर में दोनों समय हवन होता है तथा बाड़ी के पक्षियों के लिए चुग्गे की पर्याप्त व्यवस्था है— इसके विषय में बाड़ी के सेवकों की ओर से जो भी स्तुत्य प्रयत्न किया गया है, वह दर्शकों के लिए आह्लादकारी है। प्रदेश के अन्य जसनाथी धामों की भांति यहाँ पर भी निश्चित समारोहों और पर्वों पर 'जागरणादि' शुभ कार्य सम्पन्न होते रहते हैं जिनमें बाड़ी के सेवक भी सम्मिलित होते हैं।

दीवडी (मसक) भर लो। फिर एक एक कर ऊँटों को पिला लो, तब तक पानी समाप्त नहीं होगा।"

टोडरजी की कृपा से तृषित कतारियों ने ऊँटों सहित अपनी प्यास बुझाई।

उसी समय कतारियों ने टोडरजी के सामने रोटी बनाने के लिए अग्नि का अभाव प्रकट किया, जिस पर परम सिद्ध टोडरजी ने सिद्धि के प्रभाव से वहाँ तुरन्त अग्नि पैदा करदी। सबने रोटी बनाकर अपनी क्षुधा शान्त की।

जब कतार वहाँ से चलने को उद्यत हुई तब सबने यह निश्चय किया कि "टोडरजी को ऊँट लदाने में सहयोग नहीं देना है, देखें! तब ये क्या उपाय करते हैं।" ऐसा निश्चय कर साथ के सब लोग परस्पर के सहयोग से अपनी अपनी कतार लाद कर चल पड़े।

टोडरजी ने ईश्वर-सत्ता के सहयोग से अपनी 'छाटी' लादकर साथी कतारियों से एक दिन पूर्व ही अपने स्थान पर आ गये। ऐसी चमत्कृतियों के बाद लोग उन्हें सिद्धपुरुष मानने लग गये।

टोडरजी की समाधि[1] के बारे में सबका एक निश्चित मत नहीं है। मालासर के सिद्धों के कथनानुर टोडरजी ने प्यारलदे सती के कतरियासर से यहाँ पहुँचने के दिन ही वि० स० १५६३ आश्विन शुक्ला नवमी को समाधि ली थी। सम्प्रदाय के अन्य वयोवृद्ध पुरुषों एवं पाँचला के सिद्ध के मत से प्यारलदे सती ने टोडरजी की कुछ काल तक सेवा की और तत्पश्चात् ही उन्होंने जीवित समाधि ली थी। सतीजी के अनुज बोयतजी ने इन्हीं (टोडरजी) से गुरु दीक्षा प्राप्त की थी।

(७) सती प्यारलदे—यह पूर्व अध्याय में बताया जा चुका है कि सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने समाधि लेते समय प्यारल सती को टोडरजी के पास मालासर आने की आज्ञा दी थी। सिद्धाचार्य की आज्ञानुसार सती प्यारलदे अपने भाई बोयतजी एवं समस्त बेनीवाल परिवार सहित वि० स० १५६३ आश्विन शुक्ला नवमी को कतरियासर से प्रस्थान कर मालासर आ गई थीं,

---

(१) मालासर में टोडरजी तथा सती प्यारलदे की समाधि पर स्थित सभा मन्दिर के द्वार पर एक शिलालेख है पर, जानबूझ कर किसी के द्वारा उसके अक्षरों को मिटाने के प्रयत्न से अस्पष्ट किया गया है।

इसलिए इनकी तिथि नवमी ही मानी जाती है।

सती प्यारलदे के पास उनके अनुज बोयतजी और सारा बेनीवाल परिवार दो साल तक मालासर में ही टिके रहे। तदन्तर सती प्यारलदे ने बोयतजी के सान्निध्य में बेनीवाल परिवार को मालासर से दक्षिण की ओर प्रस्थान की आज्ञा दी और कहा—"जिस जगह तुम्हारे बैलों का जूआ अपने आप नीचे गिर जाय, वहाँ तुम्हें कूआँ (सुघड़ लाळ का) मिलेगा। कूएं पर एक शिला होगी। उसे अलग कर देना। वही स्थान तुम्हारे निवास के लिए उपयोगी है।"

सती प्यारलदे ने मालासर में बारह वर्ष तक तप-साधना की। सती के पास दुधारू गायों के बड़े बड़े वाग (गोधन समूह) थे। वे गो-घृत को हवन कार्य में व्यवहृत¹ करती थीं।

एक बार बीकानेर राज्याधिकारियों ने सती प्यारलदे से 'भूँगा' मांगने के लिए उनके पास एक सवार को भेजा, पर उन्होंने सवार को 'भूँगा' देने से साफ इन्कार कर दिया। इस पर सवार ने सती को अपने साथ बीकानेर चलने को कहा। प्रत्युत्तर में सती ने सवार से कहा कि "तू चल मैं स्वयं बीकानेर आ जाऊँगी।" किन्तु राज्य-मदोन्मत्त सवार ने फिर भी सती को अपने साथ ही बीकानेर चलने को बाध्य किया।

सतीजी ने पुनः कहा—"भाई, तुम चलो मैं नित्य कर्म से निवृत हो कर तुम्हारे साथ रास्ते में हो लूंगी।"

ऐसा सुनकर सवार ने सोचा, अब तो मैं शीघ्र ही द्रुत गति से बीका

---

(१) आज से [illegible] वर्ष पूर्व मालासर की जाटी के पास एक कुमटा (खदिर वृक्ष) था, उसके पेट में मथनी की रस्सियों के निशान थे। कहते हैं सती प्यारलदे उन वृक्षों को [illegible] बनाकर घृत मथती थीं।

आज से लगभग १०० वर्ष पूर्व देवायन नामक [illegible] की एक [illegible] की [illegible] (मथनी), लोहे का हार (जो आशीर्वादात्मक मुद्रा में निर्मित है) और दो [illegible] ([illegible]) जिन्हें ये सब वस्तुएँ मालासर के मन्दिर में सुरक्षित रखी हुई हैं। उनमें से गहरे निशान पड़े हुए हैं, जिससे स्पष्ट है कि इनका [illegible] मथने के उपयोग में लिया गया है। [illegible]

नेर पहुँच कर सती की इस राजाज्ञा की अवहेलना की बात महाराजा के समक्ष कह दूँगा और वह अपने वाहन को सरपट दौड़ा ले चला। पर सती प्यारलदे ने सवार को बीकानेर से दो कोस इधर ही जा पकड़ा और कहा—"अरे भाई, अभी यहीं रेंग रहे हो ?" बिना वाहन के ही सती का यह कार्य देखकर सवार को बडा आश्चर्य हुआ।

बीकानेर मे राजा के सामने सती प्यारलदे ने उपस्थित होकर राजा से कहा – "राज्य के 'भूँगा' के पेटे मेरी तरफ जितनी रकम बकाया है उसे कपडा लेकर पूरा करना चाहो तो करलो। नकद पैसे तो मेरे पास नहीं हैं।"

राजा ने कहा—"तुम्हारे पास कपडा कहाँ है ? जिसको देकर 'भूँगा' के पैसे राज्य को अदा करोगी।"

वहाँ राजा के समक्ष सती प्यारलदे ने अपने सिद्धियोग से एक हाथ अपने सिर तथा दूसरा अपनी छाती मे स्पर्श कर ऐसा चमत्कार प्रकट किया कि एक तरफ सिर से उतार २ कर ओढनी (पॅवरी) तथा दूसरी ओर कचुकियों के ढेर लगा दिये और राजा से इन वस्त्रों को लेकर अपना 'भूँगा' भर लेने को कहा।

राजा को पहले यह ज्ञान नहीं था कि सती प्यारलदे साक्षात योगमाया का प्रकट रूप हैं अन्यथा राजा सती के सामने इतनी बडी धृष्टता करने की भूल ही न करता। राजा ने सती के समक्ष करबद्ध प्रार्थना की —"मातेश्वरी, आप अपनी माया को समेटिये।"

सती ने कहा—' राजा, जितने वस्त्र लेकर तुम्हारा 'भूँगा' पूरा होता हो, ले लो। अतिरिक्त वस्त्र मे वापिस ले.जाऊँगी।

राजा ने चरण स्पर्श कर सती से क्षमा याचना की।

ऐसी चमत्कृति प्रकट कर सती प्यारलदे अपने स्थान लौट आई।

कुछ समय बाद रूणिया (भोजेरावास) के ग्रामवासी डालमजी ने सती प्यारलदे मे अपना शिष्य बना लेने की प्रार्थना की। इस पर सतीजी ने डालमजी को आज्ञा दी कि वे बायतजी से उनके स्थान पर जाकर योग वेश ले ले।

, बोयतजी से वेश प्राप्त कर जब डालमजी पाँचला से लौटकर माला-सर आये तब तक सती प्यारलदे ने जीवित समाधि लेली थी।

सती प्यारलदे ने जीवित समाधि लेने से पूर्व अपने अधिकृत गोधन को अपने साथ आये हुए कुलगुरु देवपाल पाण्डिया व उनकी सन्तान जशपाल पाण्डिया को दान में दे दी थी।

सती प्यारलदे के समाधि लेने की तिथि के बारे में अब तक इतिहास मौन है। केवल आगमन तिथि ही उनकी स्मृति तिथि मानी जाती है।

(३) डालमजी— ये रूणिया ग्राम के भोजेरावास के निवासी थे और गोदारा वंश में उत्पन्न हुए थे। ये बोयतजी के शिष्य थे। कहते हैं जब इन्होंने बोयतजी से शिष्य बना लेने का निवेदन किया, तब बोयतजी ने इनसे कहा— "मैं तो साधारण व्यक्ति हूँ, मुझ से तो श्रीदेव जसनाथजी का ध्यान मात्र ही बन पड़ता है।"

डालमजी ने कहा —"आप केवल भगवाँ दे दें। मुझ पर सती प्यारलदे की पूर्ण अनुकम्पा है। मैं उन्हीं की आज्ञा से आपके पास आया हूँ।"

बोयतजी ने डालमजी को भगवाँ देकर सिद्ध-सम्प्रदाय में दीक्षित कर लिया।

कहा जाता है कि—इन्होंने यहाँ चौरासी वर्ष तक तप किया। पहले 'चरस' का पानी पीने का इनका नियम था। इससे पूर्व मालासर ग्राम के लोग जसनाथी नहीं थे। अतः लोगों ने कौतूहल वश एक बार मिराशी से कूँआ जुतवा दिया, जब डालमजी का शिष्य कूएं से पानी लाने गया तब लोगों ने दूर से ही इन्हें आते देख कर कहा— "डालमजी वाला 'गोधा' (साँड) आता है।"

डालमजी के शिष्य ने कूएं की 'चाठ' में मिराशी को देखा और अपने प्रति उपहास पूर्ण कटु वाक्य भी सुने, उसने वापिस आकर सारा हाल अपने मुँह से कह सुनाया।

डालमजी ने कहा—"कूएं पर उपस्थित लोगों को सावधान करदो और तुम गौ पुत्र साँड की तरह भूमि कुरेदना (खेरू करना) जिससे कूआँ जमीन में

धँस जायेगा।"

शिष्य ने ऐसा ही किया और सचमुच कूँआ जमीन में धस गया।

डालमजी मालासर के लोगों की दुर्भावना में खिन्न होकर पाँचला[1] चले गये। उनकी माता 'करमा' भी सदैव उनके साथ ही रही।

डालमजी पूर्ण गौ भक्त थे, क्योंकि उन्हें हवन के लिए गौ-घृत की आवश्यकता पडती थी। कहते हैं डालमजी पहले पाँच सेर 'चूरमा' का भोजन करते थे, पर बाद में दूध पीकर ही रहने लग गये थे। एक बार माता 'करमा' डालमजी को दूध पिला रही थी। डालमजी ने अपनी माता से विनोदपूर्ण शब्दों में कहा—' माता, अब मुझे दूध मत पिलाओ, क्योंकि एक दिन तुम्हें दूध बहुत प्यारा लगेगा।"[2]

माता ने कहा—"डालम, तेरे से अधिक प्यारा दूध कभी नहीं हो सकता।"

डालमजी ने रहस्यमय ढग से पुन माता से कहा—"माता, एक दिन ऐसा होगा कि तू मुझे दूध पिलाने से इन्कार हो जायेगी।"

माता ने डालमजी को वात्सल्यपूर्ण आश्वासन दिया, पर उस दिन के बाद उन्होंने दूध पान का परित्याग ही कर दिया।

डालमजी ने पाँचला के सेवकों के सामने इच्छा प्रकट की कि ' मैं भाद्र कृष्णा अष्टमी को मालासर की बाडी में समाधिस्थ होना चाहता हूँ "

सेवकों ने कहा—' हम आपको अपने कन्धों पर बैठाकर मालासर पहुँचा देंगे।"

डालमजी ने कहा—' वहाँ पहुँचना जरा कठिन होगा, क्योंकि समाधि काल बहुत निकट है।"

लेकिन उत्साही सेवकों ने अपने गुरु की इच्छापूर्ति के लिए मालासर लेजाने का निश्चय नहीं बदला। भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को उन्हें अपने कन्धों

---

(१) इसग्राम का प्रसग यथास्थान आगे दिया गया है।

(२) कहा जाता है कि डालमजी का यह संकेत दूदोजी की ओर था क्योंकि माता यह समझने में असमर्थ थी कि दूदोजी डालमजी के ही प्रकारान्तर रूप है।

पर बैठाकर रवाना हुए। मुश्किल से एक कोस ही चल पाये थे कि रात हो गई और लोग ऊँघने लगे। सन्त हृदय डालमजी से अनुमति लेकर वे वहीं सो गये।

आचीणा ग्राम के एक डोगीवाल जाट ने जो आसपास ही अपना रेवड़ चरा रहा था, यह सुना कि डालमजी महाराज समाधिस्थ होने के लिए मालासर जा रहे हैं, तो उसने सोचा कि चलकर दर्शन करना चाहिए। वह अपने भानजे दूदोजी को एवड की रखवाली का भार सौंपकर डालमजी के दर्शनार्थ वहाँ आया और दर्शनोपरान्त उसे भी वहीं नींद आ गई। दूदोजी की इच्छा भी महाराज के दर्शन करने की हुई। वह भी अपने मामा के पीछे गुप्त रूप से चल पड़ा और झुरमुट में छिपकर बैठ गया। उसने सोचा, जब मामा उठेगा तब मैं भी छिपकर अपने एवड़ के पास चला जाऊँगा।

रात्रि में डालमजी ने 'सूत्या हो'क जागो हो !' (अर्थात् सो रहे हो या जाग रहे हो) की तीन बार आवाज दी। छिपे हुए दूदोजी प्रत्युत्तर में कहते रहे, 'हाँ महाराज, जागता हूँ।' चौथी आवाज डालमजी ने प्रातःकाल होने के साथ दी, और सबने एक साथ जगकर कहा—'हाँ महाराज जागते हैं।' तब डालमजी बोले—'जागण हाळो जागियो'र जाग्यो जाट अलाऊ', अर्थात् जो जागृत होनेवाला था, हो चुका है, चाहे हमारा लक्ष्य उसे जागृत करने का न था, पर भाग्योदय को कौन रोक सकता है।

दूदोजी को वैराग्य हो गया, उन्होंने वहीं डालमजी से दीक्षा ले ली। डालमजी ने उन्हें आज्ञा दी कि तुम पाँचला जाकर माता 'करमा' तथा बोयनजी की समाधि की सेवा करना। तुम्हें इष्ट की प्राप्ति होगी। डालमजी अपने योगबल से मालासर पहुँच गये और पूर्व निश्चयानुसार भाद्रपद कृष्णा अष्टमी को समाधिस्थ हो गये।

डालमजी के समाधिस्थ होने का सम्वत अभी तक अज्ञात है।

(४) पर्सीनाथजी—ये मालासर की बाड़ी के परम तपस्वी सिद्ध हुए हैं। उस समय बाड़ी में एक 'माळिया' था। पर्सीनाथजी उसी में अपनी साधना करते थे। उनके चढ़ने की घोड़ी तथा गाय बाड़ी में ही रहती थी और स्वच्छन्दता पूर्वक जंगल में चरा करती थी।

एक दिन एक सरकारी सिपाही घोडी तथा गाय के जंगल में चरने का 'भूँगा' माँगने के लिए अमीनाथजी के पास बाड़ी में आया, उसने हाथ में हुक्का लिए, जूता पहिने और घोड़ी पर चढ़े हुए ही बाडी में प्रवेश किया। अमीनाथजी ने इस दशा में दूर से ही उसके इस असभ्यतापूर्ण ढंग व बाड़ी के नियम विरोधी प्रवेश को रोकना चाहा, पर सिपाही बाड़ी की ओर बढता ही आया।

जब अमीनाथजी के रोकने पर भी सिपाही न माना और बाड़ी में घुसता आया वैसे ही अमीनाथजी भी जमीन में धँसते गये। गर्दन तक धस गये तब सिपाही ने कहा— मैं ऐसी नट-विद्या से घबराने वाला नहीं, यदि तुम सिद्ध हो तो कोई विशेष चमत्कार दिखाकर परिचय दो।"

अमीनाथजी ने सिपाही से कहा—' परचा माँगना तुम्हारे हित में ठीक न होगा।"

लेकिन सिपाही ने अपनी जिद न छोड़ी, इस पर अमीनाथजी ने सिपाही से पुन कहा—"परचा तू तेरे पर माँगना चाहता है या राज्य पर।"

सिपाही ने कहा—"यदि तुम समर्थ हो तो मेरा ही अनिष्ट करो।"

अमीनाथजी बोले –"तुम्हारी यह घोडी और ऊँट बीकानेर पहुँचने से पूर्व ही मर जायेंगे, घर पहुँचने पर तुम्हें अपने पुत्र की अर्थी सामने मिलेगी और तुम्हारी स्त्री पागल हो जायेगी।" सिपाही को यह कहकर अमीनाथजी पृथ्वी के गर्भ में सदैव के लिए समा गये।

इस घटना तथा समाधिस्थ होने की तिथि-मिति का कोई पता अब तक नहीं चल सका है।

(५) चौधरी केशोजी गोदारा— केशोजी के बारे में ऐसी कथा प्रचलित है कि केशोजी ने जब जीवित समाधि लेने की सोची तब मालासर ग्राम के समस्त लोगों को एकत्र करके कहा— 'जिस किसी को मुझ से परचा—वरदान माँगना हो, समाधि में बैठने से पूर्व ही माँग ले। जब मैं समाधि में बैठ जाऊँ तब कोई कुछ न माँगे।'

कहते हैं आकांक्षी लोगों ने अपने मनवाञ्छित फलों की प्राप्ति के

वरदान माँगे। समाधि में बैठने के पश्चात् लोगों ने राजस्था-नबीकानेर का अमृतफल 'मतीरा' केशोजी को भेट किया. उस समय एक व्यक्ति मजाक में केशोजी से पूछ बैठा—"केशो दादा, थानैं कीं दीसै ही है?" अर्थात् आपको कुछ दिखता भी है?

केशोजी ने कहा—"दीसै है थारी बीस गुवाड़्यॉं की उत जॉती।" अर्थात् तुम्हारे कुल के बीस घरों का अन्त होता हुआ दिखाई दे रहा है।"[1]

केशोजी ने वि० सं० १८८५ में समाधि ली थी।

(६) देवाराम नाई—इनके विषय में कहा जाता है कि इन्होंने मालासर में समाधि लेने के पाँच दिन बाद गंगा स्नान करके आनेवाले मालासर के कुछ लोगों को इन्होंने कतरियासर में सदेह दर्शन दिया एवं अपने हाथ से रोटी बनाकर खिलाई। अन्यान्य कई सिद्धों के समाधिस्थ होने की तिथि जिस प्रकार अज्ञात है, उसी प्रकार इनकी समाधिस्थ होने की तिथि भी अज्ञात है।

पाँचला सिद्धों का[2]—

सती प्यारलदे की आज्ञा से सिद्ध बोयतजी ने यहाँ आकर और सुथड नाल का कूँआ प्राप्त कर इस ग्राम को बसाया था। यहाँ यशोनाथ पुराण के अनुसार ८ आठ जीवित समाधियाँ हैं, पर वर्तमान सिद्ध के कथनानुसार यहाँ केवल तीन जीवित समाधियाँ ही हैं:—

(१) बोयतजी—ये सतीजी (काळलदे तथा प्यारलदे) के छोटे भाई थे। सुना जाता है कि बोयतजी जन्मजात पगु थे, किन्तु जब सतीजी का चूड़ीखेडा से कतरियासर आगमन हुआ. उस समय सतीजी की अनुकम्पा से इनके पैर स्वस्थ हो गये।[3]

---

(१) मालासर के लोगों के कथनानुसार यह समस्त कुल नष्ट होगया है।

(२) यह ग्राम नागौर शहर से जोधपुर जानेवाले मोटर मार्ग (सड़क) की खींवसर स्टेशन से लगभग ४–५ कोस पश्चिम दिशा में स्थित है। मारवाड प्रदेश में पांचला नाम के कई ग्राम हैं; किन्तु इसमें जो सिद्धों का विशेषण लगा है' वह स्पष्ट ही ऐतिहासिक तथ्य प्रगट करता है। अतः इस ग्राम के नाम के साथ भी 'सिद्धों का' नाम जुट गया है।

(३) बोयतजी के विषय में भी किंवदन्ती है कि जब महासती काळलदे तथा

मारवाड में सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के प्रचारक के रूप मे सर्व प्रथम—इन्होंने ही प्रवेश किया था। जसनाथ-सम्प्रदाय मे वोयतजी का बडा सम्मान है, पर खेद का विषय है कि ऐसे आदर्श पुरुष का विशेष रूप से जीवन-वृत्त प्राप्त हुआ नहीं हुआ।

इनकी समाधि के विषय मे केवल इतना ही कहा जाता है कि बोयतजी एक दिन शौच के लिए (जहाँ वर्तमान मे पाँचला का गढ के रूप मे बना हुआ 'आसन' है) आये। साथ मे उनके शिष्य डालमजी भी थे। वहाँ वोयतजी ने बैठे २ बालकों के खिलौने की तरह मिट्टी की समाधि बनाली और सहसा डालमजी से कहा— "मैं तो अभी इसी स्थान पर समाधि लूँगा क्योंकि सकल सृष्टि के प्रेरक गुरुदेव का हुक्म होगया है। अत' तुम परिवार को जाकर सूचित कर आओ।"

इसके पश्चात स्वजनों के समक्ष सिद्ध वोयतजी समाधिस्थ होगये और डालमजी ने अपने गुरु बोयतजी की समाधि के चारोंओर 'वाड-छापली' (बाड़ी बनाली) और वहीं पर बहुत वर्षो तक तपस्या करते रहे। बेनीवाल परिवार भी उन्हीं की समाधि के आसपास आकर बस गया।

(३) दूदोजी— यह पहले बताया जा चुका है कि ये सिद्ध डालजी के शिष्य थे। दैविक सयोग से ही इनको वैराग्य एव ज्ञानोदय हुआ। डामलजी के प्रसंग में इनके इस सम्बन्ध की घटना वताई जा चुकी है। दूदोजी की जन्म भूमि रुनिया (मारवाड) थी। और ये अपनी ननिहाल आचीणा मे रहते थे।

दूदोजी प्रतिभाशाली सिद्ध पुरुष थे। किंवदन्ती है कि स्वय सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी ने पंगु की देह से राक्षस का निष्कासन करते समय इनके विषय मे भविष्यवाणी की थी।[१]

प्यारलदे रथ मे बैठकर कतरियासर आने को उद्यत हुई तब वोयतजी ने भी इनके साथ चलने की इच्छा प्रकट की। कहते है उस समय सतीजी ने इनकी बाँह पकड कर खडा कर दिया तथा अपने साथ रथ में बैठा लिया— तब से इनका पगुपन जाता रहा।

(१) देखिये पगु के प्रसग में।

दूदोजी के सिद्ध पुरुष होने की चर्चा चारो ओर फैली हुई थी। उनके सिद्धियुक्त अनेक चमत्कारो से लोग भलीभाँति परिचित हो चुके थे। दूदोजी के जीवन घटना सम्बन्धी अनेको उपाख्यान जसनाथ सम्प्रदाय मे प्रचलित है।

जोधपुर महाराजा जसवन्तसिंह को वीरमदेव[1] सुरज मलोत (उदयपुर) की पुत्री विवाही हुई थी। एक बार वह अपने पिता के यहाँ उदयपुर गई। वहाँ उसने अपने पिता को सिद्ध दूदोजी के सिद्ध पुरुष होने का परिचय दिया और वीरमदेव ने महाराणा जगतसिंह को इस विषय से अवगत कराया। महाराणा जगतसिंह दीर्घकाल मे अस्वस्थ चले आ रहे थे। अत उन्होने अपने रोग से छुटकारा पाने के लिए उक्त सिद्धजी को उपर्युक्त समझकर अपने विश्वास पात्र आदमियो को उनके पास भेजा।।

दूदोजी ने महाराणा जगतसिंह के लाभार्थ उनको सिद्धाचार्य के 'धुपेड़' की विभूति दे दी। इसके परिणाम स्वरूप महाराणा को तत्काल ही फायदा हो गया।

उस समय के पश्चात महाराणा जगतसिंह ने सिद्ध दूदोजी को उदयपुर बुलाया तथा उनका बड़ा स्वागत सत्कार किया। कहते है महाराणा की पीडा का कारण उनमें भयकर दैत्य का प्रवेश था। उसको सिद्ध दूदोजी अपने योगबल से आबद्ध कर पाँचला ले आये और एक शिला खण्ड के नीचे दबा दिया।

पाँचला के 'आसन' के गढ का निर्माण होने के बाद उस राक्षस को दक्षिणी बुर्ज में 'कील' दिया गया। सिद्ध दूदोजी ने राक्षस से कहा था कि 'तुम्हारी दृष्टि इस शिला[2] मे ही रहनी चाहिए, जिससे राक्षसी योनि की अवधि समाप्त होने पर तुम्हारा कल्याण हो जाये।

महाराणा जगतसिंह को सिद्ध दूदोजी के यौगिक उपचार से स्थायी लाभ हुआ था। अतः उन्होंने सिद्ध दूदोजी के लिए 'पेटिये' बाध दिये थे तथा

---

(१) डा० ओझा, जोधपुर का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० सं० ४६६।

(२) यह शिला अब तक 'आसन' (गढ) के मुख्य द्वार के उत्तर की तरफ गड़ी हुई है। मस्तक पर भगवां चादर ओढ़ कर तथा हाथ मे मयूर-पंख लेकर इस शिला पर बैठकर रोग झाड़ने से रोगी रोग मुक्त हो जाता है।

राजकीय खर्च से जसनाथजी के 'आसन' के चारों ओर गढ़नुमा परकोटा चिनवाया और राजपूत शैली की 'पोळ'[1] बनवाई। उस पर दूदोजी के निवास के लिए अति रमणीय महल भी बनवाया। उसके झरोखों को देखने से, सिद्ध दूदोजी के प्रति महाराणा जगतसिंह ने जो कृतज्ञता प्रकट की है, उसका सजीव चित्र सामने आ जाता है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि महाराणा ने दूदोजी को तीन लाख रुपये भी भेंट में दिये थे।[2] उन रुपयों को सिद्ध दूदोजी ने ब्राह्मणों को बाँट दिया। कुलगुरु देवपाल पाण्ड्या की सन्तान को उन्होंने सोने की मूठ की दो कटारियाँ भी उपहार में दी थीं।

सिद्ध दूदोजी के चार शिष्य हुए—

(१) देवोजी, (२) जोगीनाथजी, (३) कँवरोजी और (४) नाथोजी।

दूदोजी की रचनाओं में 'पै'लाद परवाण' ग्रंथ के अतिरिक्त अनेकों रस-प्लावित स्फुट रचनाएं उपलब्ध होती हैं। जसनाथी साहित्य को समृद्ध बनाने में दूदोजी का योगदान अत्यधिक सराहनीय है।

सिद्ध दूदोजी की चमत्कार पूर्ण अनेकों घटनाएं जसनाथ सम्प्रदाय' में प्रचलित हैं, जिनमें 'साठिका' की देवी के साथ वार्तालाप होना बहुत प्रसिद्ध है।[3]

सिद्ध दूदोजी वि० सं० १७३० आषाढ कृष्णा सप्तमी मंगलवार को पाँचला के आसन में जीवित समाधिस्थ हुए। इससे सम्बन्धित जसनाथ-

---

(१) इस विषय में आसण-कोट की पोळ में दक्षिण की तरफ एक शिला लेख है जिसमें कोट तथा राणा द्वारा कमठाणा (कोट निर्माण) करवाने का विवरण है।

(२) महाराणा जगतसिंह बहुत बड़े दानवीर थे। इस सम्बन्ध में देखिये डा० ओझा द्वारा लिखित राजपूताने का इतिहास दूसरी जिल्द, पृष्ठ ८३६ से ८३८ तक।

(३) सिद्ध दूदोजी के साथ वार्तालाप के लिए 'साठिका' की देवी विमान में बैठ कर रात्रि में यहाँ आया करती थी। महल के नीचे बैठे हुए लोगों को दो भिन्न स्वरों में बातें सुनाई पड़ती थीं। इस रहस्य को जानने के लिए गुप्त रूप से कई बार देखा गया पर महल में सिद्ध दूदोजी के अतिरिक्त दूसरा कोई दिखलाई नहीं पड़ता था। जिज्ञासु शिष्यों के पूछने पर उक्त रहस्य को दूदोजी ने प्रकट भी कर दिया था।

सम्प्रदाय में यह 'सबद' प्रचलित है:—

समां सतरो, बरस'ज तीसो, सात्यूँ मंगळवारी।
बद आसाढी में गुरु म्हारा, कीधी सत् असवारी।
सत री न्याव चली सुरगाँ नै, भळकंते दीदारी।
ग्यान ध्यान सूँ पूरा जोगी, शिव-गोरख औतारी।
सुरग मँडळ दूदोजी बैठा, सत री बात विचारी।
सुरग मँडल रा देई देवता, सभी करै जैकारी।
गुरु सरणैं टीकूँजी बोलै, महर करै गुरु म्हारी।

(३) नाथोजी— इनका जन्म साठिका ग्राम में हुआ। यह ग्राम प्राचीन काल से ही देवी का स्थान होने के कारण मारवाड़ भर में प्रसिद्ध है। नाथोजी के विषय में कहा जाता है कि ये सिद्ध-सम्प्रदाय में दीक्षित होने से पूर्व माताजी (देवी) के भोपा थे और उनकी आराधना में अपनी जिह्वा काटकर देवी के अर्पित किया करते थे।

एक बार भ्रमण करते हुए सिद्ध दूदोजी साठिका पहुँचे। उस समय नाथोजी ने देवी को जिह्वा-खण्ड अर्पण कर रखा था, किन्तु आश्चर्य था कि तीन दिन बीत जाने पर भी उनकी जिह्वा जब पूर्ववत् न हुई तब साठिका ग्राम के लोगों ने यह घटना सिद्ध दूदोजी को निवेदन की। लोगों के कहने पर सिद्ध दूदोजी वहाँ पर गये और उन्होंने कृपापूर्वक नाथोजी की जिह्वा पर अपने हाथ से 'विभूति' लगाई। ऐसा करने पर नाथोजी की जिह्वा पूर्ववत् हो गई। इस चमत्कृति से प्रभावित होकर नाथोजी सिद्ध दूदोजी के शिष्य बन गये।

एक दिन पाँचला के आसन में सिद्ध दूदोजी अपने शिष्यों और सेवकों के बीच बैठे हुए थे। उस समय लोगों ने नाथोजी की ओर संकेत कर पूछा—"सिद्धजी महाराज! चेले के पैर टेढ़े क्यों हैं?"

दूदोजी ने उत्तर दिया—'ठिकाने (उत्तराधिकार) का भार इसी पर है। गुरुतर उत्तरदायित्व के बोझ से ही इनके पैर टेढ़े हो गये हैं।"

कहा जाता है कि दूदोजी की यह घोषणा सुनकर अन्य शिष्यों ने महन्त-पद की आशा छोड़ दी और उन्होंने अपने अलग २ आसन बना लिये।

सिद्ध दूदोजी के समाधिस्थ होने पर नाथोजी ही पाँचला के महन्त-

पद पर आसीन हुए।

सिद्ध नाथोजी ने अपने गुरुस्थान पाँचले के आसन की बहुत उन्नति की। नाथोजी महाराजा अजीतसिंहजी के पूर्ण हितैषी थे और अनेक प्रकार से उनके हित-साधन में सलग्न थे।

जोधपुर में मुसलमानों का अधिकार होने के कारण हिन्दुओ को बडा तग किया जाता था। फलत. अजीतसिंहजी का समर्थक होने के नाते मुसलमानों ने नाथोजी को भी बहुत तग किया। इसलिए वे पॉचले के आसन का भार चौधरी ताजा तथा ब्राह्मण जगमाल पर छोड़कर मालासर (बीकानेर) आकर रहने लगे। लगभग पॉच वर्ष मालासर में रहने के पश्चात् जब वे पुन पॉचला गये तब उस जाट और ब्राह्मण ने नाथोजी को पॉचला का आसन वापस नहीं सोपा, अपितु धक्कम धक्का देकर उन्हे आसन से बाहर निकाल दिया। कहा जाता है कि ऐसा करते समय नाथोजी की चद्दर का एक छोर आसन मे ही किसी वस्तु मे अटक गया और ज्यों ज्यों नाथोजी बाहर आते गये, त्यों त्यों वह चद्दर लम्बी बढती गयी। इस दृश्य को वहाँ उपस्थित भोजा बेनीवाल ने देखा तथा उन दोनों व्यक्तियों को इस घटना से अवगत कराया और कहा— "ये नाथोजी महाराज सिद्ध पुरुष हैं। इनके साथ तुम्हें यह दुर्व्यवहार नही करना चाहिये, इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा।"

पर उन धृष्ट-बुद्धियों पर इस चमत्कारपूर्ण घटना एव भोजा बेनीवाल के शब्दों का कुछ असर न हुआ।

तदनन्तर जोधपुर-बीकानेर की कासीद (डाक) ले जाने वाला एक विश्नोई उधर से आ गुजरा। नाथोजी उसके साथ बीकानेर चले आये। विश्नोई द्वारा नाथोजी के बीकानेर आगमन की सूचना पाकर बीकानेर महाराजा ने उनका समुचित सत्कार किया।

मालासर के सिद्ध के कथनानुसार इस घटना का उल्लेख इस प्रकार है— जब जोधपुर में मुसलमानों का पूर्ण आधिपत्य हो गया तब नाथोजी बीकानेर आ गये। उन्होने बीकानेर के गढ़ के सामने अपना आसन जमाया।

उस समय बीकानेर नरेश दिल्ली जाने की तैयारी मे थे। राजा जिस हाथी पर सवार होकर दिल्ली जाना चाहते थे, वह हाथी महावत के पूर्ण

प्रयत्न करने पर भी जब खड़ा न हुआ तब राज्याधिकारियों ने नाथोजी से हाथी के खड़ा न होने का कारण पूछते हुए इसको खड़ा करने की प्रार्थना की। उन्होंने कहा— 'जाओ हाथी खड़ा हो जायेगा और जिस कार्य के लिए महाराजा दिल्ली जा रहे हैं, उनका वह कार्य भी सिद्ध हो जायेगा।"

नाथोजी के कथनानुसार हाथी भी खड़ा हो गया तथा महाराजा को दिल्ली के अभीष्ट कार्य में सफलता मिली।

इस चमत्कार से प्रभावित होकर बीकानेर महाराजा ने नाथोजी का राजकीय सम्मान किया और उनको नगारा जोड़ी, निशान और रथ भेट किया तथा उन्हें मालासर पहुँचाया। महाराजा ने नाथोजी को तीन हजार बीघा जमीन भी भेट स्वरूप दी, जो अब तक मालासर के सिद्ध के अधिकार में है।

इस घटना के बाद बीकानेर से नाथोजी मालासर आकर रहने लगे। वहाँ उन्होंने 'रामदान' तथा 'गोरखदान' को अपना शिष्य बनाया तथा उनको कुछ समय अपने पास रखकर बाद में इन दोनों को महाराजा अजीतसिंहजी की सहायतार्थ 'छप्पन' के पहाड़ों में भेज दिया।

वि० सं० १७६३ को महाराजा अजीतसिंहजी का जब जोधपुर पर अधिकार हुआ तब महाराजा ने नाथोजी के उक्त दोनों शिष्यों से कहा— "तुम्हारे गुरु के दर्शन करवाओ। इस बड़े उपकार के बदले में मैं उनकी सेवा करना चाहता हूँ।"

इस समय इन शिष्यों ने महाराजा से नाथोजी एवं पाँचला के जाट ब्राह्मण के आसन पर अधिकार कर लेने की घटना तथा अन्य सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

महाराजा ने आसन पुनः उनके अधिकार में करा देने का आश्वासन देते हुए इन दोनों शिष्यों को सिद्ध नाथोजी को शीघ्र बुला लाने के लिए मालासर भेज दिया।

सिद्ध नाथोजी महाराजा अजीतसिंह की अपने प्रति अटूट श्रद्धा देखकर शिष्यों के साथ सीधे जोधपुर आ गये। महाराजा ने इनका बड़ा

सत्कार किया एव राज्य की सहायता देकर पाँचला का आसन पुन: इनके अधिकार मे करवा दिया। उक्त दोनों व्यक्तियों को दण्डित करना चाहा पर नाथोजी के क्षमाशील स्वभाव ने महाराजा को ऐसा करने से रोक दिया।

सिद्ध नाथोजी ने अपने आसन की समुचित व्यवस्था कर कुछ समयोपरान्त जीवित समाधि ले ली।

सिद्ध बोयतजी, सिद्ध दूदोजी और सिद्ध नाथोजी के पवित्र समाधि-स्थल पर पाँचला के आसन में सुन्दर मन्दिर बना हुआ है।

यथा प्रसंग पॉचले के आसन का परिचय कराया जा चुका है, अपितु यह बताना असगत न होगा कि पॉचला के श्री जसनाथजी के आसन की मान्यता जसनाथ-सम्प्रदाय के अतिरिक्त बड़े बडे ताजीमी जागीरदारों तथा राजघरानों तक भी है। नये महन्त के आरोहण समारोह पर प्रचलित पद्धति के अनुसार जागीरदार लोग महन्त के रोली का तिलक लगाते हैं, चद्दर उढाते हैं और यथा श्रद्धा भेट देकर अपने मण्डल का महन्त स्वीकार करते हैं।

सुदूर क्षेत्रों के जागीरदार भी पॉचला आसन के सेवक हैं। मेलो (चैत्र शुक्ला सप्तमी और भादवा शुक्ला सप्तमी) के समय 'कनात' तने रथो को देखकर जसनाथजी के प्रति मारवाड़ के क्षत्रियों की श्रद्धा का भाव सजीव दृष्टिगत होता है। अन्य यात्री भी उक्त मेलो में हजारों की सख्या में दूर दूर मे चलकर आते हैं। दूसरे जसनाथी धामों की भॉति यहाँ भी जसनाथी लोग 'गठ जोड़े' की यात्रा तथा बच्चों का 'चूडात सस्कार' करते रहते हैं।

जसनाथी पर्वों पर यहॉ मनो सुगन्धित द्रव्ययुक्त घृत का हवन होता है। सेवको द्वारा हवन के लिए प्रतिदिन मनो घृत तथा पक्षियों के लिए मनो चुग्गा आसन मे आता रहता है। श्रद्धालु लोग यहॉ मनौतियॉ मना मनाकर चॉदी सोने के छत्र इत्यादि चढ़ाते रहते हैं, जो यथारूप मे सुरक्षित रखे जाते हैं। आसन की आय आसन के कार्यों में ही व्यय होती है। निज स्वार्थ के लिए उसका उपयोग नहीं होता। यहॉ अब तक ऐसी ही परिपाटी चली आ रही है।

यात्रियो के लिए आसन की ओर से ही दोनो समय की भोजन व्यव-

स्था की जाती है। इस भोजन व्यवस्था को 'ओगरो' या 'जसनाथजी रो शीर' कहते हैं, जो जसनाथ-सम्प्रदाय के यात्रियों के लिए अनिवार्य है।

आसन में दो बड़े-बड़े जलकुण्ड बने हुए हैं, जिनमें वर्षा का मधुर जल भरा रहता है। आसन की ओर से बने कूँओं में भी पर्याप्त मीठा जल है।

आसन में जीवित समाधियों पर मन्दिर तथा सिद्ध महन्तों की समाधियों पर कमरों की तरह विशाल ढोलों के मन्दिर और छत्रियां बनी हुई हैं। मन्दिर परिधि के 'पिछोकड़े' में भी जाल के सुन्दर पेड़ों के झुरमुट हैं, जिनमें मयूरादि पक्षी बड़े आराम से निवास करते रहते हैं। वहीं पर 'धूपेरण' वृक्ष का एक बीडा (पौधा) है। इसका रस धूप बनाने के उपयोग में लाया जाता है। परकोटे के चारों बुर्जों के सिवाय आसन में अनेकों छोटे बड़े मकान बने हुए हैं।

आसन में 'नौचौकिया[१]' नाम का मकान बड़ा ही कलापूर्ण ढंग से बना हुआ है। 'नौचौकिये' में एक काष्ठ का सिंहासन भी रखा हुआ है। वहीं एक कुण्डा (मृत्तिका पात्र) रखा हुआ है, जिसका वर्णन करणों के प्रसंग में दिया गया है।

आसन के परकोटे के उत्तरी भाग में एक हौज नुमा तालाब बना हुआ है। परकोटा निर्माण के लिए इसी स्थान से पत्थर निकाला गया था। आसन से पश्चिम की ओर लगभग एक कोस पर बकरों की बाट और आसन की ओर से ही एक कूँआ बना हुआ है। बाट में जसनाथी लोगों के भेजे हुए हजारों बकरे रहते हैं, जिनके चराने एवं रखवाली के लिए सवेतन कई आदमी आसन की ओर से ही नियुक्त हैं; पर इसकी अन्य व्यवस्थाओं के लिए पांचला के लोगों की एक कमेटी बनी हुई है, जो समय समय पर बकरों की समुचित देखभाल करती रहती है। रात्रि में बकरों को सुरक्षित रखने के लिए चारदीवारी बनी हुई है।

आसन के पास 'ओरण' भी बना हुआ है, जिसमें बकरे तथा अन्य पशु चरते रहते हैं।

---

(१) यह पत्थर के स्तम्भों पर नौ गुम्बजों का अति सुन्दर महल समान है। इसे बनाने का श्रेय रियां जसनाथी बेगराज को है। नौचौकिये के बाहर एक शिला लेख भी है जिसमें इसके बनने का पूरा उल्लेख है।

करणू[1]

यहाँ दो जीवित समाधियाँ हैं यह समाधिस्थल गाव से लगभग छै फर्लांग उत्तर की ओर स्थित है—

(१) देवोजी– जसनाथ-सम्प्रदाय में सिद्ध देवोजी महान् व्यक्तित्व वाले विशिष्ट सिद्धपुरुष हुए हैं। ये ' पोटा'' शाखा मे उत्पन्न हुए थे। इनकी जन्म-भूमि मोनियाँसर बीकानेर थी, पर बाद में ये करणू जाकर बस गये। इनके सद्गुरु पाँचला के सुप्रसिद्ध सिद्ध दूदोजी महाराज थे। सिद्ध देवोजी का जीवनवृत्त बडा गम्भीर उतार चढाव लिए हुए समस्यापूर्ण था।

इनकी स्त्री बडी कर्कशा थी। वह इन्हें बहुत कष्ट देती थी। स्त्री के स्वभाव से बाध्य हो कर इनको घर का सारा कार्य करना पडता था, जिसकी अभिव्यक्ति इनके द्वारा रचित साहित्य मे स्पष्ट रूप से झलकती है।

इनको जगल मे गोंद एकत्रित करते समय गुरु गोरखनाथजी की झाँकी के दर्शन हुए थे। इस सम्बन्ध मे स्वय देवोजी ने अपने 'सबद' मे भावुकता से उल्लेख किया है—

भगवान भीखो आपरी मरजी, मैं दुख भुगत्यो सारो
मैं भिखयारी फिरूँ बन माहीं, चाकर चोर तमारो
इण कूमट किरतार पधारया, ऊग्यो सूर सुवारो
गून चुगन्ताँ गोरख मिळिआ, भाग्यो घोर अन्धारो
काया-पातक भौं-भौं- झड़िया, दरसण हुयो धण्याँ रो
बाँह पिसार मिल्या बाबोजी, जद मुख दीठो थारो
रंग महल रा थे राजेसर, ह्याँ क्यूँ आप पधारो
आप चढ्या हस्ती रै होदै, जद 'जी'– डरप्यो म्हारो
जाट–जमारो विखभी विळियाँ, मैं दुख भुगत्यो सारो
पाँच कोस रो पैंडो करतो, सिर लकड्याँ रो भारो
पाँव पिसार पीसणों करतो, भळ होंतो पणियारो

---

(१) यह ग्राम ' पाँचला सिद्धो का'' से लगभग सात कोस की दूरी पर उत्तर

बीती बात 'देवो सिद्ध' बोलै, गरब करो न गिंवारो

गुरु गोरखनाथजी के दर्शनोपरान्त देवोजी वचन सिद्ध हो गये। कहा जाता है कि इन्होंने घर आकर अपनी स्त्री के स्वभाव को बदलने के लिए उसको यह शाप दिया था -

> ऊतर भारा, चढ़ बढ़ा, पट्ट'ज घूमै बा'र
> ओडाँ रै घर लादणी, ज्यूँ 'देवै' घर-नार

सिद्ध देवोजी बहुत समय तक गृहस्थ रूप में ही रहे। वे समय समय पर पाँचला जाकर सिद्ध दूदोजी महाराज से सत्संग लाभ किया करते थे। किंवदन्ती है कि जब दूदोजी महाराज पाँचला के महल में देवोजी से बातें करते थे, तब एक दिन सिद्धजी के अन्य शिष्यों एवं पाठियों ने उनसे कहा - "सिद्धजी महाराज, आप देवा से तो बहुत समय तक बातें करते रहते हैं और हम से बोलते तक नहीं यह क्या कारण है ?"

सिद्ध दूदोजी ने कहा - 'यह देवा सिद्ध पुरुष है। इसलिए मुझे इससे बातें करने में आनन्द मिलता है।"

एक बार की बात है कि सिद्ध दूदोजी के दर्शनार्थ करणू से देवोजी पाँचला आये। उस समय ईर्षावश दूदोजी के अन्य शिष्यों ने कहा—महाराज आपका सिद्ध पुरुष चेला देवा आ गया है। अतः इसे कूँए पर भेजकर पानी बेहांगा (गाड़ी) मंगवाइये; क्योंकि कूँआ तो अभी बह ही रहा है।"

शिष्यों की डाहपूर्ण बात सुनकर देवोजी ने कहा—"कूँआ बह तो नहीं रहा है, फिर भी मैं गुरु कृपा से पानी अवश्य ला दूंगा।"

देवोजी गाड़ी पर मटकिया तथा घड़े रखकर कूँए पर गये कूँआ पहले से बह था ही। उन्होंने कूँए की परिक्रमा की तथा गाड़ी उसी प्रकार वापस मोड़ ली। जब वे आसन की पोळ में प्रवेश करने लगे तब देवोजी ने कहा— "भरिया सो भरिया, ठाला सो ठाला" (जो भरा हुआ है वह तो भरा ही रहेगा और जो रिक्त है वह भर नहीं सकता अर्थात् जो ज्ञानी है वह तो ज्ञानी ही रहेगा और जो ईर्ष्यालु है उसे ज्ञान प्राप्त होना कठिन है) ऐसा कहने ही गाड़ी में रखे हुए सारे घड़े पानी से भर गये। मजाक करने वाले सकुचा गये।

× ×

देवोजी द्वारा उक्त चमत्कृति प्रकट करने पर भी ईर्ष्यालु शिष्यों तथा पोळियों की द्वेषाग्नि शान्त न हुई, उनका सदैव यही प्रयत्न रहा कि यदा कदा देवोजी को परास्त कर उनके सिद्ध पुरुष होने की बात मिथ्या सिद्ध की जाय।

देवोजी पाँचला आते जाते तो रहते ही थे। एक बार जब वे यहाँ आये तो दूदोजी के शिष्यों ने एक युक्ति सोची और आटे का एक बाघ बना कर 'कुण्डे' के नीचे छिपा दिया फिर अपने गुरु के सामने ही देवोजी से उन शिष्यों ने पूछा — "तुम सिद्ध पुरुष तो हो ही, बताओ ! कुण्डे के नीचे क्या रखा है ?"

देवोजी ने उन लोगों की ऐसी दुष्प्रवृत्ति देखकर कहा—

"करणू सूँ सिद्ध देवो आयो, मान सको तो मानो
परगट हुय'र सिद्ध कुहावाँ, लोग कहै इग्यानो
म्हारै ओढ़ण धोळा बसतर, गुरु रै भगवाँ बानो
कुण्डै हेटै बाघ छिपायो, कद रैसी ओ छानो"[1]

देवोजी के इस कथन से 'आटे का बाघ' सच्चा बाघ बनकर उन शिष्यों पर झपटा और वे लोग घबरा कर मूर्च्छित हो गये। उस दिन के बाद दुराग्रही शिष्यों ने देवोजी के सिद्धबल को स्वीकार कर लिया।

कुछ लोगों का मत है कि यह घटना जोधपुर मे घटित हुई थी कि जब जोधपुर महाराजा के यज्ञादि प्रयत्नो के बाद भी राज्य में वर्षा न हुई और ज्योतिषियों ने किसी कारण वश वर्षा का योग नहीं बताया तब सिद्ध दूदोजी को वर्षा करवाने के लिए जोधपुर बुलवाया, इस अवसर पर देवोजी भी उनके साथ थे।

सिद्धजी ने अपने योगबल से राज्य भर में पर्याप्त वर्षा करवा दी।

---

(१) शेषांश इस प्रकार है—

लिखमादेसर गुर हंस राजा, नौरंगदेसर ध्यानो
कम राज सूँ कुस्ती खेल्या, इमडो बाळक नान्हों
बाळक ले गिरवर नैं चाल्या, कदे न राख्यो पानो
दया करो तो म्हारी मुणज्यो दिल रो अन्तर मानो

इससे राज-ज्योतिषियों एवं पण्डितों को इनसे बड़ी ईर्ष्या हुई। उन्होंने राजा के कान भरे और इनके सिद्धि-परीक्षण के लिए यह 'थाघ वाला षड्यन्त्र जोधपुर दरबार में ही रचा गया था।

कहते हैं, वहाँ देवोजी ने पण्डितों के अन्धानुकरण मतों का अपनी स्फोटमयी वाणी में खण्डन किया था।

इस घटना से जोधपुर महाराज बड़े प्रभावित हुए और उसी के फलस्वरूप महाराजा जसवन्तसिंहजी ने चार "हलवा' भूमि सिद्ध देवोजी को देकर 'पीयाई' आदि की लाग माफ करदी थी। इस आशय का ताम्र-पत्र भी जोधपुर महाराज ने इनको दिया था।[1] इस बात से यह भी सिद्ध हो जाता है कि उक्त घटना जोधपुर में ही घटित हुई थी।

तदनन्तर देवोजी सिद्ध दूदोजी से भगवाँ वेश लेकर जसनाथ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये और पापाचारियों को मार्ग विमुख कर कलिकाल ग्रसित प्राणियों को अपनी सर्वतोभद्रा वाणी द्वारा सदुपदेश देने लगे।

देवोजी की जीवन समस्याओं का हल सद्गुरु सिद्ध दूदोजी द्वारा हुआ। इसका कृतज्ञता पूर्ण उल्लेख स्वयं देवोजी ने अपने 'सबद' में किया है—

भूख सरीसी व्यथा वणाई, अन् ओखद फरमाया
खीर खाँड रा इमरत मेवा, भूखा अन्त सिराया
जेठ महीनों खळहर तपतो, अट्ठे तीरथ न्हाया
त्रिरै-त्रिरै रा माँय रहूँगा, मिरगा फिरै तिसाया

---

(१) ताम्र पत्र की नकल इस प्रकार है —

स्वस्ति श्री महाराजा धिराज महाराज श्री जसवन्तसिंहजी वचनायतु तथा सिद्ध देयो दूदै रो चेलो गांव करणू मे छै तिणनू धरती हळवा चार श्री हजूर सूं इनायत कीवी छै सू इणरी आल औलाद भोगियाँ जावसी इणमें तपावन होसी नाही पाणी री पीयाई वगैरा कोई लाग लागसी नाही श्री हजूर रो हुकम छे सम्वत १७०० आसोज सुद ५ मु० गढ जोधपुर श्री मुख परवानगी गोपालदास सुन्दर दासोत मेड़तिया मानदासोत।

'अपदन्तः परदन्तः जेलो पन्त' वसुन्धरा
नर नरकां जावन्त. चन्द्र दिवाकरः

सौमण सूत अळूझ्यो रै'तो, आखर सूँ सुळझाया
ऊँचै अमलै कोयल बैठी, बोलै सबद सुवाया
गुरु री दाड़ी नूर जती रो, कंचन वरणी काया
दूदैजी रा दरसण करताँ, काया अति सुख पाया
गुरु परताप 'देवो' (जी) बोलै, दाखविया जस गाया

असम्भव को सम्भव बनाने वाले गुरु के सामर्थ्य का देवोजी ने अपनी ओजपूर्ण भाषा में कितना सुन्दर एवं सरस वर्णन किया है—

अलख लिख्या कोई लेख न जाणै, कुण जाणै कायम रा पार
कितरा चिळताँ ईसर खेलै, जोत सरूपी जुग-दातार
करड़ो पंथ कै'र कठिनाई, से सेवै से जाणै सार
हरजी गिंवर किया गाडर सूँ, आपै चढ़ै होय असवार
पै'लाँ धवळो कान न सैंतो, धर धूनो हुयो सिकदार
पाँच मणाँ पग पाछो पड़तो, किरोड़ मणाँ के जूत्यो भार
सीपाँ मोती निज नीपजता, तुस में रतन कियो बिसतार
गिरम्याँ पून तिसायाँ पाणीं, हर सूँ लाग्यो हेत पियार
ज्यूँ गळ डौवै ज्यूँ मन मोवै, साँस-साँस में सौ-सौ वार
जळ में मीन उदक में वासो, कै'वै पियो कद जाणै सार
गै'रो पेड़ सैंस पर डाळा, जड़ बिन बिरछ कियो बिसतार
जिणरी छाया कीड़ी न सैंती, लसकर उतर्‌या अणत अपार
माखी घिरत सेर भर पीयो, सुसियो चढ्यो सिंघाँ री लार
सुसियै पेट सिंघाँ रो वासो, चूक्यो डाण'ज लीन्यो मार
तरगस-तीर सै'ल बिन सिंगी, गोळी गैब री लीनो मार
से जूझै हरिहर नै बूझै, साँस-साँस साँचा सुविचार
गुरु परताप 'देवो' सिद्ध बोलै, साथै गावै करै विचार//

सिद्ध पुरुष होने के पश्चात कुछ दिन के लिए सिद्ध देवोजी अपनी जन्मभूमि 'सोनियासर' (बीकानेर) आकर रहने लगे थे, पर सोनियासर निवासियों के उद्दण्ड स्वभाव से खिन्न होकर वे वापस करणू ही जा बसे।

सोनियासर छोड़ने की घटना इस प्रकार बताई जाती है कि 'देवोजी के बच्चों एवं परिवार के अन्य बालकों में एक झड़-बेरी के फलों (बेर) के लिए झगड़ा हो गया. यह झगड़ा इतना बढ़ गया था कि इसमें बच्चों के मा-बाप तक को भाग लेना पड़ा। इस स्थिति से खिन्न होकर देवोजी ने करणू ही आ कर बसने का विचार किया। इस सम्बन्ध में देवोजी ने सोनियासर के लिए ये दोहे कहे—

सोनियासर तो सूनो होसी, अठै बोलसी मोर
पोटों ऊपर पटकी पड़सी, आय बसैला ओर
कळैगारी बोरड़ी तेरै, कदै न लागसी बोर
म्हे तो म्हारा करणू जास्याँ, साँवरियै सुख-जोर

सिद्ध देवोजी ने वि० सं० १७२४ आश्विन शुक्ला एकादशी को करणू ग्राम की 'रोही' (जंगल) में समाधि ली। उस समय उनके गुरुभाई नाथोजी भी वहाँ उपस्थित थे।

समाधिस्थ होते समय सिद्ध देवोजी ने अपने गुरुभाई नाथोजी के सम्मुख महाराजा जसवन्तसिंहजी की काबुल में मृत्यु होने तथा स्वकथित तिथि पर मारवाड़ में मुसलमानों द्वारा उपद्रव एवं अधिकार होने की भविष्य-वाणी की—

ग्यारा बरसें गोमदो, कैं आगम री बात
सम्वत सतरैं बरस चोइसैं, बाँच कैं परवाण
पैंतीसैं में धरा पावटै, आसी विरँगी बार
रैंसी राज मँडोर रो, धर कावल रैं पार

(१) कहा जाता है कि गाँव के लोगों द्वारा क्षमा माँगने पर सिद्ध देवोजी ने सोनियासर के लिए पद्य को निम्नलिखित प्रकार से बदल दिया—

'सोनियासर सुबस बसो, आय बसैला ओर'

(२) इस भविष्यवाणी के अनुसार महाराजा जसवन्तसिंहजी की मृत्यु वि० सं० १७३५ पौष वदि दशमी को काबुल में हुई।

(डा० ओझा, जोधपुर राज्य० इ० प्र० भा० पृ० ४६)

दो चेळा इक साकड़ी, हिन्दू मुसळमान
भोम बसाई भोमिया, सुबस बसै जोधाण
पतसाही नेजा खँचै, पूरब दिसा नीसाण
काया पग पाछा पड़ै, सूराँ नर आसाण
नाळ पळीता चालसी, उंड़सी ईंट पखाण
जोधाणैं नर चादसी, कायम इद को नीर
पलक पलक परचा देवै, परचाधारी पीर
फागण वद पाँच्यूँ तिथि, चढ़ै सबायो नीर
ऊपर बोल अजीत रा नवकोटा सूँ सीर
सम्बत सतरै साल बासठै महर करै गुरु पीर
देवो (जी) आगम भाखवी, साय करै रणधीर

देवोजी की रचनायें—

(१) गुण माळा—(नीति भक्ति का उपदेशात्मक काव्य ग्रथ)

(२) देसूँटो—(पाण्डवों के अज्ञातवास का सरस वर्णन)

(३) बरत परवाण-(माता पृथ्वी के गुणानुवाद का अधिकार पूर्ण वर्णन)

(४) नारायण लीला—(भक्तिरस की सामान्य रचना)

इनके अतिरिक्त ३०० के लगभग स्फुट रचनायें प्राप्त हैं जो 'सिद्ध देवोजी की ग्रन्थावली' के नाम से सग्रहीत है।[1]

(२) हरनाथजी—ये सिद्ध देवोजी के सुपुत्र थे और ये भी अपने योग्य पिता के सुयोग्य पुत्र थे। इनका जीवित समाधिस्थल देवोजी के समाधिस्थल के पास ही है, पर इन्होंने कब समाधि ली इसका समय ज्ञात नहीं हो सका। इनकी भी अनेकों उच्चकोटि की भावपूर्ण रचनायें उपलब्ध हैं—

हँसो विगसो मोवण्याँ, गुण गोमद गावो
पूरै गुरु नें सेंवताँ, अमरा पुर पावो
चित चेतो कर आतमा, मत भूले जावो

(१) यह ग्रथ हमारे द्वारा सम्पादित है और शीघ्र ही इसी प्रकाशन से प्रकाशित किया जायेगा।

कुण रा मिन्तर मेलिया, कुण रा ईया वावो
जीव नैं जँवर पठावसी, आवैं उभरावो
धोरा वाँधो धरम रा, खड़ खेत निपावो
वीज गुरु रो नाँव है, वाचा लग वा'वो
सँस गुणाँ फळ लागसी, हर हेत लगावो
करसण कजा न लागसी, कोई दुरमत दा'वो
वेंकुँठाँ वासा वसो, जो अलख थे धियावो
जाँ जैसा हर ओळख्या, जैं जिस्यो ठावो
करणी किरत कमायल्यो, जग मोटो लावो

पाँचूड़ी[1]—

यहाँ केवल जोगीनाथजी की जीवित समाधि है जो सिद्ध रुस्तमजी के शिष्य थे। इनकी समाधि पर सुन्दर मन्दिर है और पानी का कुण्ड भी है। जोगीनाथजी की समाधि के चारों ओर 'ओयण' भी छोड़ी हुई है, जहाँ शिकार आदि करना पूर्णतया निषिद्ध है।

रामपुरा[2]—

यहाँ भी सिद्ध रुस्तमजी के शिष्य कँवरोजी की एक ही समाधि है। इन्होंने वि० सं० १५२० में जीवित समाधि ले ली थी। कँवरोजी की समाधि पर मन्दिर तथा मकान भी बने हुए हैं।

बगसेऊ[3]—

यहाँ साजननाथजी गोदारा ने जीवित समाधि ली थी। ये देवोजी के दीक्षा प्राप्त शिष्य थे। ये थावरिया ग्राम से यहाँ आकर आबाद हुए थे।

एक बार बगसेऊ के दो सगे भाई भोमा (भूस्वामी) परस्पर लड़ पड़े।

(१) यह ग्राम पांचला सिद्धों का से उत्तर की ओर ४ कोस की दूरी पर स्थित है।

(२) यह ग्राम मारवाड़ में है।

(३) यह ग्राम भी [illegible]

साजननाथजी ने बीच में पडकर दोनों की तलवारें पकड ली, जिससे इनके हाथ की अंगुलियाँ कट गईं, पर साथ ही लड़ाई भी रुक गई। भूस्वामी सोढो ने इस उपकार के बदले में इनको जमीन भेंट की। यहाँ प्रतिवर्ष वैशाख शुक्ला सप्तमी को जागरण होकर हवन होता है। साजननाथजी की पुण्य तिथि प्रति माह शुक्ला पचमी मानी जाती है।

मालसर—

यहाँ तीन जीवित समाधियाँ हैं—

ये तीनों ही समाधियाँ जसनाथी सतियों की हैं पर दुर्भाग्यवश इन तीनों का ही विवरण भूतकाल के गर्भ में है। भोले ग्रामीण भाइयों के स्मृति-पटल से इनका वृत्त उतर गया, अत प्रयत्नों के बाद भी कोई उल्लेख नहीं प्राप्त हो सका। इसी प्रकार अन्य कई समाधियों का विवरण भी अज्ञात रहा है।

यहाँ की बाडी में स्थित मन्दिर में रखे हुए चरण चिन्हों पर एक लेख खुदा हुआ है—'सं० १७१५ वर्षे शाके १६०० जेष्ठ मासे सुदी १३ सोमवार' इसके अतिरिक्त अक्षर स्पष्ट न होने के कारण पढा नहीं जा सका। सम्भव है, उपर्युक्त तीनों सतियों में से किसी एक ने इस सम्वत् में समाधि ली होगी।

बाडी सुन्दर एव रमणीय जाल वृक्षावली से घनीभूत छाई हुई है। यहाँ का दृश्य बड़ा मनोहारी है। जागरणादि पर्व भी निश्चित तिथियों पर मनाये जाते हैं।

ऊपनी[1]—

यहाँ दो जीवित समाधियाँ है—

(१) चान्दोजी—इन्होंने यहाँ कई वर्ष तक निरन्तर तप-साधना की। इस तपस्या के फलस्वरूप इन्हें देव श्री जसनाथजी के दर्शन हुए तथा इनको सिद्धि प्राप्त हुई।

बीकानेर से छापर जाते समय तत्कालीन बीकानेर महाराजा ने इनके दर्शन किये और इनके वैराग्य से प्रभावित हुए। कहा जाता है कि बीकानेर महाराजा ने इनके लिए हवन के निमित्त घृत आदि का समुचित प्रबन्ध कर

(१) यह ग्राम रीडी से लगभग चार कोस की दूरी पर पश्चिम की ओर स्थित है।

दिया था। राज्य की ओर से बहुत समय तक यहाँ जसनाथजी का जागरण भी लगता रहा।

चान्दोजी ने कब किस सम्वत् मे समाधि ली यह अभी अज्ञात ही है।

(२) यहाँ एक सतीजी ने भी समाधि ली थी, पर इनके विषय का कोई भी वृत्त अब तक प्राप्त नहीं हो सका है।

कालड़ी[1]—

यहाँ सर्व प्रथम र्खीवोजी ने ८४ वर्ष तक तप किया। तत्पश्चात् सिद्धाचार्य की अन्तःप्रेरणा से यहाँ मोतीनाथ सक. ने तप किया।

यहाँ आज से लगभग ५५ वर्ष पूर्व मोतीनाथजी सक. ने अपने द्वारा संस्थापित जसनाथजी के मन्दिर में घृत की अखण्ड दीपशिखा प्रज्वलित की थी, जो अब तक निरन्तर जलती चली आ रही है। इसलिए ही इस बाड़ी के विषय में कहा गया है — 'कळजुग किनारै कालडी, इन्द को रहसी मान' बाड़ी मे स्थित मन्दिर के चारों ओर वृक्ष पंक्तियों बड़े सुन्दर रूप से लगी हुई हैं, जो दर्शक को अपनी ओर बरबस आकर्षित कर लेती है। बाड़ी मे सुन्दर सुन्दर अनेकों पक्के मकान बने हुए हैं जिसका श्रेय वर्तमान सिद्ध को है। यहाँ जसनाथी पर्वों पर जागरणादि शुभ कार्य सम्पन्न होते रहते हैं। इन अवसरों पर समीपवर्ती जसनाथ मतानुयायी यात्रियों का मेला लगता है। बाड़ी के सामने पक्षियों के लिए एक विशाल कबूतरखाना लोहे की शलाकाओं से बना हुआ है। पास ही बाड़ी के उत्तर की ओर एक मीठे जल का कूँआ भी है।

मालूणा[2]—

इस ग्राम में दो जीवित समाधियाँ हैं:—

(१) गिरधारीनाथजी—इनका विशेष वृत्त अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है, पर इनकी कुछ सामान्य स्फुट रचनायें मिलती है।

(२) पद्मनाथजी—इनका वृत्त भी अज्ञात ही है।

---

(१) यह ग्राम बीकानेर जोधपुर रेलवे लाईन री [illegible] स्टेशन से लगभग तीन कोस री दूरी पर पश्चिम दिशा में स्थित है।

(२) यह ग्राम [illegible] नदी से एक कोस पश्चिम-दक्षिण में बसा हुआ है।

प्रदेश की समस्त जसनाथजी की बाड़ियों में हाँसेरा के बाद सुन्दरता एव रमणीयता की दृष्टि से साधूणा की बाडी का दूसरा स्थान है।

यहाँ बाडी में दो मीठे जल-कुण्ड हैं, जिनको बनाने का श्रेय साधु पुरुखनाथजी को है। माधूणे की बाड़ी के लोग जशपालजी के प्रति विशेष श्रद्धा रखते हैं।

सेरूणा[1]—

यहाँ तीन जीवित समाधियाँ हैं -

(१) चोखनाथजी—इनकी समाधि अट्ठारवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही हुई थी।

ये उच्चकोटि के सिद्ध पुरुष होने के साथ साथ सुकवि भी थे। इनके द्वारा रचित साहित्य जसनाथी-साहित्य की अमर निधि है। इनके 'चार जुगी सबद' 'आदेश आदेश रो छंद' और 'जलम झूलरो' आदि रचनाएं सर्व प्रसिद्ध हैं।

(२) खेरतजी गोदारा
(३) डूँगरजी खाती } —इनका कोई वृत्त प्राप्त नही हो सका।

पूनरास[2]—

यहाँ जालप जसनाथजी की बाड़ी है। यशोनाथ पुराण मे यहाँ पर पाँच जीवित समाधियो के होने का उल्लेख मिलता है।

इन पाँचो ही समाधियो का कोई विवरण हमें प्राप्त नहीं हो सका, पर यह सुनिश्चित है कि यह ग्राम 'जसनाथ सम्प्रदाय' की विरक्त मण्डली के महात्माओं का विशिष्ट केन्द्र रहा है।

खिलणियाँसर[3]—

यहाँ दो जीवित समाधियाँ हैं—

---

(१) यह ग्राम मूडसर स्टेशन से पश्चिम की ओर चार कोस की दूरी पर स्थित है।

(२) यह ग्राम बीकानेर दिल्ली जाने वाले मोटर मार्ग (सडक) पर स्थित श्रुवावास ग्राम से तीन कोस की दूरी पर बसा हुआ है।

(३) यह ग्राम म्हाजीजी वाले लालगढ़ के पास है।

(१) पूलण सती—ये सती टुकरोजी की माता थी। जब ये बिलोवणाँ (दधि मंथन) कर रही थीं तब सहसा 'नेंड़ी' के पास जाल का पेड़ पैदा हुआ। क्षण भर में ही उसने बड़े पेड़ का रूप ले लिया। ज्यों ही पेड़ बढ़ा त्यों ही सती पूलण को सत चढ़ गया और तत्काल ही सती ने उसी स्थान पर जीवित समाधि ले ली।

(२) किसननाथजी—ये पूलण सती के भतीजे थे। ये बड़े गौ-भक्त थे। कहा जाता है कि ये अनन्न भरे खेत में गायें चराकर जीवित ही समाधिस्थ हो गये।

ऊँटालड़[1]—

यहाँ दूदोजी सियाग ने सं० १८५३ माघ शुक्ला प्रतिपदा को जीवित समाधि ली। यहाँ माघ पर्व पर जागरण एवं हवन होता है। उक्त जीवित समाधि से पूर्व भी यहाँ जसनाथजी की बाड़ी थी।

जोगलिया[2]—

यहाँ तीन बाड़ी हैं, जिनमें चार जीवित समाधियाँ हैं—

(१) हेमोजी—महिया शाखा के सिद्धों में सर्व प्रथम वि० सं० १५४५ में हेमोजी ही सिद्ध हुए थे। कहते हैं इनको श्री जसनाथजी के अनुग्रह से ही भगवीं टोपी मिली थी।[3] उस दिन के बाद इन्होंने जसनाथ-सम्प्रदाय में प्रवेश किया।

हेमोजी महान् सिद्ध पुरुष थे। इन्होंने सबलजी बीदावत (साँवल-दासोत) को पुत्र प्राप्ति का वरदान दिया। पुत्र होने पर उक्त ठाकुर ने इनकी बाड़ी की मान्यता की। इनकी जीवित समाधि गाँव से दक्षिण की ओर है, जिसको लखाणों की बाड़ी के नाम से भी पुकारा जाता है।

---

(१) यह ग्राम पान्दरा ग्राम से तीन कोस की दूरी पर पश्चिम की ओर स्थित है।

(२) यह ग्राम राजलदेसर (बीकानेर) से लगभग पांच कोस की दूरी पर दक्षिण दिशा में स्थित है।

(३) अन्य मतानुसार ये रूपोजी (पाड) के दीक्षा प्राप्त शिष्य थे।

(२) माननाथजी—इन्हें सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी की अनुकम्पा से ही सिद्धि प्राप्त हुई थी। इन्होंने स्थानीय ठाकुर के नाई रुघजी को पुत्र होने का वरदान दिया था, जिसके बदले में उसने जसनाथजी की बाडी (मान बाडी) के पीछे 'ओयण' छोड़ा। माननाथजी ने वि० स० १६१६ भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी शुक्रवार को जीवित समाधि ली। इनका समाधिस्थल गाँव के पास दक्षिण की ओर एक ऊँचे टीले पर बना-हुआ है। यह स्थान बडा रमणीय है। यहाँ चैत्र पर्व पर जागरण हवन होता है। माननाथजी की स्मृति मे प्रतिमास शुक्ला त्रयोदशी को ग्राम की ओर से सामूहिक हवन होता है। उस दिन पक्षियों को समस्त गाँव की ओर से चुग्गा डाला जाता है।

यहाँ के निवासी शाखा के सिद्धो मे सबसे पहले पाँचोजी ने हाँसोजी (या उनकी परम्परा) से भगवाँ वेश लेकर जसनाथ सम्प्रदाय मे प्रवेश किया। इनका समाधिस्थल सन्दिग्ध है। ग्राम म साँई शाखा के सिद्धो की अलग से जसनाथजी की बाडी है जिसमे हुई जीवित समाधियो का परिचय निम्न प्रकार हैं—

(३) गुमाननाथजी – ये बडे दयालु थे और साथ ही सिद्ध पुरुष भी। इनके पास आगन्तुक सत-मडली का जमघट लगा रहता था। इनके पवित्र स्थल पर एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर बना हुआ है।

(४) इस बाड़ी मे एक महिया शाखा के सिद्ध की जीवित समाधि होने का पता चलता है।

जसनाथी पर्वों पर यहाँ जागरणादि शुभ कार्य सम्पन्न होते है। बाडी मे मीठे जाल के कई सुन्दर पेड हैं। पक्षियों के लिए यहाँ चुग्गा-पानी की पर्याप्त व्यवस्था है।

जेतासर[1]—

यहाँ पाँच जीवित समाधियाँ हैं—

(१) टेकनाथजी—ये साँई शाखा के सिद्ध थे। इन्होंने वि० स० १८११ से पूर्व ही जीवित समाधि ली थी। जेतासर के पट्टो को देखने से ऐसा ही

---

(१) यह ग्राम जोगलिया से डेढ-दो कोस की दूरी पर पश्चिम मे है।

प्रतीत होता है।

(२) भींवनाथजी—ये उक्त देदनाथजी के पुत्र थे और जोगलिया के ठाकुर से रुष्ट होकर यहाँ आ बसे थे। एक बार जब जोगलिया का ठाकुर यहाँ आया और भींवनाथजी को अपने सम्मुख देखकर कहने लगा—"भींवनाथ, अभी मुझे दिखाई ही दे रहे हो क्या ?"

तब भींवनाथजी ने ठाकुर से कहा— "अब से तुम्हें नहीं दीखेगा।"

तब से ठाकुर अन्धा हो गया। भींवनाथजी ने समाधि के समय लोगों द्वारा अर्पित दूध को मुँह लगाकर पीया और अवशेष उच्छिष्ट दूध-कटोरा अपनी स्त्री को देना चाहा, पर स्त्री ने जब वह दुग्ध अस्वीकार कर दिया तब उन्होंने अपने छोटे भाई नरसिंघनाथ को वह दुग्ध का कटोरा दिया। दूध पीते ही नरसिंघनाथजी को भी सत चढ़ गया।

(३) नरसिंघनाथजी—सत चढ़ने पर इन्होंने भी अपने पूज्य भाई भींवनाथजी के साथ वि० सं० १८७६ में जीवित समाधि ली।

(४) पन्ना सती—यह उक्त भींवनाथजी की लड़की थी और स्थानीय जाखड़ सिद्धों की दादी थी। इन्हें भी अचानक ही बिलोवणा करते समय सत चढ़ा था। उस दिन सती ने अपने लड़के से कहा—"आज मैं समाधि लूँगी, अतः नाई के पास जाकर हजामत बना आओ।"

प्रातः ही जब लड़के नाई के पास गये तब नाई ने कहा—"अभी सूर्योदय में विलम्ब होने के कारण दिखाई नहीं पड़ता है—दोपहर में आना।"

नाई के यही शब्द लड़कों ने आकर अपनी माता पन्ना सती से कहे। सती ने कहा—"सच है, नाई को दीखना नहीं।"

कहा जाता है कि नाई उस दिन के बाद अन्धा हो गया। सती ने समाधि लेते समय एक पचास वर्षीय अविवाहित ब्राह्मण को पाँच पुत्रों के पिता होने का वरदान दिया। ब्राह्मण का विवाह हो गया और उसके वरदान के अनुसार ही पाँच पुत्र हुए।

पन्ना सती ने वि० सं० १९०२ को जीवित समाधि ली।

(५) हरजीनाथजी गोदारा—इन्होंने वि० सं० १८४३ वैशाख कृष्णा अमावस्या को जीवित समाधि ली।

रीड़ी[1]—

यहाँ सालोजी नाम के सिद्ध पुरुष ने ६२ वर्ष तक जसनाथजी की बाड़ी मे तप किया। इनकी स्मृति में यहाँ प्रतिवर्ष फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को[2] जागरण होकर हवन होता है।

सारायण[3]—

यहाँ तपसी नामक बड़े सिद्ध पुरुष हुए हैं। बीकानेर महाराजा सूरतसिंहजी ने इन्हे अपना गुरु बनाया और इनको मान्यता के साथसाथ एक ऐसा ताम्र-पत्र भेंट किया जिसमें समस्त जसनाथी सिद्धों के हित राज्य द्वारा सुरक्षित रखने का उल्लेख है। इन्होंने अनेकों जगह कूए बनवाये। अपनी भतीजी के कहने पर इन्होंने बीकूसरा ग्राम मे राज्य व्यय से कूआँ बनवाने का प्रबन्ध किया था।

बेनीसर (बणीसर)[4]—

यहाँ दो जीवित समाधियाँ हैं—

(१) पूलणदे सती (कुंवारी सती)—यह बापेऊ निवासी किसी जाणी शाखा के जाट की लडकी थी। इसका सगाई सम्बन्ध बेनीसर के किसी गोदारा के साथ किया हुआ था। दैव-संयोग से उस व्यक्ति की सर्प-दंश से मृत्यु हो गई। मनोनीत वर की मृत्यु का समाचार पाकर पूलणदे सती अपने पीहर बापेऊ से यहाँ आकर उसके साथ सती हो गई। कहते हैं, सती ने उस समय अनेकों चमत्कार दिखलाये। पूलणदे सती के समाधि स्थल पर पहले शिवरात्रि को जागरण लगता था। पूलणदे सती की पुण्य तिथि प्रतिमास कृष्णा सप्तमी को दूध-दही चढ़ाकर मनाई जाती है। यह घटना १६ वीं शताब्दी की है।

(२) रामी सती—रामी सती का जन्म एटा ग्राम मे हुआ था। इनके

---

(१) यह बीकानेर डिविजन का सुप्रसिद्ध ग्राम है। यहाँ की बाड़ी में जसनाथजी का सुन्दर मन्दिर है, जिसका श्रेय समस्त ग्रामवासियों को है।

(२) इसी दिन दुमारणा, सोनियासर और घिटाळ में भी जागरण होता है।

(३) यह ग्राम तारानगर से उत्तर की ओर लगभग ७ कोस की दूरी पर है।

(४) यह ग्राम बीकानेर-दिल्ली रेलवे लाइन की छोटी स्टेशन है।

पिता का नाम विरमनाथजी था। ये मंडा शाखा के सिद्ध थे और पहले भर-पाळसर के निवासी थे। सती के भाई का नाम भाखूजी था। रामी सती का विवाह बेनीसर के गोदारा शाखा के सिद्ध जालूनाथजी के साथ हुआ था, जो बाद में बोलाणी ग्राम में बस गये थे।

रामी सती परम्परा से ही सत्यभाषिणी एवं ईश्वर भक्ता थी। रामी सती को बोलाणी में अपने घर चक्की पीसते समय अचानक ही सत चढ़ गया, पर घरवालों ने यह समझा कि रामी पागल हो गई है। अतः सती को मकान में बन्द कर बाहर ताले लगा दिये। जब ताले तत्क्षण ही टूट गये तब घरवालों को रामी पर सत चढ़ने का विश्वास हुआ।

रामी सती ने अपने आदि ग्राम बेनीसर में समाधि लेने का निश्चय कर लिया तो वह बोलाणी से यहाँ आ गई और विक्रम सं० १९२१ भाद्रपद शुक्ला तृतीया को उसने समाधि ले ली। इस सम्बन्ध में रामी सती की धायली जसनाथ सम्प्रदाय में बहुत प्रचलित है—

रामी सिंवरै स्याम नै, परसण काळल मात।
बारा धूणी धरम री, असत् न भाखो बात।
बेमाता ऊँट बाळिया, कायम लिख्या पुरास।
हर हर कर रामी उठ्या, हिरदै हुयो उजास।
अरज हुई बैकुँठ में, सुर तेतीसाँ कान।
भगत सताया स्याम रा, वेगा जाओ पियाण।
शिव सिंघासण काँपिया, काँप्या श्रीभगवानं।
हाथ जोड़ जालम कहै, सुण हो सगत औतार।
राकस धरती पर हरो, चालो थळी मँझार।
(घटै) सुर तेतीसाँ बैसणां, होवै होम हजार।
भाग थळी जसनाथजी, दुख खंडन सुखधार।
सती सतेढ़ा नीकळी, सती कियो सिणगार।
सुर तेतीसाँ बैसणां, चाल्या थळी मँझार।
छिलर हेल्या तट भर्‌या, जळ से भरी निवाण।

सूम न भीज्यो टेवँता, रती न लागी पाण ।
म्हारी थे पत राखस्यो, थारी श्री भगवान ।
बोळाणी सूँ विदा हुया, एटै लियो मल्हाण ।
पै'लो मेळो परिवार सूँ, मिल्या सगत हैं आय ।
सनमुख मिलतां भाइयाँ, थे मोळा'ज मिलिया काँय ।
कोई कळंक लगावस्यो, ईं झूटै जग माँय ।
ताराँ-पीहर-साररो, लाझण लावाँ नाँय ।
सायर नर साथै चलो, मूरख चालो'ज नाँय ।
सती सतेड़ाँ नीसर्‌या, अणभै खड़िया ताव ।
मळकीसर रै चौहटै, डेरा दिया है आय ।
स्याम सहेला नीसर्‌या, रुदन कियो मन माँय ।
लागी फेट'ज प्रीत री, दिल रहियो नेठाव ।
हाथ जोड़ जालम कहै, सुण हो सगत औतार ।
(म्हे) साथै सुरगाँ चालस्याँ, लारै रैवाँ'ज नाय ।
सती सतेड़ाँ नीसर्‌या, भोम दिवि सा पूठ ।
लालनाथ फिरणी फिरै, धरम राज रा पूत ।
उत्तम धरती थावटी, माँय छिपाया पूत ।
सती वचन यूँ भाखवै, म्हे आज कराँ वैकूँठ ।
भार उतारो भाइयाँ, पींगैं ल्यावो पलाण ।
धरम चौक डेरा करो, दूर करो केकाण ।
घर सिंगार्‌या साजियाँ, कंचन वरण सरीर ।
भर भादूड़ो ओसर्‌यो, नाडा भरिया नीर ।
मेळै आवै मेदनी, थळसर जाग्या पीर ।
सूरज गयो घर आपरै, नैणाँ आई नींद ।
पौ फाटी पगड़ो भयो, जागी जीया-जूण ।
दाता सब नैं पूरवै, चाँच परवाणै चूण ।

सासू थे सुभागिया, टिगस गुँथावो सीस ।
गावो सगत की छावळी, मंगळ विस्वा वीस ।
सती सिधाया सुरग नै, हाथ लियो नारेळ ।
हाथ लियो नारेल, सिमरण सेल स'माया ।
वैठा धारै जोय, गुरु रा जाप सुणाया ।
जपो गायत्री, करो होम, इन्द्र का जाप मनाया ।
लिखमाणों सुवस वसो, हंस गुरु दरसाया ।
वधे पोहर-रिवार, वधज्यो जोत सवाया ।
वधज्यो सासर वास, सिद्धजी रो मान वधाया ।
मंडळ भळकै मिण तपै, सूरज आयो मथार ।
सती वैठा समाध में, वूठा इमरत धार ।
सुरग सिधाया देवता, कळा रही संसार ।
सती सवद सुणाविया, (चतरनाथ) सारण कर्‌या विचार ।

अन्य जीवित समाधियां—

उपरोक्त जीवित समाधियों के अतिरिक्त निम्न स्थानों पर भी कई सिद्ध पुरुषों की जीवित समाधियाँ हैं—

हामेरा	एक	समाधि
राजपुरा	दो	"
मळकीसर	दो	"
कूदसू	एक	"
भाणीदा	"	"
नौहर	"	"
ठुकरियासर	"	"
सोमलसर	"	" २
सुमेरियाँ	दो	"
सत्तासर	एक	"
जेतसीसर	"	"
रोळ	"	"
रूणियाँ	"	"
दुसारणा	"	"
वरसिंगसर	"	"
बणियासर	"	"
अलवर	"	"
लालासर	"	"
उदरामसर	"	"
जासासर	"	"

परिशिष्ट

'सिभूधड़ा' का जसनाथ-सम्प्रदाय में महत्वपूर्ण स्थान है। यह एक प्रकार का, विशेषकर जसनाथी-साहित्य का, एक छन्द है। जसनाथी-साहित्य में प्रचलित समस्त 'सिंभूधड़े' यहाँ दिये जारहे हैं। इनका दूसरा नाम होमजाप भी है। हवन के समय इनका पाठ करना अनिवार्य है। ये 'सिंभूधड़ा' एक विशेष प्रकार की राग की उदात्त ध्वनि मे उच्चारित किये जाते हैं।

सिंभू धड़ा

मंगळ-गीत

ओं पाणी मंगळ पोणा बुध, धरती बिसपत सुकरो इन्द।
चन्दो थावर सूरज अदीत, नर वासंनर भणीयैं सोम।
दै देवता करसी होम।
जिण नगरी न जाइये, क्या जाणूँ कुण राह।
परभु थारो ब्याहड़ो, अलखे गोरख राव।
दीसँता गुरु बाळा भोळा, बोलन्ता बांवन वीरूँ।
सोइ बाण देवतां सान्ध्यो, गो पण खाँचां तीरूँ।
सीखो खोजो बिचरो विनो, खोज लियो गुरु वीरूँ।
गुरु रीखिया री हाल्यो नाहीं, डगर न पायो डांडो।
अकल विहुणा लंमनर हॉडै, जां'रै सत गुरु भयो न खांडो।

(१) ओ३म् यह सर्वाधार सर्वेश्वर परःब्रह्म परमात्मा का नाम है, ओ३म् मित्येकाक्षरम (गीता) प्रणव मध्य अक्षर ये तीनों एका (शिव० आ०) बिसपत=बृहस्पति। सुकरो=शुक्र। इन्द=इन्द्र। थावर=शनि, शनिवार। अदीत=आदित्य, रविवार। वासंनर=वैश्वानर, अग्नि। भणीयै=उच्चारण कीजिये। दै=देवी। होम=यज्ञ। उस नगरी में मत जाओ जिसका मार्ग संशयशील है। हे प्रभु गोरखराव आपका व्यवहार दृष्टिगोचर नहीं हो सकता। गुरु देखने में तो बड़ा भोला भाला लगता है पर बोलता हुआ बावन वीरों के समान है। बिचरो=विचरण करो, विचार करो। विनो=विनय। रीखियाँरी=ऋषियों की। हाल्यो=चला। डगर=पगडंडी। डांडो=राजमार्ग। खांडो=सहायक।

गोरख जोगी गर्प बिचार, ये तत जीतं सातौ वार।
आदित वार च्यौरि ले आप, आपा च्यौरत पुनि न पाप।
दूह पना तो आरम्भ परे, अनभै करि जमपुर परहरे।
सोमवार सनि पदम भरो, मनगुर गाजो दुनरि जिरो।

अहंकारे हिरणाकुस खिणो, कियो खण्ड विहंडो।
कलजुग में निकळंगी बाबो, (गुरु जसनाथ) जेरैं अवली थाणू ऊंडो।
निकळंग नै नित जप हो पिराणी, आयो वार हजारूं।
ताती वीरियाँ ताव न लाग्यो, ठाडी बीरियाँ ठारूं।
भिंभ वीरियैं सूर न जपियो, जांरै बोहोत हुवा कसखारूं।
करणी चूका कवल्यो भूला, से नर वार न पारूं
गोरखनाथूं खणै'ज खेती, एका खणै इकीसाँ बावै,
एकाँ परलै धंधु कार उड़ावै।
जाणी सो जिन ग्यान उपाई, क्रित न घालै भोळा।
धरती अर असमान विचाळै, त्यूं है पड़ै सैं तोळा।
पातस्या सोही पत भयेसी, खांन खोटां नै खोवै।
गरवा गोरख गुरु कर मानो, आणैं ग्यान धड़ै।

हिरणाकस = हिरण्यकश्यप। खिणों = नष्ट। खण्ड विहडो = टुकड़े-टुकड़े, बुरी तरह से खण्डित। थाणू = स्थान। ऊंडो = गहरा। निकळंक .... हजारूं = हे प्राणी। निष्कलंक भगवान् का जप (स्मरण) करो, बिना नाम जप के आवागमन नहीं मिट सकता। भगद्प्राप्ति के बिना जन्म मरण के हजारूं आवर्तन होते रहते हैं। ताती वीरियाँ = तप्त के समय। ताव = गर्मी। ठाडी=ठण्डी (जोधपुरी बोली में) ठारूं = ठण्डा, शीतल। भिंभवीरियैं = सूर्यास्त के समय। कसखारू = हानि। करणीचूका = कर्त्तव्य-च्युत। कवल्यो भूला = वचन-विस्मृत। से नर .. पारू = उस नर का कोई ठीकाना नहीं। खणै'ज = पैदा करना। (खोदना) परलै = प्रलय। धधुकार = धवलधुम्र। जाणी = जानने-वाला, परिज्ञाता। क्रित = कीर्तन, यश। त्यूं है = वैसे। पातस्या = बादशाह। सोही = वही। पत = प्रतिज्ञा। खोटा = बुरा। खोवै = नष्ट करे। गरवा = गौरवशाली। आणैं = लावे। ग्यानधडै = ग्यान रूपी तराजू। इति श्रीहोम जाप।

★ ★ ★ ★

दसवें द्वारि दीजै वध, तो अजरावर थिर हुवै कध।
मंगलवार अम्हे पाया भेव, आतमा अछै निरंजन देव।

ओं वड़ोते सिंभू सिरजण हार, सर्व रूप कियों विस्तार।
पाये धरती सीस गणार; ता सिंभू नै निमसकार।
धरती माता ओपण सिंभू, सर्वा सर्व सहिल्‌ भार।
गिरणा रूपी ओपण सिंभू, तारा मंडल तारो तार।
चँदा रूपी ओपण सिंभू, वाळी मूरत वाळ कुंवार।
सूरज रूपी ओपण सिंभू, आभ जोत तपै दीदार।
पाणी रूपी ओपण सिंभू, झर झर वरसै अमीं फूँवार।

(२) वडोत=वहुत वड़ा, विशाल। सिंभू=शंभु,शिव। पाये=पाद, पैर। गणार=आकाश। इस पद में भगवान्‌ शंकर की व्यापकता का वर्णन है। समस्त भार को सहन करने वाली माता धरती के रूप में भगवान्‌ शिव शोभामान हैं। गिरणा=आकाश। ओपण=शोभायमान। तारोतार=तारक समूह। वाळीमूरत=वालमूर्ति, सुन्दर आकृति। आभ=पानी। जोत=ज्योति, ब्रह्मज्योति तपै=तपता है। दीदार=दर्शन, स्वरूप। अमीं फूंवार=अमृत के फव्वारे।

पंच पुहुप, लै पूजा करौ, मति वुधि लै सिवपुरी सचरौ।
वधिवार मति वुधि प्रकास, अहि निसि रहिवा जोग अभ्यास।
दिढकरि लोचन आसापास: सिधि साधौ अमरापुरि वास।
यहगणपतिवार विषम मन लिया, ग्यान खडग लिया विग्रह किया।
अठ्ठ कोटि दल दीया पयाणा, जग मस्तकि वाजै नीसाणा।
सुन्यवार सूषिम जलसाधि, लहरि न पसरै सहज समाधि।
माया मारि मरि थिर जु होई, आत्मा परचै मरै न कोई।
थिरि थावर जु सनीचर वार, काया मध्ये सातौ वार।
सतगुरु मांझी उतरौ पार, गुसमवेद सुषमन विचार।
वेद पुराण पढ़ै चित लाइ, विद्या ब्रह्म कथ थिरि थाइ।
मछिन्द्र पसाइं जती गोरख कहै, सप्त वार कोई विरला लहै।
आदित अलिन्या सोम श्रवण, मगल सुन दरवाण।
वुध हिरदै ब्रस्पति नाभी, सुक्र तंद्री जांण।
सनि गुदा थाव राहुनै सेन, केत ते नासिका रहै।
सप्त वार नवग्रह देषता, कादा नीतरि श्रीगोरख कहै।

बिसना रूपी ओपण सिंभू, केवट जीमै अलप आहार।
पोणा रूपी ओपण सिंभू, गाजै बाजै हिंयाळी हॉस
सर्वा सर्व सहिल्ल भार।
जुग चोफेरी आप ऊपाना, परलै धुंधुकार।
बाहर सिंभू आप ऊपनो, भीतर सिरज्यो सो संसार।
इतरे चिलते जोग'ज लेणूं, म्हे पण सोहां तिण गुरु लार।
जिण गुरु रो ग्यान पुराणुं सराहनवी है, सुणज्यो दुनियॉ अेह विचार।
अन्त न दीनो भेद न पायो, तातैं कुहायो अलख अपार।
गुरु परसादे गोरख बचने, (श्रीदेव)जसनाथ(जी) बांचै सारां को सार।

बिसना = विष्णु। पोणा = पवन। गाजै बाजै = गर्जन तर्जन। हिंयाळी = हर्षो-उल्लास। जुग = जग। चोफेरी = चारों ओर से। ऊपाना = उत्पन्न किया। सो = सब। इतरे = इतने। चिलते = चरित्र, कार्यकलाप। जोग'ज = योग को। लेणूं = लेना। सोहॉ = अच्छे लगते हैं। तिण = (तिन) उन। गुरु लार = गुरु के पीछे। सरा = निकटवर्ती क्षेत्र। नवी है = झुकी है, नतमस्तक हुई।

* * * * * *

ओं पै'ला सिंभू आप अपना, जप्प रह्या निरकारूं।
जोग छतीसों न्यारा रहिया, कुहाया एकूंकारूं।
धरती माता नीवैं रचाई, सीस रच्यो गीणारूं।
जैरा पोन'र पाणी सिरज्या, चॉद सूरज दीदारूँ।
बिरमा बिस्न महेसर हुवा, कीया वेद विचारूं।
मॅडलाई को पडदो लियो, रूप रच्या ओतारूं।
मछ कछ हुंता ईसर हुवा, आप उपावण हारूं।
ईसर सिरज्या देता'र देवता, जहाँ कियो अहंकारूं।
देतां टोटै देवॉ लाहो, कही न मानी कारूं।

(३) पै'ला = पहिले। निरकारूँ = निराकार। जोग छतीसों = छत्तीसयुग। कुहाया = कहाये। एकूं कारू = एकाकार, एकात्मा। नीवैं = नींव, नीचे। गीणार = आकाश। पोन र = पवन। उपावणहारूं = उत्पन्न करने वाला। लाहो =

मछ कै रूप संखासर छेद्यो, सागर कियो खारूं ।
कछ कै रूप झवरख मार्‌यो, कटंक खायो काइ ।
कुरम रूप कलन्दर गायो, मार्‌यो घात सिंघारूं ।
सत जुग आयो हिरणा टायो, छळ मंड्यो छळ कारूं ।
सिंह्याँ मैंह्याँ सर्वे पाले, पाल्या मू'रत वारूं ।
निनाणवैं कोड़ा गढ हाकैं ढाया, निरसिंघ री जय कारूं ।
सत जुग में हिरणाकस छेद्यो, तीखि नहर पलारूं ।
सत जुग वरत्यो त्रेता आयो, त्रेता आयो वावन कुहायो ।
भिखे किये भिखारूं ।
वावन रुप छळ्यो वळराजा, देखळ्यो चट कारूं ।
परसा रुप सैसा अर्जुन छेद्यो, मार्‌यो खड़क उभारूं ।
घर दसरथ रै जद ओतरियो, लाखे लखण कुवारूं ।
वाण संजोय दुसमण नै वोयो, दसर दाणूं नै मार'र लायो छारूं ।
त्रेता वरत्यो द्वापर आयो, द्वापरआयो कान कुहायो वासक रो असवारूं ।
कान-कळा कंसासर छेद्यो, नूरे लखण कुवारूं ।
दस डालम अर सुगड़ो छेद्यो, दोड़या कोर'र वारूं ।
हिन्दु अर पारधिया दाब्या, माहे कीर कहारूं ।

लाभ । कारूं = कीर, नीच । खारूं = कड़वा । कलंदर = सर्पराज । घात = आघात । सिंघारूं = संहार । हिरणा = हिरण्यकश्यप । टायो = मार्‌यो । मंड्यो = मंडितहुआ । छळकारूं = कपट करनेवाला । सिंह्यों मह्यों = सादन वाहन । पाले = मना किया । पाल्या = वर्जित किया । मू'रत = मुहूर्त । वारूं = दिवस, वार । कोड़ा = करोड़ । हाकैं = गर्जकर । ढाया = नष्ट किया । पलारूं = धार देने की क्रिया । वावन = वामन-अवतार । भिखे = भिक्षुक । भिखारूं = भिखारी । चटकारूं = चमत्कार । उभारूं = उठाकर । ओतरियो = अवतार लिया । संजोय = संयुक्त कर । वोयो = निःशक्त करना । दसर दाणूं = रावण राक्षस । दस... कारूं = इन पंक्ति में राजा नगर का विवरण दिया है । **सुगड़ो** = राजा नगर ।

सुगड़ो अरज करै सायब्र नै, स्वामी सुणो पुकारूं ।
वो'ळा किरत किया उण राजा, नाव रह्यो पण मोखन पायो
अगत्यो गयो गिवारूं ।
भागीरथ सिव शंकर सेयो, ल्यायो गॅग सुवारूं ।
जटा मुकट सोह जा हर नै, वीं कियो (मुकुट) जल पारूं ।
जद तद गंगा सोरम पाटे, दस डालम (सिंभू) जयकारूं ।
बुध रूपी पांचु पांडू सिरज्या, जासूॅ ठाकर हेत पियारूं ।
कोड़ अठारा कैरू छोदया, जाँ कियो अहंकारूं ।
द्वापर वरत्यो कलजुग आयो, कलजुग आयो निकळॅग कहायो
काळॅग रिप किरतारूं ।
काळॅग रो 'जी' सनकै जासी छेदै, संत उपगारूं ।
थोड़ा थोड़ा हसम घालै, नाचै धर गैणारूं ।
गणा मंडल में तारा नाचै, वणी अठारह भारू[1] ।
लंका त्रिलंका मेळ मिलाया, उदगर नाचैं मेर तणा हथियारूं
सिद्ध कुळी में कान भणीजै, किसन-कळा किरतारूं ।

पुकारू = प्रार्थना । वो'ळा = ज्यादा । मोख = मुक्ति । अगत्यो = अवगति । गिवारू = मूर्ख, ग्रामीण । निकळग = निष्कलक । काळग = कलियुग के अन्त मे होने वाले महा दानव राक्षस जिसको कल्कि अवतार नष्ट करेंगे । जसनाथी साहित्य मे काळग के सम्बन्ध में काफी विवरण मिलता है । 'निकळंग परवाण' इसी सम्बन्ध मे एक स्वतत्र रचना है । सनकै = सिहरन । उपगारूं = उपकारी । वणी अठारा भारू = अठारह प्रकार की वनस्पति । कलियुग के अन्त मे होने वाले 'काळग' राक्षस के मारने को भगवान् छत्रधारी त घोड़े पर बैठ कर जय धावा बोलेंगे उस समय लंका और विलका एक जायेगी । काळग को मारने के निमित्त भगवान् उदयगिरि तथा

(१) उठारह और 'अठारह भार' सन्त और योग साहित्य में वनस्पति के लिए ई बार आता है । कबीर का यह पद मिलाइये— 'अठारह भार वनासपति हिये गिर परवत से भरे' ।

भाग थळी ओतार लियो है, कुणलह अन्त'र पारूं।
खोजिया खोजी रेहु रहोजी, वांचै है ओतारूं।
जुगां जुगां रा दिवें नवेड़ा, अवच वाचणहारूं।
पैलाणैं गुरु मोरत भेज्या, पाछैं लखण कुंवारूं।
जपो ईसर ध्यावो गोरख, आप उपावण हारूं।
पांच पूर्व गुरु नांव कुहावै, जप रह्या निरकारूं।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी) वांचें इमरत
निज सारांई सारूं।

सुमेरु पर्वत का हथियार बनायेंगे। कुण लह = कौन ले सकता है। अन्त'र पारूं = अन्त और पार। खोजिया = पद-चिह्न। खोजी = खोज करने वाला (परम तत्व को समझने वाला)। रेहु = रहने वाले। रहोजी = रहगये। नवेड़ा = अन्त। पैलाणैं = पहले।

* * * *

ओं विस्नु ध्याया आव वधै, गोरख ध्यायां रिछा।
ईसर ध्यायां मोख मुगत, चाँद सूरज दो साखी।
ईसर वाचैं ओ जुग सिरज्यो, सिरज्यो सब संसारूं।
चवदं भवन घड़या इक घाई, पैला पार अपंपर पारूं।
काया कोठी जीव'ज गढवो, मनस्या मुदे मुदारूं।
सील नगरी गोरखजी बैठा विस्ना धंधु कारूं।
म'ल सेज में ईसर(जी) (नैं) गोरख भेट्या, भळकंतै दीदारूं।
जे नर से नर धरम जहाँ पल, करणी चाली-सारूं।

(४) ध्यायों = ध्यान करने से। आव = आयु। रिछा = रक्षा। मोख मुगत = मोक्ष-मुक्ति। साखी = गवाह, साक्षी। इक घाई = एक साथ ही। अपपर = अपरम्पार। काया जो है वह तो एक कोठी है और उसमें रहने वाली जीवात्मा एक प्रहरी की तरह है इसमें प्रधान स्फुरनकारी इच्छा ही मुख्य है। जिसने शील व्रत लिया उसको भगवान का साक्षात्कार हुआ। भळकंतै = चमकता हुआ। जे नर से नर ·· सारूं = वे मनुष्य ही वास्तव में मनुष्य हैं

ईसर देव सिधां में साधक, जुग जुग रो ओतारूं ।
ईसर जाटे जटवो राजे रजवो, बाणीड़ै बिणजारूं ।
ईसर सारा हुंता खोखर करल्यै, खोकर करल्यै सारूं ।
ठाला छलै भरया रितावै, करसी खोट भनारूं ।
इसर लाहे लाह्य खुदाये खुदावो, आपो है निरकारूं
ईसर पीरे पीर दरगाये दरवेस, नित छाजै निरकारूं ।
सन्यासी ये सन्यासी, जोगी ये जोगी, सरेवड़ो सरेवड़ो
आपो है जट धारूं ।
ईसर मीठा मेवा ओरां सोंपै, आप चरै बिस खारूं ।
ईसर खोटे खोटो असले मोटो, कूड़ा साथ खवारूं ।
ईसर आप ही गाजै आप ही गुड़कै आप ही बरसण हारूं ।
ईसर आप ही, जम आपही जरवाणों आप ही जंवर जिनारूं ।
ईसर गास पियाले चक चोफेरी धुंध लियो धुंधकारूं ।
चान्द सूरज मस्तक ईसररै सीस भळकै तारूं ।
ईसर दीने दीन मुरते मूरत, वार जिसो दितवारूं ।

जिनके पल्ले (पास) धर्म है और करणी (सुकृति) के अनुसार चलते हैं। ईश्वर जन्म लेकर कर्म को जागृत करता है, इस क्रम से ईश्वर के अवतार होते रहते हैं। ईश्वर जाट मे जाट स्वरूप है, राजा में रक्षा स्वरूप है और बनिये में वाणिज्य स्वरूप है। सारा=सम्पूर्ण, साबत । हुता=होते हुए । खोखर= खोखला, जीर्ण शीर्ण । सारूं=सुचारू । ठाला=खाली, रिक्त । छलै=भरना। करसी=करेंगे। खोट भनारू =बुरे आदमियो को नष्ट करने वाले हैं। छाजै =शोभा देता है । ओरा=दूसरो को । खोटे खोटो=बुरो के साथ बुरा । असले मोटो=अच्छों के लिये अच्छा। कुडा=झूठा, मिथ्यावादी । खवारूं =क्षय करने वाला। जरवाणों=यमदूत । जवर=यम । जिनारूं=जीव। दरवेस=दरवेश जिसको दर का ज्ञान होगया हो अर्थात ब्रह्म की प्राप्ति होगई है। सन्यासी=जिसे 'सोऽहं' की अनुभूति होगई है, स्वयं ब्रह्म है।

ईसर उतरे उत्तर दिखणे, दीखण पूरबे पूरब पिछम हे
निरकारूं ।
वण तिण त्रिभण नूर ईसर रो, वणी, अठारा भारूं ।
अटकळ परबत नूर ईसर रो, सायर सात पखारूं ।
सुरनुर कोड़ों देई देवता, कहिये ईसर गोत परवारूं ।
ईसर'रै कोई खेड़ न खड़बड़, तुरी न ताजी न घोड़ो उलठाणूं ।
धरती अर असमान विचाळैं, भागां न धैं जाणूं ।
पैलाणै गुरु दैत गडीरयो, थापो है जट धारूं ।
उत्तमे उत्तम खुमसी ईसर, भळ लेसी रजवारूं ।
कूड़ै मन न ध्याय पिराणी, हुय जपियो हुंसियारूं ।
जपो ईसर ध्यावो गोरख, आप उपावण हारूं ।
पांच पूर्व गुरु नांव कुहायो, जप रहियो निरकारूं ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी असली ज्ञान विचारूं ।

वणा=वनस्पति। तिणा=तृण। त्रिभण=त्रिभुवन। नूर=स्वरूप। अटकळ=अष्ट कुलि पर्वत[1]। पखारूं=प्रक्षालन करने का भाव। भागा=दौड़ने पर। गडीरयो=गाड़ दिया, नष्ट कर दिया। खेड़=खेद, चिन्ता। खड़बड़=उपाधि। धरती ...जाणूं। धरती और आसमान के बीच अपराधी को ईश्वर बिना दण्ड दिये नहीं रहता। खुमसी=खमस, उत्पात।

इन सिभू-धड़ों के विषय में ऐसा मत है कि इनके रचयिता सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के पाटवी शिष्य श्री हारोजी हैं। दूसरा यह भी मत है कि हारोजी ने तो केवल गुरु-प्राप्त सिभू-धड़ों को श्रद्धालु जसनाथी सिद्धों एवं भक्तों में प्रचारित ही किया है। वि० संवत् १९०४ की एक हस्तलिखित प्रति (क) में

(१) महाभारत के अनुसार कुल पर्वत सात ही हैं—महेन्द्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्षवान्, विन्ध्य और पारियात्र। सम्भवतः योगवार्त्तिकों ने हिमवत् को भी उसमें जोड़ा है। हिमवत् का हिन्दू-संस्कृति में बड़ा महत्व माना जाता है।

(जो हमारे सग्रह में है) पद के अन्त में "सभोग" के स्थान पर "श्री देव जसनाथजी" ऐसा लिखा हुआ है। अन्य (ख) और (ग) प्रति में भी ऐसा ही लिखा हुआ पाया जाता है। जसनाथी सिद्ध लोग भी पद्यान्त में "श्री देव जसनाथजी" उच्चारण करते हैं। अपनी ही विशेपत' रचना में यद्यपि ' जी" लिखना भारतीय सत परम्परा नहीं है, फिर भी ऐसा लिखागया एवं कथन किया जाता है। इससे तो यही अनुमान लगाया जाता है कि बाद की शिष्य परम्परा तथा प्रतिलिपिकारों ने अपने आदि गुरु के प्रति "जी" लिखकर सम्मान प्रकट किया है। तीसरे सिंभू-धडे की यह पक्ति— "भाग थळी ओतार लियो है कुण लह अन्त'र पारू" ऐसा आभास प्रकट करती है कि संभवत: ये पंक्तिया उनके शिष्यों की रची हुई हों, किन्तु अधिक जनमत सिद्धाचार्य की रचना के पक्ष में ही है। यही धारणा, आगे अकित "कोडों" के विषय में जाननी चाहिये।

कोड़ा

ओं तंते मंते जोत जगाई, थांकै वचने काया उपाई ।
मीठो थां सागर सोस्यो, खारो कियो थांई ।
प'लैं दीपक चन्दो सिरज्यो, सिरजी सिस्ट सुवाई ।
दूजैं दीपक सूरज सिरज्यो, सूरज जोत सुवाई ।
अंग हुँता ईसर गोरां सिरज्या, गोरख कळा जगाई ।
एकैं हाथ न ताळी वाजै, रळ दोय काया उपाई ।
मछ कै रूप संखासर वेध्यो, सागर कियो छांई ।
कछ कै रूप होय ज्ञवरख मारयो, वोह गयो विण आई ।
नारसिंघ हिरणाकस छेद्यो, सतजुग वार कुवहाई ।
कोड़ पनारै टोटै दीनी, पाँचा धर पोंचाई ।
पांचा रो मांझी है पहलादो, पहलादै नै मान वडाई ।
थे उण राजा री करणी हालो, जो मत पार लंघो मोरा भाई ।
सो गुरु सदा सिंवर हो पिराणी, थाँरी उमत आव उपाई ।
उमत घटती वाचा वधती, जै गुरु गोरख जाग जगाई ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) वांच सुणाई ।

॥१॥ ओं=ओ३म् । तंते=तन्त्र या पंचतत्वादि । मते=मन्त्र, मन्तव्य । =ज्योति । जगाई=जागृत की । उपाई उत्पन्न । थां=आप । सोस्यो= [illegible] किया । थांई=आपने ही । सिस्ट=सृष्टि । दूजैं=दूसरे । अंग हूँता= आपके होते हुए भी अंग (पिण्ड) पिण्ड राजस्थानी में अपने शरीर के व्यवहृत होता है । गोरां=गौरी, पार्वती । एकैं हाथ= एक हाथ से । [illegible]=ताली, करतल-ध्वनि । रळ=मिलकर । विण आई=बिना आई, [illegible] । कोड़पनारैं ..... मान वडाई=भक्तराज प्रह्लाद के सत्संग से करोड़ मनुष्यों का उद्धार हो गया, उन विमुक्त पुरुषों के नेता भक्तराज [illegible] सन्मान और बड़ाई के पात्र हैं । आप लोग भी उस राजा के अनुकर- [illegible] (करणी) पदचिन्हों पर चलो । जिस मत पर चलने से (इस भवसागर से) [illegible] जाओगे । आव=आयु ।

* * * *

सत जुग बरत्यो त्रेता आयो, त्रेता आयो बावन कुहायो
भिखे कियो भिथारूं ।

बावन रूप छळयो बळराजा, झुझमुवा दोय भाई ।
रामां रूप दसासिर छेद्यो, लाखणजी नै मान बड़ाई ।
जुग त्रेता में राव हरीचन्द, जिण धरम किन्या परणाई ।
जिण डीकरड़ी रो नाव छो जसरति, जसरत तास जवाई ।
सांहण वाहण राजा सोंप्या, सोंपी आण दुहाई ।
कोड़ इकाइसों टोटै दीनी, सातां धर पोंचाई ।
सातां रो मांझी राव हरीचन्द, राव हरीचन्द (नै) मान बड़ाई ।
थे उण राजा री करणी हालो, जो मत पार लंघो मोरा भाई ।
सो गुरु सदा सिंवर हो पिराणी, थारी उमत आव उपाई ।
उमत घटती वाचा बधती, जै गुरु गोरख जाग जगाई ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ (जी) वांच सुणाई ।

॥२॥ बरत्यो=व्यतीत हुआ । रामारूप=राम के रूप में । दसासिर=दशानन, रावण । परणाई= विवाह किया । डीकरड़ी=लड़की । रो=को । छो=हो । तास=उसका ।

☆ ☆ ★ ★

त्रेता बरत्यो द्वापर आयो, द्वापर आयो कान कुहायो
रुखमण साथ चलाई ।

कान कळा कसांसर छेद्यो, कंस चाणूर दोय भाई ।
दस डालम अर सुगड़ो छेद्यो, उपर फेरी छाई ।
बुध रूपी पांचू पांडू सिरज्या, जां कुन्तादे माई ।
कोड़ सताईस टोटै दिनी, नवां धर पोंचाई ।
नवां रो मांझी राजा जहुठळ, राव जहुठळ (जी) नै मान बड़ाई ।

॥३॥ रुखमण=रुक्मणी । डालम=ईश्वर । जहुठळ=युधिष्ठिर ।

थे उण राजा री करणी हालो, जो मत पार लंघो मोरा भाई ।
सो गुरु सदा सिंवर हो पिराणी, थारी उमत आव उपाई ।
उमत घटती वाचा वधती, जैं गुरु गोरख कळा सुणाई ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी) वांच सुणाई ।

× × × × ×

द्वापर वरत्यो कळजुग आयो, कल्जुग आयो नर निकळंगी
श्रीजसनाथ कहायो जिण धर गणार उपाई ।
पवन पाणी रा हीर ढुळैला, वेदन तोड़ गिड़ाई ।
कोड़ छतीसां टोटैं दिनी, बा'रा धर पोंचाई ।
बा'रां रो मांझी गुरु निकळंगी (श्रीजसनाथजी) उण सायब
ने मान वड़ाई ।
थे उण सायब री करणी हालो, जो मत पार लंघो मोरा भाई ।
सो गुरु सदा सिंवरो हो पिराणी, थारी उमत आव उपाई ।
उमत घटती वाचा वधती, जैं गुरु गोरख जाग जगाई ।
गुरु परसादे गोरख वचने, (श्रीदेव) जसनाथ(जी) वॉच सुणाई ।

४ वेदन = वेदना ।

× × × × ×

कोड़ा पनारा, कोड़ा इकीसां, कोड़ा सताइस, कोड़ा छतीसों
चोहां जुगां री बांध'र भार ।
कोड़ा निनाणवें टोटैं दीनी, अंता चलया मन आई ।
जोंनें कड़कड़ करता कीड़ा खासें, बांटे जंवर वधाई ।
कोई कह म्हारो काको पिता, कोई कह म्हारो भाई ।

२- पनारा = पन्द्रह । टोटै = हानि होना । जोंनें = जिनको । कड़कड़ = कोधित होकर । खासैं = खाते हैं । जंवर = यम ।

भगवें का मन्त्र—

ॐ ब्रह्मेति विचार लखाया
अणहद वाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
एश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
एश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रंगत होई
लिछमी विद्या रूप सुवाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार से धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे कर्‌या विचारा
तीन लोक से धागा न्यारा
जो राखै धागे री ध्यान
सो पावे वैकुण्ठा धाम
धागा मन्त्र संपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नैं कैया

ॐ ब्रह्मेति विचार लखाया
अनहद वाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
ऐश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
ऐश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रंगत होई
लिछमी विद्या रूप सुवाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार से धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे करया विचारा
तीन लोक से धागा न्यारा
जो राखे धागे री आस
सो पावे वैकुण्ठा वास
धागा मन्त्र सपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ ने कैया

भगवें का मन्त्र—

ॐ ब्रह्मेति विचार लखाया
अणहद वाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
एश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
एश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रंगत होई
लिछमी विद्या रूप सुवाई
परम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग मे भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार मे धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे करया विचारा
तीन लोक मे धागा न्यारा
जो राखें धागें री आस
सो पावें वैकुण्ठा वास
धागा मन्त्र संपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नें कैया

ॐ अघात विचार लखाया
अणहद वाणी सवद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
एश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
एश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रगत होई
लिछमी विद्या रूप सुवाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण साया

धागा मन्त्र—

ॐ कार से धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे करया विचारा
तीन लोक से धागा न्यारा
जो रास्वै धागै री आन
सो पावै वैकुण्ठा वास
धागा मन्त्र संपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नै कैया

भगवें का मन्त्र—

ॐ ब्रह्मेति विचार लखाया
अणहद वाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवॉ भगवान दिराया
एश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
एश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रंगत होई
लिछमी विद्या रूप सुचाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार मे धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे करया विचारा
तीन लोक मे धागा न्यारा
जो राखै धागै री आस
सो पावै वैकुण्ठा वास
धागा मन्त्र संपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नै कैया

न्त्र—

ॐ ब्रह्मेति विचार लखाया
अणहद वाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
एश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
एश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रंगत होई
लिछमी विद्या रूप सुवाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरु गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार मे धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे करया विचारा
तीन लोक से धागा न्यारा
जो राखे धागे री आन
सो पावे वैकुण्ठा धाम
धागा मन्त्र संपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नें कंया

भगवें का मन्त्र—

ॐ भ्रमोति विचार लखाया
अनहद वाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
ऐश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
ऐश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रंगत होई
लिछमी विद्या रूप सुवाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार मे धागा आया
तीन लोक धागे मे पाया
धरम धागे कर्या विचारा
तीन लोक मे धागा न्यारा
जो गावै धागे री छान
सो पावै वैकुण्ठा धाम
धागा मन्त्र संपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नै कैया

ॐ ब्रह्मेति विचार लखाया
अणहद वाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
एश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
एश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रंगत होई
लिछमी विद्या रूप सुवाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार से धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे करया विचारा
तीन लोक से धागा न्यारा
जो राखें धागे री आन
सो पावें बैकुण्ठा धाम
धागा मन्त्र संपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नें कैया

भगवें का मन्त्र—

ॐ ब्रह्मेति विचार लखाया
अणहद वाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
एश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
एश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रंगत होई
लिछमी विद्या रूप सुवाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार मे धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे करया विचारा
तीन लोक मे धागा न्यारा
जो राखे धागे री आन
सो पावे वैकुण्ठा धाम
धागा मन्त्र संपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नें दैया

भगवें का मन्त्र—

ॐ ब्रह्मेति विचार लखाया
अणहद वाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
एश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
एश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रंगत होई
लिछमी विद्या रूप सुवाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग सुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार मे धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे कर्‌या विचारा
तीन लोक से धागा न्यारा
जो गसें धागे री आन
सो पावें वैकुण्ठा धाम
धागा मन्त्र संपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नें कैया

भगवें का मन्त्र—

ॐ ब्रह्मेति विचार लखाया
अणहद बाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
एश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
एश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रंगत होई
लिछमी विद्या रूप सुवाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार से धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे करया विचारा
तीन लोक से धागा न्यारा
जो बांधे धागे री आन
सो पावे वैकुण्ठा धाम
धागा मन्त्र संपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नै दैया

ॐ ब्रह्मेति विचार लखाया
अणहद वाणी सबद सुणाया
जो खट भग भगवान उपाया
कर भगवाँ भगवान दिराया
ऐश्वर्य जस धरम सु पाया
लिछमी ग्यान विराग लखाया
ऐश्वर्य चादर जस जळ धोई
ग्यान गेरू कर रंगत होई
लिछमी विद्या रूप सुधाई
धरम गुरू निज ग्यान लखाई
त्याग विराग जोग सु पाया
श्री गुरू गोरखनाथ सुणाया
या भग से भगवा सिध होया
सो सिध जोग जुगत कर जोया
जसोनाथ गुरू देव लखाया
भगवा जाप सु पूरण माया

धागा मन्त्र—

ॐ कार से धागा आया
तीन लोक धागे में पाया
धरम धागे करया विचारा
तीन लोक से धागा न्यारा
जो राखै धागै रो आन
सो पावै वैकुण्ठा धाम
धागा मन्त्र संपूरण भया
श्री गोरखनाथजी जसनाथ नैं कैया

पाणी ऊपर हालणूं, नखतर जोवंदा
निरगुण पारे ऊतरै, पापी डूबंदा
अरजन रिख मेळा हुया, वातां बूझंदा
मैं तनै बूझूं अरजनां, तू क्यूं आवंदा
हम को हरजी भेजिया, तम को तेड़ंदा
पाँव पसार्या परम गुरु, माटी काढ़ंदा
गोडै ऊपर गोमदै, एक पतर घडंदा
चावळ ले'र चाढ़िया, तळ आग जळंदा
भात परूसै परम गुरु, तीनूं जीमंदा
सतजुग पौ'रो थरपियो, जुग जाप जपंदा
तिरपत हुया देवता, मैं छावूं छंदा
कर जोड़ै कूंपो भणै, जुग थारा वंदा

सिद्धाचार्य के आविर्भाव सम्बन्धी—

सुरता अलख सरेविये, कीजै हर का जाप
जिभिया हर गुण गाइये, कटै काया का पाप
मनस्या रूपी माहुवो, खोल'र देखो ताक
भेळा इतरा पातर्‌या, जसवेन जाएया जाट
जुग मिरज्यो, जोड़ो रच्यो, मनस्या देवा साथ
देव'र दाणां निरदळ्या, खड़ग वजाई हाथ
सिम्भू री चढ़ी, गुरु गोरख नव नाथ
थळ-सर आसर थरपियो, मात सती जगनाथ
सेवै वासग हर नांव रो, से नर पावै जात
कर जोड़ै सुरतो भणै, जाग जती जगनाथ

विपरीत मान्यताओं के खण्डन-रूप में सिद्ध देवोजी ने यह 'सबद' [illegible] दिये हैं, यथा —

पहियां आगे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] मन पायो देवजी, बूझै [illegible] [illegible]
[illegible] कियो अनमान [illegible], [illegible] जुग [illegible]

...गुण पार ऊतरै, पापी डूबदा
अरजन रिख भेळा हुआ, वातां बूझदा
मैं तनैं बूझूं अरजनां, तू क्यूं आवंदा
हम को हरजी भेजिया, तम को तेड़ंदा
पॉव पसार्‌या परम गुरु, माटी काढंदा
गोडे ऊपर गोमदै, एक पतर चढ़दा
चावळ लेहर चाढ़िया, तळ आग जळदा
भात परूसै परम गुरू, तीनूं जीमदा
सतजुग पौ'रो थरपियो, जुग जाप जपंदा
तिरपत हुआ देवता, मैं छावूं छदा
कर जोड़ै कूंपो भणै, जुग थारा वदा

सिद्धाचार्य के आविर्भाव सम्बन्धी—

सुरता अलेख सरेवियै, कीजै हर का जाप
जिभिया हर गुण गाईये, कटै काया का पाप
मनस्या रूपी माहुवो, खोल'र देखो ताक
भेळा इतरा पातर्‌या, जसवंत जाण्या जाट
जुग मिरज्यो, जोड़ो रच्यो, मनस्या देवा साथ
देव'र दाणो निरदळ्या, खड़ग बजाई हाथ
सिम्भू री चढ़ो, गुरु गोरख नव नाथ
थळ-सर आसर थरपियो, मात सती जसनाथ
नैवे वामण हर नांव रो, से नर आवे जात
हर जोड़े सुरतो भणै, जाग जती जसनाथ

विपरीत मान्यताओं के खण्डन-रूप में सिद्ध देवोजी ने यह 'सबद' लिखियो है यथा:—

पड़ियाँ आगे चीलती, अरज हम अरथान
दुः मन पायो देवतो, बूझै गोठै जान
गी... नेवो प्रमगान ग, ला...गो जुग ...रगान

पाणी ऊपर हालणूं, नखतर जोवदा
निरगुण पार उतरै, पापी डूबंदा
अरजन रिख भेळा हुया, बातों बूझंदा
मैं तनैं बूझूं अरजनां, तू क्यूं आवदा
हम को हरजी भेजिया, तम को तेड़दा
पाँव पसार्‌या परम गुरु, माटी काढंदा
गोड़ै ऊपर गोमटै, एक पतर घडदा
चावळ लेकर चाढ़िया, तळ आग जळदा
भात परूसै परम गुरु, तीनूं जीमंदा
सतजुग पौ'रा थरपियो, जुग जाप जपदा
निरपत हुया देवता, मैं छावूं छंदा
कर जोड़ै कृ'पो भणै, जुग थारा वदा

सिद्धाचार्य के आविर्भाव सम्बन्धी—

सुरता अलख सरेवियै, कीजै हर का जाप
जिभिया हर गुण गाइयै, कटै काया का पाप
मनस्या रूपी माहुवो, खोल'र देखो ताक
भेळा उतरा पाँतर्‌या, जसवँत जाण्या जाट
जुग सिरज्यो, जोड़ो रच्यो, मनस्या देवा साथ
देव'र दाणो निरदळ्या, खड्ग बजाई हाथ
सिम्भू री चढ़ा, गुरु गोरख नव नाथ
जळ-सर आसर थरपियो, मात सती जगनाथ
मे'वै बामण हर नाँव रो, से नर आवै जान
कर जोड़ै सुरतो भणै, लाग जती जगनाथ

विपरीत मान्यताओं के खण्डन-रूप में सिद्ध देवोजी ने यह 'सबद' बोलना है, यथा.—

पढिया आगे वीनती, अरज करे परवान
तुरत सब पायो देवजी, बूझे [illegible] नाव
[illegible] कियो अनमान [illegible] [illegible] जुग सरमान

जेसोजी के विचार—

चाऊ माहीं चायबो, श्री देवॉ रो गॉव ।
अलख निरजन ओतर्‌या, नारायण निज नाव ।
गिगन गळै री मेखळी, धरण दुलीचा ठॉव ।
सीत सति अर सारदा, आया लिछमण राम ।
भरत चतर घिन आविया, सन्ता सार्‌या काम ।
हुणवत हीड़ा सारिया, लिखिया वह बिदाम ।
जेसोजी जस भाखिया, मनस्या राखो मान ।

ऐतिहासिक तथ्य—

थळी, प्र० अ० पृ० १०, इस भूखण्ड का नाम, प्राचीन काल में यह था। कतरियासर से तीन कोस की दूरी पर उत्तर की ओर ऐसे अवशेष अब भी प्राप्त होते हैं, जिनसे स्पष्ट जाना जाता है कि पहले यहॉ कोई बड़ा शहर था। कतरियासर के किसी किसान को एक बार यहॉ हल चलाते समय एक मिट्टी के बर्तन का टुकड़ा (ठोकरी) मिला था, जिस पर 'भागनगर' लिखा हुआ था।

श्याम पाण्डिया—प्र० अ० पृ० १३ श्याम पाण्डिया के सम्बन्ध में राजस्थान के बड़े बूढ़ों की जबान पर अनेकों अलौकिक संस्मरण थिरकते रहते हैं। ये अपने समय के लोकप्रिय जननायक हुए हैं। इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने जयपुर महाराजा के आमन्त्रण पर एक ऐसा वृहद् यज्ञ किया था, जिसके फलस्वरूप विधर्मी सल्तनतें नष्ट हो गईं। यह भी प्रसिद्ध है कि इनकी धोती आकाश में निराधार सूखा करती थी। ये 'का'यल' पाण्डिया थे। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक इन्हीं श्याम पाण्डिया के वंशज हैं।

मघानाथ पोळिया—प्र० अ० पृ० १५। ये कतरियासर के भूतपूर्व सिद्धजी सुखनाथजी के शिष्य थे।

चौरासी बाड़ियाँ—प्र० प्र० पृ० १६। जसनाथ-सम्प्रदाय' की मुख्य बाड़ियों की संख्या चौरासी ही मानी गई है। पूर्वकाल में चौरासी सिद्धों ने अवतरित होकर इनकी स्थापना की थी।

पोथी बाँचाँ पेसनूँ, सत गुरु सबदाँ माय
जेठाँ विलखी बनास्ती, घर डाकण ज्यूँ खाय
सावण रचवन्ती धरा, मनस्या पूरी आय
फळै'ज फूलै बनास्ती, सोरम सुरगाँ जाय
तेतीसाँ रा मन रळ्या, भँवर रिया भणकाय
पाँचू पाण्डू जागिया, छठि कुन्तादे माय
गोरख जोगी जागिया, सींगी नाद बजाय
कान किसन हर जागिया, गढ़ मथरा रै माँय
जैती खोस्या पोसवाँ, गोप्याँ दिया लुटाय
चान्द-सुरज दो भावियो, पून'ज पाणी, तोय
श्रै कुण बाय'र राखिया, मोय बतावो तोय
सकळ दीप नौ खड मे, श्रै कद रै सी सोय
एक घडी ओझट हुयाँ, सो जुग परळै होय
कायम कोठा छाँडिया, बूठा अमो ज' धार
घास होवै खड़ दोखडा, गऊ तजै सिर भार
पुरख तजैला गोरियाँ, माय तजैली बाळ
इतरी नौ खड पिरथवी, हाँडै घर घर बार
पढ़ियाँ सिद्ध देवो कह, देव सूताँरा एह विचार

रुस्तमजी के विषय में—

अलख निरजन गोरख सिम्भू, सत री वात कै'वाणी
उतपत हिन्दु, जरणा जोगी, करणी सिद्ध वखाणी

चाऊ के विषय में टेम ब्राह्मण के विचार—

धिन चाऊ को लोग, श्याम का दरसण पावै।
अरस परस आदेश, नित उठ पोखर न्हावै।
धिन रूंख विरछ सब जीव, धिन है वास सुवासा।
टेम' कह गुरु दातार, स्वामी पूरं दिल री आसा।

जैसोजी के विचार—

चाऊ मांही चायवो, श्रो देवां रो गांव।
अलख निरंजन श्रोतर्या, नारायण निज नाव।
गिगन गडै री मेखळी, धरण दुलीचा ठांव।
सीत सति अर सारदा, आया लिछमण राम।
भरत चतर त्रिन आविया, मन्ता मार्या काम।
हुणवत हीड़ा सारिया, लिखिया वह त्रिदाम।
जैसोजी जस भाखिया, मनस्या राखो मान।

ऐतिहासिक तथ्य—

थळी, प्र० श्र० पृ० १०, इस भूखण्ड का नाम, प्राचीन काल में यह था। कतरियासर से तीन कोस की दूरी पर उत्तर की ओर ऐसे अवशेष अब भी प्राप्त होते हैं, जिनसे स्पष्ट जाना जाता है कि पहले यहाँ कोई बड़ा शहर था। कतरियासर के किसी किसान को एक बार यहाँ हल चलाते समय एक मिट्टी के बर्तन का टुकड़ा (ठीकरी) मिला था, जिस पर 'भागनगर' लिखा हुआ था।

श्याम पाण्डिया— प्र० श्र० पृ० १३ श्याम पाण्डिया के सम्बन्ध में राजस्थान के बड़े बूढ़ों की जबान पर अनेकों अलौकिक संस्मरण थिरकते रहते हैं। ये अपने समय के लोकप्रिय जननायक हुए हैं। इनके विषय में यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने जयपुर महाराजा के आमन्त्रण पर एक ऐसा वृहद् यज्ञ किया था, जिसके फलस्वरूप विधर्मी मन्तनते नष्ट हो गई। यह भी प्रसिद्ध है कि इनकी धोती आकाश में निराधार सूखा करती थी। ये 'का'यल' पाण्डिया थे। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक इन्हीं श्याम पाण्डिया के वंशज हैं।

मघानाथ पोळिया—प्र० श्र० पृ० १५। ये कतरियासर के भूतपूर्व सिद्धजी तुलनाथजी के शिष्य थे।

चौरासी बाड़ियाँ—श्र० प्र० पृ० १६। जसनाथ-सम्प्रदाय' की मुख्य बाड़ियों की संख्या चौरासी ही मानी गई है। पूर्व काल में चौरासी सिद्धों ने अवतरित होकर इनकी स्थापना की थी।

डाबला--अ० प्र० पृ० १७। यह डाब (दर्भ) शब्द से बना है। इस तालाब के निकट डाब अधिक होने के कारण ही इसका यह नाम पडा।

जाणीवा--अ० दू० पृ० ७३। यह ग्राम चाऊ के पास है।

सवाईदासजी--अ० तृ० पृ० ४१। ये कालडी के रामदेवजी के मन्दिर के पुजारी थे। इनके बारे में यह प्रसिद्ध है-कि एक बार रामदेवजी का बहुत बड़ा 'जागरण' था और समीप ही किसी सेवक के यहाँ जसनाथजी का जागरण था। इन्होंने रामदेवजी के जागरण को महत्व देकर जसनाथजी के जागरण की कटु आलोचना की। रात्रि में जसनाथजी ने दर्शन दिये और कहा, "साधक के लिए कोई देवता छोटा बडा नहीं होता।" इसी भावना से प्रेरित होकर इन्होंने जसनाथजी का 'जलम-भूलरा' बनाया।

शिवनाथजी सिद्ध--अ० तृ० पृ० ४६। ये पूनरासर के टीकाई सिद्ध थे। इन्होंने जसनाथी-साहित्य का अच्छा सग्रह किया। इनका सग्रह स्वलिखित लिपि में प्राप्त होता है।

ठुकरोजी--ऐसा भी मत है कि ठुकरोजी कल्याणसर वाले सुरतोजी के पिता थे।

सिद्धाचार्य जसनाथजी और महासती काळलदे का एक दिन और एक साथ समाविस्थ होने में मैं'चन्दजी का यह 'सबद' उक्त बात की पुष्टि ही करता है —

हेत हिंयाळो हाँसोजी मिलिया, दीपक दीना हाथै
पो' उगन्ता न्हाण सँजोयो, चरण पखाळ्या गातै
म्हारै गुरु री म्हे पड़ वाँचाँ, कागद बाँचाँ हाथै
कँवर पडे खेलता दीठा, सुर तेतीसाँ साथै
ववळा वीरा, चेळा जूता, रास पिराणी हाथै
कोप्यो भुज रावण गे तोड्यो, लक उपाड़ी बाथै
सात समँदरा कियो मथाणो, हरी जगाण्या हाथै
जती सती दोय थळमर बैठा, जती पारवती साथै
गुरु भणै मै'चन्द, जुग जुग रमिया साथै

कतरियासर मंडल के नीचे निम्न गॉव हैं:—

(१) ऊपनी (२) ऊँटालड़

बम्बलू मंडल के बचे हुए ग्राम—

(१) तेजरासर (२) लाछड़सर

लिखमादेसर मंडल के बचे हुए ग्राम—

(१) सुमेरिया (२) काळूसरिया (३) तुकारेयासर (४) सत्तासर (५) बनेरू (६) लूणासर ।

पूनरासर मंडल—

(१) ब्याक (२) दुसारणा (३) बादड़िया (४) मळकीसर ।

मालासर-पॉचला मंडल— (१) पूनार

परमहँस मंडली—

जसनाथ-सम्प्रदाय में विरक्त मतों की मडली परमहँस मंडली के नाम से प्रसिद्ध है। इस मडली मे अनेकों ऐसे संत पुरुष हुये हैं, जिनके अलौकिक एव सुखद संस्मरण लोगों की जबान पर आज तक ताजा हैं। प्रारम्भ में इस सम्प्रदाय में दो प्रकार की विरक्त मंडलियॉ थी दुग्धाहारी मडली और परमहँस मंडली। दुग्धाहारी मडली खेतनाथजी के बाद समाप्त हो गई। दुग्धाहारी मंडली के संत लिखमादेसर की बाड़ी में ही अधिक रहे। खेतनाथजी की जीवित समाधि लिखमादेसर की बाड़ी में ही हुई, जिसका वर्णन आ चुका है। विद्वता की दृष्टि से परमहँस मंडली के सन्त बहुत प्रसिद्ध हुये हैं। वर्तमान परमहँस मडली के मुख्य संत से परमहँसों की यह परम्परा हमें प्राप्त हुई है जो निम्न प्रकार है:—

श्री कुम्भनाथजी के शिष्य लालनाथजी हुए और लालनाथजी के शिष्य समर्थनाथजी हुये। इन्होंने लाल्हासर ग्राम में तप किया। वहीं इनकी जीवित समाधि हुई। इसी परम्परा में बाद में खेतनाथजी नाम के परमहंस महात्मा के शिष्य श्री भावूनाथजी (विरक्तनाथजी) हुए। और इन्हीं भावू-नाथजी से परमहंस मंडली का अधिकाधिक विकास हुआ। ये बड़े विद्वान और योगाभ्यासी संत थे। भावूनाथजी के शिष्य पंजाब के निवासी मुक्तिनाथजी

हुये। ये बडे भारी दिग्गज विद्वान् थे। इन्होंने 'सर्वस्व संग्रहसार' नामका वेदान्त विषयक ग्रथ का सम्पादन किया। यह ग्रथ हस्तलिखित रूप में कैलाश आश्रम हृषिकेश मे सुरक्षित है। मुक्तिनाथजी के दो शिष्य हुये श्री लक्ष्मीनाथजी और भगवाननाथजी। लक्ष्मीनाथजी बड़े भारी विद्वान् थे। इसीलिये विद्वान् सत मडली मे उनको पडितजी के नाम से पुकारा जाता था। भगवाननाथजी के अनका शिष्य हुये जिनमे बखन्नाथजी, धर्मनाथजी, मेघनाथजी, शम्भूनाथजी निर्मलनाथजी आदि मुख्य सत हुए। मेघनाथजी के दो शिष्य हुए। प्रथम सुप्रसिद्ध मगलनाथजी, ये भारत के उच्च कोटि के सत और चोटी के विद्वान् थे। इनके दो ग्रथ प्रसिद्ध हैं— 'विचार-विन्दु' और वीर विजय। ये दोनों ही सस्कृत के वेदान्त विषयक ग्रथ हैं। दूसरे गुलाबनाथजी ये हॉसेरा ग्राम के थे और सिद्ध महात्मा थे। भावूनाथजी के एक शिष्य ज्ञाननाथजी नामके हुये। ये योगी पुरुष थे। ज्ञाननाथजी के मोतीनाथजी शिष्य हुये। मोतीनाथजी ने कोलायत मे बहुत वर्षों तक तप किया। 'मोतीनाथजी का धोरा' नामक एक विशाल भवन इनके नाम पर बना हुआ है।

जसुनाथजी--

ये कतरियासर के टीकाई महन्त थे। इनके पिता का नाम हीराननाथजी था। इनका देहान्त सम्वत् १६३६ में हुआ। बीकानेर नरेश महाराजा श्री डूँगरसिंह ने सिद्धों से जमीन की लगान मागी। सिद्धों के प्रतिनिधि के रूप मे श्री जसुनाथजी ने रकम देने से इन्कार कर दिया। डूँगरसिंहजी इस बात से बड़े क्रोधित हुए और सिद्धो को सताना प्रारम्भ किया और जसुनाथजी को पकड़कर जेल मे डाल दिया। जसुनाथजी ने बीकानेर रियासत में आजीवन अन्न ग्रहण न करने की प्रतिज्ञा की। जसुनाथजी के शाप से डूँगरसिंह कुष्टि हो गये, तब उन्होंने जसुनाथजी को मनाया तथा राजी करने की चेष्टा की। दयालु सिद्ध ने महाराजा पर कृपा की। जसुनाथजी के सम्मान मे महाराजा ने सिद्धजी को हाथी पर बैठाकर जुलूस निकाला और ११००० रुपये उनके भेट किये। जसुनाथजी और डूँगरसिंहजी के विषय में यह प्रसिद्ध है.—

जसुनाथ— खट दरसण नै खूब मंताया, और विगाड्या भाई
डूँगरसिंह— अब बाबोजी करो रसोई, राणी नरूकी आई

जसुनाथ— अन मुखड़े जद घालों राजा, जलम दूसरो थारो
गुरुदेवां रा होवो दोसियारी, लाज भेख नै मारो
डूंगरसिंह— कंवो तो बाबा भेख करास्या, खरच राज सूं भरस्यां
अब को गुनो माफ करीजै, भळ भगवे सूं डरस्यां
जसुनाथ— गुनो राजा माफ नहीं है, घणी अनीती खाई
डूंगरसिंह— हाथी हिंवर गुरु नै बगस्या, ऊपर चंवर ढुळाई

हरनाथजी के शेपाश 'सबद' की पंक्ति—

नीन्द भर सोवो (कांई) भाविया, करो अलेख सनेहो।
सूरत मूरत पारकी, जोरा ओजम केहो।
कुण थारो बागो वेंतियो, कारीगर केहो।
चागै चोळी ऊपरै, फाटेली जेहो।
हंस काया सूं ढळ पड़े, आ विणसै देहो।
माटी में माटी मिलै, हुय उडै खेहो।
हरनाथ (जी) हर नै वीनवे, स्यामी सरण रखेओ।

परम्परा : साहित्यिक : सांस्कृतिक महत्व : विकास और प्रसार

मूल ग्रंथ में भली भाँति बताया जा चुका है कि सिद्ध-सम्प्रदाय का आविर्भाव सिद्धाचार्य भगवान श्री जसनाथजी द्वारा हुआ था। उन्होंने लोक-कल्याणकारी छत्तीस धर्म-नियमों का प्रतिपादन कर अपने ज्ञानयोग से राजस्थान की धरती को प्रकाशवान किया था। गुरु गोरखनाथजी से दीक्षित शिष्य द्वारा प्रतिपादित होनेके कारण 'सिद्ध-सम्प्रदाय' 'नाथ-सम्प्रदाय' से सम्बन्धित है, किन्तु नाथ-सम्प्रदाय की तरह विभिन्न परिपाटियों को स्वीकार न कर अधिकाधिक वैष्णवी विशिष्ट मान्यताओं को ही अंगीकार किया है। सिद्ध-सम्प्रदाय को माननेवाले दो प्रकार के लोग हैं, पहला वर्ग 'सिद्ध' नाम से सम्बोधित किया जाता है तथा दूसरा वर्ग 'जसनाथी-जाट' कहलाता है। इन दोनों वर्गों की मान्यता और धर्म पालन की परिपाटी एक

ही है। केवल इनके पहनावे मे थोडा-सा अन्तर है । सिद्धवर्ग के लोग सिर पर भगवे रग की पगड़ी बाँधते हैं तथा अपने 'जसनाथी मन्दिरों' की पूजा करते हैं। कुछ लोग काली ऊन का धागा भी, जो तीन विशेष गाँठों द्वारा गठित होता है, गले मे पहिनते हैं। जसनाथी जाट साधारण राजस्थानी वेशभूषा मे ही रहते हैं और अपने वैवाहिक सम्बन्ध विशाल जाट जाति मे करते हैं।

सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के पश्चात इस सम्प्रदाय को उनके शिष्य हारोजी, हाँसोजी, जागोजी, पालोजी, टोडरजी, रुस्तमजी आदि अनेकानेक महापुरुषों ने इस भूमि पर प्रचारित किया।

रहन सहन रीति-रिवाज—

सिद्ध-सम्प्रदाय के लोगो मे तथा राजस्थान के अन्य लोगो मे कोई विशेष विभिन्नता नहीं है, फिर भी इनकी कुछ अपनी अलग मान्यताए हैं। रहन-सहन और रीति-रिवाज, वेश-भूषा और जन्म-मरण के सस्कारों मे थोडा-सा अन्तर है। वह कुछ इस प्रकार है —

विवाह के समय सिद्धों का केवल एक रिवाज अपना है। कन्या पक्ष वाले इस अवसर पर कन्या को प्रथम वर पक्ष के यहाँ लाकर श्री जसनाथजी के मन्दिर के सामने सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी द्वारा रचित 'गोरख-छन्दों' के पाठ से यह संस्कार सम्पन्न करते हैं। इसके सिवाय सभी रीति-रिवाज हिन्दू वैदिक पद्धति से सम्पन्न होते हैं, अब इस रिवाज मे भी शिथिलता आ गई है, प्राय: इस रिवाज को समाप्त ही समझिये। वैदिक पद्धति से ही अब विवाह-सस्कार सम्पन्न होने लगे हैं।

अन्तिम सस्कार मे अवश्य एक विशेष भिन्नता है। मृतक को जलाया नहीं जाता, भू-गर्भ समाधि दी जाती है। यह प्रथा आज तक उसी प्रकार चली आ रही है, किसी प्रकार का अन्तर इस प्रथा में नहीं आया। बाकी सभी व्यवस्थाए वैदिक हिन्दू धर्म के अन्तर्गत हैं।

इस सम्प्रदाय के लोग गगा-स्नान को बहुत महत्वपूर्ण समझते हैं।

अतएव अपने जीवन काल में ही पतित पावनी गंगा के निर्मल जल में स्नान करने के हेतु हरिद्वार की यात्रा करते है।

सम्प्रदाय में मयूर-पंख एक विशेष और पवित्र वस्तु मानी गई है। समाधि और मन्दिरों में मयूर-पंख की बनी 'पंखिया', नेजा (भगवे ध्वज का निशान जिस पर मयूर के पंख अवश्य होते हैं) और दो नगारे भी रहते हैं।

एकादशी, अमावस्या वैदिक पुण्य तिथियों को मानते हुए भी ये लोग प्रत्येक मास की शुक्ला सप्तमी एवं शुक्ला चतुर्थी को अपने सम्प्रदाय की पुण्य तिथि के रूप में मनाते है। इन तिथियों का महत्व 'मूल ग्रन्थ' में बताया जा चुका है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, राम कृष्ण आदि देवताओं की सगुण उपासना को सिद्ध-सम्प्रदाय ने स्वीकार किया है, लेकिन निर्गुण उपासना को ही मोक्ष-प्राप्ति का साधन माना है। सत्य हरिश्चन्द्र, भक्त प्रवर प्रह्लाद और सत्यनिष्ठ युधिष्ठिर के पदानुकरण को ही जसनाथी-साहित्य और सम्प्रदाय में सर्वाधिक मान्यता दी है। इस सम्प्रदाय में भैरव, भोमिया, पित्तर (पित्र) और भूत-प्रेतादि की मान्यता का निषेध किया है। छत्तीस धर्म-नियमों में अहिंसा को परमोधर्म बताया है। अत. इस सम्प्रदाय का प्रत्येक व्यक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा से अहिंसा का पालन करता है।

सम्प्रदाय के मन्दिरों और जीवित समाधियों पर हवन, धूप-दीप से नित्य प्रति पूजन किया जाता है और महत्वपूर्ण पर्वों पर जसनाथजी की बाड़ी में रात्रि जागरण के साथ 'अग्निनृत्य' का भी सुन्दर कार्यक्रम रहता है। सम्प्रदाय में हवन का विशेष महत्व है। सिम्भू बड़ो के पाठ से हवन का पवित्र कार्य सम्पन्न किया जाता है। सम्प्रदाय का प्रत्येक व्यक्ति अवस्थानुसार कुल-गुरु से मन्त्र दीक्षित होकर 'सुगरा' होता है।

साहित्यिक व सांस्कृतिक महत्त्व—

सिद्ध-सम्प्रदाय के साहित्य को 'जसनाथी-साहित्य' कहते हैं। यह साहित्य समृद्ध एवं प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। यह साहित्य कुछ ग्रन्थों (सबद-वाणी) में कुछ लिपिबद्ध एवं अधिकतर मौखिक रूप से ही सुरक्षित है। राजस्थानी साहित्य को अपने इस आध्यात्मिक 'जसनाथी-साहित्य' पर पूरा

गर्व है। विशुद्ध राजस्थानी भाषा मे रचित यह साहित्य अत्यन्त प्रभावशाली एव ज्ञानगम्य है। 'जसनाथी-साहित्य' में धर्म-प्रचार, नीति, उपदेश और विशुद्ध लोक-साहित्य की सर्जना हुई है। इस प्रकार इस साहित्य को कई भागों मे विभक्त कर जनमन के समक्ष रखा जा सके तो यह विशेष उपयोगी सिद्ध होगा। शोधकों एव अन्वेषकों का ध्यान इस ओर जाना वाञ्छनीय है।

राजस्थान का लोक-साहित्य ससार भर मे अपने सरस एव सुरुचि-पूर्ण भाव के लिए प्रसिद्ध है। 'जसनाथी-साहित्य' भी राजस्थान का लोक-साहित्य ही समझा जाना चाहिए, क्योंकि इसमें लोक-साहित्य की समस्त भाव धारायें प्रस्फुटित हैं। अब तक विद्वानो एव जनसाधारण की दृष्टि मे यह साहित्य न आने के कारण प्रसिद्ध नहीं हो सका, पर राजस्थान के गाँवो मे तो इसकी पर्याप्त प्रसिद्धि एव मान्यता है।

इसी प्रकार जसनाथ-सम्प्रदाय का साँस्कृतिक धरातल भी बडा मजबूत एव समृद्ध है। जसनाथी सिद्धों का 'अग्नि नृत्य', मेले और जागरण पर्व इत्यादि तथा नारी-पुरुषों के रगीन परिधान उनकी सस्कृति के प्रतीक हैं। मनुष्य की मुकोमल भावधारा इस सस्कृति की लीक मे एकाकार हो कुछ क्षण के लिए चैतन्य उल्लास में मुग्ध होकर बह जाती है। जसनाथ-सम्प्रदाय के इन साँस्कृतिक प्रतीकों मे सहज आकर्षण है और है जीवन का सन्देश, आध्यात्म के चिरतन चैतन्य का दर्शन, मनुष्य जीवन की सुकुमार कलाप्रियता और जीवन-दर्शन का गूढ निवेदन। मानवता का विकाशोन्मुख साँस्कृतिक पर्व भोले ग्रामीणों को नई चेतना, नई प्रेरणा, नई जीवन-दायिनी शक्ति और नवीन उल्लास प्रदान करता है। विभिन्न ग्रामो मे मेला इत्यादि पर्वों का उल्लेख किया जा चुका है कि किन-किन अवसरों तथा तिथियो पर ये पर्व मनाये जाते हैं, लेकिन कतरियासर, बम्बलू, लिखमादेसर, पूनरासर, पाँचला सिद्धां का इत्यादि स्थानों के मेले अति प्रसिद्ध है।

मेलों के इन पुनीत अवसरों पर सिद्ध-सम्प्रदाय के लोग मन्दिर एव समाधियों के पावन दर्शनों के साथ २ हवन भी करते हैं और घृत आदि पवित्र वस्तुएं अपने इष्ट को चढाते है। इन अवसरों पर ये लोग एक विशेष गव्य का

कर अपने धर्म-नियमों को दोहराते है तथा पालन करते रहने का
रते रहते हैं। मनसा, वाचा, कर्मणा जो इस धर्म को ग्रहण नहीं
को यह आचमन नहीं दिया जाता।

छींट इत्यादि रंगीन चमकदार वस्त्रों को धारण कर स्त्रियों के झुण्ड
मेलों में दिखलाई पड़ते हैं। सिद्धों की स्त्रियाँ एक विशेष प्रकार का
धारण करती हैं, जिसको 'विलायती भाँत' की छींट का घाघरा कहते
-गीतों को गाती हुई, मेले के आनन्द का उपभोग करती है। स्त्रियों
गीतों में 'जसनाथजी री ने सतीजी री छावळियाँ' अति प्रसिद्ध एव
य गीत हैं।

स्त्रियों की भाँति पुरुष भी पूरे लोकगायक एव लोकनर्त्तक है। मीठे
', वाणी तथा अन्यान्य प्रगीतात्मक ध्वनियों से धरती और आकाश को
त कर देते हैं। गायक नगाड़ा और नगाड़ी वाद्यों पर गाते है। प्रथम
राग से 'सबद' शुरू होते है—'मोवण्या थे रळमिळ चालो, ज्यूँ कूँजा
रे' और सचमुच ही ऐसी अनुभूति होती है कि इनका संगीत-नृत्यमय
. जीवन-दर्शन देखकर, सब हिलमिल कर चल रहे हैं, जैसे क्रौंच
यों की कतारे।

अग्निनृत्य—

सिद्धों की संस्कृति का सबसे बड़ा प्रतीक है अग्निनृत्य, जिसे देखकर
आँखे विस्मय से विस्फारित रह जाती हैं। सिद्ध-सम्प्रदाय का यह लोकनृत्य
बड़ा ही दर्शनीय है।

यह नृत्य, अग्निनृत्य के नाम से पुकारा जाता है। राजस्थान में
प्रचलित समस्त लोकनृत्यों में यह अभूतपूर्व लोकनृत्य है। राजस्थान को ही
नहीं, समस्त भारतवर्ष को इस नृत्य पर गर्व करना चाहिये। सैकड़ों मन
लकड़ियों को जलाकर अंगारे तैयार किये जाते हैं। उन दहकते हुए अंगारों
के ढेर पर यह नृत्य सफलता पूर्वक सम्पन्न होता है। अंगारों के ढेर का नाप
७ फुट लम्बा, ४ फुट चौड़ा एवं ३-४ फुट के लगभग ऊंचा होता है, किन्तु
सुविधानुसार यह माप संकीर्ण तथा विस्तृत भी किया जा सकता है। प्रारम्भ

में छै आदमी होते है, जिनमें से एक आदमी नगाड़ो की जोड़ी को हथेली से बजाता हुआ ओंकार-ध्वनि जैसा आलाप करता है, अन्य पाँचो आदमी दो श्रेणियों मे विभक्त होकर मजीरा' बजाते हुए उस आलाप को उठाते हैं। इनका 'मजीरा' एवं नगाडा बजाने का ढ़ग निराला है।

सर्व प्रथम नर्तक सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी के (सबदों) पदों को गाते हैं। तीन 'सबद' गा चुकने के बाद सिद्ध श्री रुस्तमजी के 'नाचणियाँ' पद-गायन के साथ नर्तक नाचने को उठते हैं, इससे पहले अग्नि-ढ़ेर के चारो ओर पानी छिड़क दिया जाता है तथा अपनी इष्ट मनौती के लिए शुद्ध घृत का हवन भी करते हैं। तत्पश्चात् नर्तक अपनी 'तान' तोडने लगते हैं। इनके नृत्य का तौर-तरीका बड़ा ही स्वाभाविक है। नृत्यकार थोड़ी देर सादी पृथ्वी पर नगाड़े के आगे नाचते रहते हैं, जैसे ही राग की ध्वनि और नगाड़े की ताल की गति बदलते है वसे ही ये लोग उस विशाल अग्नि-ढ़ेर (धूणाँ) मे कई बार प्रवेश करते हैं और निकलते हैं, किन्तु इन्हें नगाडे की थापी का बडी सावधानी से ध्यान रखना पड़ता है। क्योंकि थापी चूक जाने से जल जाने का भय रहता है। अगारो को हाथ में लिए रखना तथा छोटी २ चिनगारियों को मुँह मे डालकर दर्शकों की ओर फैंकना कौतुहल पैदा करता है। कभी २ ये लोग बडे बड़े प्रज्ज्वलित अगारो को दाँतों से भी पकड़े रहते हैं और फूँ-फूँ करते, छोटी छोटी चिनगारियाँ फैंकते हैं। अग्नि-ढ़ेर मे बैठकर बड़े २ अंगारों को हथेली में रखकर 'मतीरा' फोडने का प्रदर्शन, पैरों से साँड की तरह अग्नि-ढेर को कुरेदना, इस नृत्य के आश्चर्यजनक भाव हैं।

अग्नि-नृत्य के प्रचलन के बारे में सम्प्रदाय में अभी कुछ मतभेद है। कुछ लोग सिद्धाचार्य श्री जसनाथजी द्वारा और कुछ सिद्ध रुस्तमजी द्वारा इस नृत्य के प्रचलन की बात कहते हैं—लेकिन अभी तक कोई खास प्रमाण दोनो के विषय में ही प्राप्त नहीं हो सका है।

विकास : प्रसार—

'सिद्ध-सम्प्रदाय' काफी विस्तृत हो चुका है। 'सिद्ध-सम्प्रदाय' के लोगों की सख्या इस समय दस लाख के लगभग है। बीकानेर-जोधपुर इनके मुख्य

केन्द्र है, जहाँ पर सिद्ध लोग रहते हैं। सिद्धों के घरों की संख्या १५०० के लगभग है। 'सिद्ध-सम्प्रदाय' का प्रसार भी विकास की भाँति काफी हो चुका है। राजस्थान के अलावा कच्छ, भुज्ज, पंजाब, हरियाणा, मालवा आदि अन्यान्य प्रदेशों में भी 'सिद्ध-सम्प्रदाय' के लोग बहुतायत से रहते हैं। इस प्रकार 'सिद्ध-सम्प्रदाय' एक विकसित एवं समृद्ध सम्प्रदाय है।

आधुनिक कवियों की सिद्धाचार्य के प्रति श्रद्धाञ्जलि—

आधुनिक कवियों के हृदय में भी सिद्धाचार्यजी के प्रति पूरा पूरा प्यार है। श्री किशोर कल्पना कांत ने कुछ कवितायें इनके सम्बन्ध में लिखी हैं, जिनमें से दो नीचे दी जाती हैं:—

(१)

मरुभोम जलम मरुवाणी में सत मारू मरम बतावणिया
मुरधर नें सुरग बणावणिया
जलम्या जद वे जुग जोत जळी
हरखी हिवड़ा री कळी-कळी
हरखी मुरधर री गळी-गळी
कड़ा में मत री कड़ो पळी
जसनाथ जलमिया धरती पर मिनखा नें गेल दिखावणिया
मुरधर नें सुरग बणावणिया
जीवहत्या अब नीं जग गावें
नीं मत पुरस नें बिसरावें
आमोज सुदी मात्यूँ आवें
जद म्हारो तन मन सो गावें
वे सिद्धराज हा धरती रा, हरजस सूं कष्ट मिटावणिया
मुरधर नें सुरग बणावणिया
अब और जलम मत रागणिया
अब और जलम पत रागणिया
अब और जलम सिध साधणिया
अब और जलम निज जागणिया
मुरधर मारू निरख नांवत रावें दिननें रा मा ज्यूं चानणिया
मुरधर नें सुरग बणावणिया

मैं जसनाथी—

आभै सूं सुपनो उतर कै'यो
हरजस मे जस गा जसनाथी

मैं नैणा में भर हेत अमर
जसनाथ सिद्ध रो नाव सिमर
कठा मे गीत घणा भरकर

गा उठियो सत समागम में
मैं जसनाथी, मैं जसनाथी

मैं गातो गातो नहीं छकू
इण गैलै चाल्यो नही थकूं
सता रै साम्हैं सदा झुकू

आ सीख धार सत पुरषा री
मैं बणग्यो हूं अब जसनाथी

जुग जुगती नै जस गीत सुणा
मुरधर नै नंदण धाम बणा
मरूवाणी में गा गीत बणा

मैं जिया जूण मे भर देसू
हरजस रा जस में जसनाथी

था आतो सत समागम में
गावा सै' रळ मिळ आपस मे
कै पड़ियो। कूड़ी राफड़ मे

छोडो था कूड़-कपट आखा
जद बणमी मत थारो साथी

मैं जसनाथी, मै जसनाथी